



कलस हिन्दुस्तानी तौरेत

श्री तारतम वाणी

कलस हिन्दुस्तानी

टीका व भावार्थ

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

www.spjin.org

सर्वाधिकार सुरक्षित (चौपाई छोड़कर)

© २०१६, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण — २०१८

अनुक्रमणिका

	अनुभूमिका	10
1	सुनियो बानी सोहागनी	18
2	पिया मैं बोहोत भांत तोको खोजिया (प्रकरण खोज का)	55
3	मैं चाहत न स्वांत इन भांत (विरह तामस का प्रकरण)	112
4	पिया मोहे स्वांत न आवहीं	126
5	तलफे तारुनी रे (विरह के प्रकरण)	141
6	विरहा गत रे जाने सोई	149
7	इस्क बड़ा रे सबन में	155
8	सनमंध मूल को	170
9	एह बात मैं तो कहूं (विरह को प्रकास)	181

10	सत असत पटंतरो	222
11	पार वतन जो सोहागनी (सोहागनियों के लछन)	243
12	भी कहूं मेरी सैन को	272
13	अब निरखो नीके कर (खेल के मोहोरों का प्रकरण)	288
14	अब दिखाऊं इन विध (खेल में खेल)	311
15	कोई कहे दान बड़ा (पंथ पैड़ों की खेंचा खेंच)	343
16	वैराट का फेर उलटा (वैराट का कोहेड़ा)	366
17	अब कहूं कोहेड़ा वेद का (वेद का कोहेड़ा)	387

18	ए ऐसा था छल अंधेर (प्रकरण अवतारों का)	440
19	जिन किनको धोखा रहे (गोकुल लीला)	481
20	अब जोत पकरी न रहे (जोगमाया को प्रकरण)	526
21	अब तो मेरे पिया की (दया को प्रकरण)	555
22	मेरे साथ सनमंधी चेतियो (हांसी का प्रकरण)	581
23	अब जाग देखो सुख जागनी (जागनी का प्रकरण)	602
24	निज बुध भेली नूर में	691

प्रस्तावना

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी का हृदय ज्ञान का अनन्त सागर है। उसकी एक बूँद श्री महामति जी के धाम हृदय में आयी, जो सागर का स्वरूप बन गयी। इसलिये कहा गया है कि "नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी रोसन", अर्थात् यह तारतम वाणी मारिफत के ज्ञान का सूर्य है। यह ब्रह्मवाणी सबके हृदय में ब्रह्मज्ञान का उजाला करती है।

"हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन अक्षरशः सत्य है। इस ब्रह्मवाणी की अलौकिक ज्योति सुन्दरसाथ के हृदय में माया का अन्धकार कदापि नहीं रहने देगी। इस तारतम वाणी की थोड़ी सी भी अमृतमयी बूँदों का रसास्वादन जीव के लिये परब्रह्म के साक्षात्कार एवं अखण्ड मुक्ति का द्वार खोल देता है। अतः वैश्विक

स्तर पर इस ब्रह्मवाणी का प्रसार करना हमारा कर्तव्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अवतरित इस ब्रह्मवाणी का टीका सरल भाषा में प्रस्तुत हो। यद्यपि वर्तमान में अनेक सम्माननीय मनीषियों की टीकायें प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी भी टीका हो, जो विश्लेषणात्मक हो, सन्दर्भ, भावार्थ, स्पष्टीकरण, एवं टिप्पणियों से युक्त हो।

मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये यह कदापि सम्भव नहीं था, किन्तु मेरे मन में अचानक ही यह विचार आया कि यदि सन्त कबीर जी और ज्ञानेश्वर जी अपने योगबल से भैंसे से वेद मन्त्रों का उच्चारण करवा सकते हैं, तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मुझसे तारतम वाणी के टीका की सेवा क्यों नहीं करवा

सकते? इसी आशा के साथ मैंने अक्षरातीत श्री जी के चरणों में अन्तरात्मा से प्रार्थना की।

धाम धनी श्री राज जी एवं सद्गुरु महाराज श्री रामरतन दास जी की मेहेर की छाँव तले मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा ने मुझे इस कार्य में दृढ़तापूर्वक जुटे रहने के लिये प्रेरित किया। श्री प्राणनाथ जी की पहचान के सम्बन्ध में जनमानस में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ फैली रहती हैं। धाम धनी की कृपा से होने वाली इस टीका से उन भ्रान्तियों का समाधान हो सकेगा, ऐसी मैं आशा करता हूँ।

सभी सम्माननीय पूर्व टीकाकारों के प्रति श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए, मैं यह आशा करता हूँ कि यह टीका आपको रुचिकर लगेगी। सभी सुन्दरसाथ से

निवेदन है कि इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधारकर मुझे भी सूचित करने की कृपा करें, जिससे मैं भी आपके अनमोल वचनों से लाभ उठा सकूँ एवं अपने को धन्य-धन्य कर सकूँ।

आप सबकी चरण-रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

सरसावा

जिला सहारनपुर (उ.प्र.)

कलस हिन्दुस्तानी – तौरेत

निजनाम श्री जी साहिब जी, अनादि अछरातीत।

सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहीत॥

राग श्री मारू

अक्षरातीत का हृदय अमृत का लहराता हुआ अनन्त सागर है। उस सागर में अठखेलियाँ करती हुई लहरों से एक बूँद श्री महामति जी के धाम हृदय में प्रवेश करती है और परमधाम के एकत्व (वहदत) के सिद्धान्त का अनुसरण करती हुई वह भी अनन्त सागर का रूप ले लेती है।

परमधाम की आत्माओं को जाग्रत करने के लिये श्री महामति जी के धाम हृदय में विद्यमान अमृत सागर से अलग-अलग अमृत कलश (घट) भरने लगते हैं। प्रत्येक

घट से एक मधुर स्वर-लहरी गूँज रही है- परमधाम की आत्माओं! यदि तुमने मेरी एक बूँद का भी रसास्वादन कर लिया, तो तुम्हारे हृदय में भी अक्षरातीत का सिंहासन जगमगाने लगेगा। तुम यहीं बैठे-बैठे अपने प्राणेश्वर युगल स्वरूप को पल-पल निहारा करोगी। तुम्हें कभी भी ऐसा अनुभव नहीं होगा कि हम परमधाम छोड़कर आयी हैं या हमारे प्रियतम हमसे कभी भी अलग थे।

इसके अतिरिक्त मन्द-मन्द स्वरों में हृदय को मन्त्र-मुग्ध कर देने वाली अलग-अलग स्वर-लहरियाँ अलग-अलग घड़ों (कलशों) से सुनायी पड़ रही हैं।

पहला घट (रास - प्रेम कलश) कहता है- तुमने कभी योगमाया में जाने के लिये प्रियतम की बाँसुरी की मधुर ध्वनि सुनते ही तत्क्षण शरीर और संसार को छोड़ दिया

था, जिसके परिणाम स्वरूप तुम्हें महारास का आनन्द मिला। अब तुम्हारे लिये जागनी रास का स्वर्णिम अवसर है। इस रास में तुम्हें पच्चीस पक्षों सहित युगल स्वरूप पल-पल तुम्हारे धाम हृदय में दिखायी देंगे। तुम स्वयं को भी अक्षरातीत के हृदय में बैठी हुई पाओगी। इस रास लीला में प्रवेश करने के लिये ३०० वर्षों से लगातार बाँसुरी बज रही है, फिर तुम उसे अनसुना करने में अपना गौरव क्यों मान रही हो? प्रियतम का प्रत्यक्ष आनन्द पाने के लिये तुम अपने हृदय में ब्रज-रास वाला प्रेम क्यों नहीं भर लेती?

दूसरे घट (प्रकाश - ज्ञान कलश) से हृदय को झकझोरने वाली मधुर ध्वनि मुखरित होती है - ब्रज-रास में जिसने तुम्हें अपनी प्रेममयी लीला से आनन्दित किया था, वही तो इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री देवचन्द्र

जी के कलेवर में लीला करने के पश्चात्, अब श्री महामति जी के धाम हृदय (श्री मिहिराज जी के कलेवर) में प्रत्यक्ष विराजमान होकर लीला कर रहा है। तुमने उनकी पहचान करने की अपेक्षा, उन्हें एक कवि, सन्त, गुरु, महापुरुष, एवं भक्त कहने में ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर लिया है। क्या यही तुम्हारा विवेक है? प्रियतम को तिरस्कृत करने की जो राह तुमने अपनायी है, क्या इसी तिरस्कार के बल पर तुम जाग्रत होकर अखण्ड आनन्द में विरह करोगी?

तीसरे घड़े (षट्क्रतु – विरह कलश) से इस प्रकार की ध्वनि आ रही है, जैसे कोई मुस्कराते हुए व्यंग्यपूर्वक कह रहा है— तुम्हारे शुष्क हृदय में बौद्धिक चातुर्य का वास करना ही तुम्हारे लिये एक अभिशाप है, जिसके कारण तुम अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत को प्रत्यक्ष नहीं देख पा

रही हो, बल्कि तुमने तो अपने सिर पर संशय का पर्वत ही लाद रखा है। तुम कहा करती हो— भला मैं कैसे अक्षरातीत को देख सकती हूँ? मैं तो छाया हूँ। प्रियतम रूपी सूर्य के सामने होने पर मेरा अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। मेरा केवल एक ही आग्रह स्वीकार करो कि तुम मेरे विरह रस की केवल एक बूँद को अपनी जिह्वा पर रखकर हृदय तक पहुँचा दो। कुछ क्षणों के पश्चात् तुम स्वयं कहोगी— मैं छाया नहीं, अपितु सूर्य का प्रकाश फैलाने वाली उसकी अभिन्न स्वरूपा अर्धांगिनी हूँ। मेरे बिना उसका प्रकाश भी कैसे फैल सकता है? उसको देखना, पाना, अपने हृदय में बसाना तो मेरा शाश्वत् अधिकार है। यदि मैं उसे अपने प्रेम रूपी पिंजरे में तोता बनाकर नहीं रख सकती, तो मुझे ब्रह्माँगना कहलाने का कोई अधिकार नहीं है।

चौथा घड़ा (कलश – पूर्ण समर्पण) कहता है- भले ही मेरा आकार छोटा है, किन्तु तीनों घड़ों के ऊपर मैं विराजमान हूँ। मेरे कारण ही सबको कलश कहलाने की शोभा मिली है। हम चारों का समूह वृहद कलश है, जो एक रूप होकर एक ही कलश अर्थात् मेरे रूप में शोभा दे रहा है। परमधाम की आत्माओं! मेरा तुमसे केवल इतना ही कहना है कि भले ही तुम्हारे पास प्रेम, ज्ञान, एवं विरह की अनुपम सम्पदा क्यों न हो, किन्तु यदि तुमने परमधाम में विराजमान श्री राज जी एवं खेल में श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान श्री राज जी में किसी भी प्रकार का भेद समझा, तो तुम्हारी ये सारी निधियाँ निरर्थक हो जायेंगी।

कलश हिन्दुस्तानी की अन्तिम चौपाई उपरोक्त कथनों पर बहुत ही सुन्दर प्रकाश डालती है-

साथ के सुख कारने, इन्द्रावती को मैं कह्या।

ताथें मुख इन्द्रावती के, कलस सबन का भया।।

कतेब परम्परा में जंबूर ग्रन्थ का अवतरण मूसा पैगम्बर के द्वारा हुआ, जिसका प्रचार सोलोमन ने किया। इसी प्रकार तौरेत ग्रन्थ का अवतरण भी मूसा पैगम्बर के द्वारा हुआ, जिसका प्रचार हारून ने किया। तौरेत ग्रन्थ में एकेश्वरवाद एवं धर्मयुक्त आचरण करने का निर्देश दिया गया है।

तारतम वाणी के प्रकाश में देखने पर कलश ग्रन्थ तौरेत के विकल्प के रूप में दृष्टिगोचर होता है। बेहद के जिस तेज (नूर) को मूसा पैगम्बर, देखना तो दूर, सहन भी नहीं कर सके थे और पर्वत भी भस्म हो गया था, उस तेज से भी परे परमधाम में विराजमान अक्षरातीत का साक्षात् स्वरूप हमारी आत्मा के धाम हृदय में बस जाये

और हम उससे आनन्दित हों, यही इस कलश ग्रन्थ के अवतरण का मुख्य उद्देश्य है। यह कलश ग्रन्थ सर्वप्रथम सूरत में वि. सं. १७३३ में अवतरित हुआ, जिसका हिन्दुस्तानी भाषा में रूपान्तरण वि. सं. १७३६ में अनूपशहर में हुआ। कलश हिन्दुस्तानी में महामति जी की छाप है, जबकि कलश गुजराती में इन्द्रावती की छाप है। अब प्रस्तुत है, कलश ग्रन्थ की अमृतमयी स्वर लहरियों की मधूर गूँज।

सुनियो बानी सोहागनी, हुती जो अकथ अगम।

सो बीतक कहूँ तुमको, उड़ जासी सब भरम॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि प्राणेश्वर अक्षरातीत की अंगरूपा आत्माओं! अब तुम परमधाम की वह अनुपम वाणी सुनो, जो आज दिन तक शब्दों में प्रकट नहीं हो सकी थी और सभी के लिये अप्राप्य बनी रही थी। इसे आत्मसात् कर लेने पर तुम्हारे मन के सभी संशय समाप्त हो जायेंगे। इस ब्रह्मवाणी का अवतरण कैसे हुआ, वह सम्पूर्ण घटनाक्रम तुम्हें बता रही हूँ।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी की शोभा का नाम ही "महामति" है। "ए पांचों मिल भई महामति" (प्रकास हिन्दुस्तानी- प्रकट वाणी) का कथन यही संकेत करता है। कहीं पर "महामति" शब्द पुल्लिंग वाचक है, तो कहीं पर स्त्रीलिंग वाचक। इसका मुख्य कारण यह है कि जहाँ

अंगना भाव की प्रबलता है, वहाँ स्त्रीलिंग में प्रयोग हुआ है, जैसे- "अब मिल रही महामती, पिऊ सो अंगों अंग" (किरंतन ४६/७)। किन्तु जहाँ पर श्री इन्द्रावती जी की आत्मा में यह भाव आता है कि अक्षरातीत मेरे धाम हृदय में विराजमान हैं और उनकी सम्पूर्ण शोभा को लेकर मैं उनके ही स्वरूप में जागनी लीला कर रही हूँ, वहाँ पर पुल्लिंग में सम्बोधन किया गया है, जैसे- "साहेब के हुकमें, ए वानी गावत है महामत" (किरंतन ५९/८)।

रास कहा कछु सुनके, अब तो मूल अंकूर।

कलस होत सबन को, नूर पर नूर सिर नूर॥२॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! मैंने हब्शा में श्री राज जी के मुखारविन्द से सुनकर कुछ रास का वर्णन किया है, अर्थात् मेरे धाम हृदय में युगल

स्वरूप ने विराजमान होकर रास ग्रन्थ का वर्णन किया है। अब तो मेरा परमधाम का मूल अँकुर भी जाग्रत हो गया है। यह कलश ग्रन्थ रास और प्रकाश के ऊपर विशिष्ट कलश के रूप में शोभायमान हो गया है।

भावार्थ- इस चौपाई के प्रथम चरण में "कछु" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका तात्पर्य यह है कि महारास शब्दातीत और असीम है। ग्रन्थ रूप में उसके कुछ अंश मात्र का ही वर्णन हो सकता है, सम्पूर्ण महारास का नहीं। परात्म के भाव में दृढ़ विश्वास के साथ भावित हो जाना ही मूल अँकुर का जाग्रत हो जाना है। सम्पूर्ण वैदिक ग्रन्थों का सार तत्व है – प्रेम और आनन्द के अनन्त रस के सागर सच्चिदानन्द परब्रह्म का अपनी अभिन्न अंग स्वरूपा आत्माओं के साथ लीलामग्न रहना, जिसे रास कहा जाता है।

तारतम वाणी के प्रथम ग्रन्थ रास में उस अभिन्न प्रेममयी लीला का मनोहर चित्रण किया गया है। उस रास ग्रन्थ का भी सार तत्व यह है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म इस जागनी लीला में कहाँ विराजमान होकर लीला कर रहे हैं? इसका वर्णन प्रकाश ग्रन्थ में दर्शाया गया है।

इस प्रकाश ग्रन्थ का भी सार तत्व यह है कि परमधाम में विराजमान मूल स्वरूप श्री राज जी एवं श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान श्री राज जी में कोई भी भेद नहीं है। इस सत्य की पहचान करने वाले का जीवन धन्य-धन्य हो जाता है और यह सत्य कलश वाणी में दर्शाया गया है।

"नूर" का तात्पर्य ही सार तत्व से है। कलश गुजराती में इसे ही "प्रकाश" शब्द से सम्बोधित किया गया है—
"रास ने प्रकास थयो, ते प्रकास नो प्रकास।"

कथियल तो कही सुनी, पर अकथ न एते दिन।

सो तो अब जाहेर भई, जो अग्या थें उतपन॥३॥

आज तक इस संसार में क्षर जगत से सम्बन्धित ज्ञान को ही कहा-सुना जाता रहा है। इससे परे शब्दातीत परमधाम के बारे में कुछ भी कहा नहीं जाता था। अब धाम धनी के आदेश से परमधाम की ब्रह्मवाणी अवतरित हुयी है, जो मेरे धाम हृदय से प्रकाशित हो रही है।

मुझे मेहेर मेहेबूबें करी, अंदर परदा खोल।

सो सुख सनमंधियनसों, कहूं सो दो एक बोल॥४॥

मेरे प्राणेश्वर अक्षरातीत ने मेरे ऊपर अपार कृपा की है। मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर माया के पर्दे को हटा दिया है, जिसके परिणाम स्वरूप मेरे हृदय में आनन्द का सागर लहराने लगा है। मैं परमधाम की आत्माओं से उस

सुख सागर की लहर रूपी एक-दो बातें कहने जा रही हूँ।

विशेष- आगे की सम्पूर्ण वार्ता उस प्रसंग की है, जब श्याम जी के मन्दिर में श्री देवचन्द्र जी को श्री राज जी दर्शन देते हैं। उस वार्ता के सम्पूर्ण प्रसंग को श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर श्री श्यामा जी प्रस्तुत कर रही हैं।

मासूकें मोहे मिलके, करी सो दिल दे गुझ।

कहे तूं दे पड़उतर, जो मैं पूछत हों तुझ॥५॥

मेरे प्रेमास्पद श्री राज जी मुझे मिले और असीम प्रेम में मुझसे एकाकार होकर (दिल देकर) अपने हृदय की गुह्यतम बातों को उजागर किया। वे कहने लगे कि मैं तुमसे जो भी पूछता हूँ, तुम उन प्रश्नों का उत्तर दो।

भावार्थ- श्री देवचन्द्र जी अपने धाम धनी को पाने के लिये जगह-जगह पूछते फिरे। इसलिये उन्हें प्रेमी (आशिक) कहा गया है और श्री राज जी को प्रेमास्पद (माशूक) कहा गया है।

तू कौन आई इत क्योंकर, कहां है तेरा वतन।

नार तू कौन खसम की, दृढ़ कर कहो वचन॥६॥

तुम कौन हो? इस संसार में क्यों आयी हो? तुम्हारा मूल घर कहाँ है? तुम दृढ़तापूर्वक यह बात बताओ कि तुम किस पुरुष की अर्धांगिनी हो?

भावार्थ- परमपुरुष तो एकमात्र अक्षरातीत ही हैं, किन्तु लोक व्यवहार में अक्षरातीत के सत् अंग अक्षर ब्रह्म को भी पुरुष कहा जाता है और उनके स्वायत्तिक स्वरूप आदिनारायण भी क्षर पुरुष कहलाते हैं।

श्री देवचन्द्र जी हरिदास जी से मिले हुये ज्ञान के आधार पर बालमुकुन्द तथा बाँके बिहारी की भक्ति किया करते थे, क्योंकि तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण श्री देवचन्द्र जी को क्षर, अक्षर, एवं अक्षरातीत का कोई भेद मालूम नहीं था। उसी की ओर संकेत करते हुये श्री राज जी ने कहा कि बताओ! तुम किस पुरुष की अर्धांगिनी हो— बालमुकुन्द की, बाँके बिहारी की, या इससे भी परे किसी और पुरुष की।

तू जागत है के नींद में, करके देख विचार।

विध सारी याकी कहो, इन जिमी के प्रकार।७।।

तुम इस बात का विचार करो कि इस समय तुम जाग्रत अवस्था में हो या निद्रा अवस्था में। तुम जिस संसार में रह रही हो, उसकी सारी वास्तविकता मुझे बताओ।

तब मैं पियासों यों कह्या, जो तुम पूछी बात।

मैं मेरी मत माफक, कहूंगी तैसी भांत॥८॥

श्री श्यामा जी कहती हैं कि तब मैंने अपने धाम धनी से इस प्रकार कहा कि प्राण प्रियतम! आपने मुझसे जो भी प्रश्न पूछे हैं, जितना मैंने अनुभव किया है, उसका उत्तर अपनी बुद्धि के अनुसार दूँगी।

सुनो पिया अब मैं कहूँ, तुम पूछी सुध मंडल।

ए कहूँ मैं क्यों कर, छल बल बल अकल॥९॥

मेरे प्राणवल्लभ! मैं उत्तर दे रही हूँ, उसे सुनिये। आपने मुझसे इस हद मण्डल की वास्तविकता पूछी है। इस मोहमयी बुद्धि के आकर्षण में फँसे हुये, प्रपञ्चमयी शक्ति से भरपूर, इस जगत की वास्तविकता के बारे में मैं क्या बताऊँ?

मैं न पेहेचानों आपको, ना सुध अपनो घर।

पिउ पेहेचान भी नींद में, मैं जागत हों या पर॥१०॥

न तो मैं आपको पहचान पा रही हूँ और न अपने मूल घर को। मैं आपको जो भी जानती हूँ, निद्रावस्था में ही जानती हूँ। मैं यह भी नहीं जानती हूँ कि मैं जाग्रत हूँ या नहीं।

ए मोहोल रच्यो जो मंडप, सो अटक रह्यो अंत्रीख।

कर कर फिकर कई थके, पर पाई न काहूं रीत॥११॥

मण्डप के समान शोभायमान यह जो हमारा ब्रह्माण्ड (महल) है, वह आकाश में निराधार (आकर्षण शक्ति से) टिका हुआ है। इसके रहस्य को जानने के लिये बड़े-बड़े मनीषी सारे प्रयास करके थक गये, किन्तु कोई भी सफल नहीं हो सका।

भावार्थ- हमारे सौर मण्डल जैसे असंख्यों सौर मण्डल इस सृष्टि में निरन्तर घूम रहे हैं। सभी ग्रह -नक्षत्र एक-दूसरे के आकर्षण से आकाश में स्थित हैं।

जल जिमी तेज वाए को, अवकास कियो है इंड।

चौदे तबक चारों तरफों, परपंच खड़ा प्रचंड॥१२॥

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश से बना हुआ है। चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में चारों ओर सर्वत्र अति बलशाली मायावी प्रपञ्च ही प्रपञ्च दिखायी दे रहा है।

यामें खेल कई होवहीं, सो केते कहूं विचित्र।

तिमिर तेज रूत रंग फिरे, ससि सूर फिरे नखत्र॥१३॥

इस सृष्टि में प्रकृति की इतनी अद्भुत लीलाएँ होती हैं ,

जिसका वर्णन मैं कितना करूँ? सूर्य, चन्द्रमा, और नक्षत्र सर्वदा गतिशील रहते हैं। इन लोकों में कहीं अँधेरा होता है, तो कहीं उजाला। अलग-अलग ऋतुओं का भी परिवर्तन होता रहता है। इसके अतिरिक्त अनेक रंगों के दृश्य भी दिखायी पड़ते रहते हैं।

तबक चौदे इंड में, जिमी जोजन कोट पचास।

साढ़े तीन कोट ता बीच में, होत अंधेरी उजास॥१४॥

चौदह लोकों वाले इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी लोक का परिमाण पचास करोड़ योजन है, जिसके साढ़े तीन करोड़ योजन भाग में अँधेरे और उजाले (रात-दिन) की लीला होती है।

भावार्थ- उपरोक्त कथन श्री देवचन्द्र जी का है, जो उन्होंने भागवत श्रवण से प्राप्त किया है। इसे श्री राज जी

का कथन नहीं समझना चाहिये। एक योजन में चार कोस होते हैं और एक कोस में तीन किलोमीटर होते हैं। इस प्रकार $५० \text{ करोड़} \times ४ \times ३ = ६०० \text{ करोड़}$ या ६ अरब कि.मी., जिसे आधुनिक विज्ञान कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता।

उजास सूर को कहावहीं, सो तो अंधेरी के तिमर।

तिनथें कछू न सूझहीं, जिमी आप न घर॥१५॥

यद्यपि सूर्य को उजाला करने वाला कहते हैं, किन्तु वह तो माया के अन्धकार का रूप है। इस सूर्य के उदित हो जाने पर भी, न तो अपनी पहचान हो पाती है और न अपने मूल घर की।

भावार्थ— हृदय में ब्रह्मज्ञान रूपी सूर्य के उदित हुए बिना, अपने या मूल घर की पहचान कैसे हो सकती है?

संसार में उगने वाला सूर्य तो अग्नि तत्व का है। इससे तो भौतिक पदार्थों को देखने के लिये प्रकाश मात्र होता है।

जब थें सूरज देखिए, लेत अंधेरी घेर।

जीव पसु पंखी आदमी, सब फिरें याके फेर॥१६॥

जब से सूर्य उगता है, तब से सभी प्राणियों के अन्दर अज्ञानता का अन्धकार फैल जाता है। सभी जीव, चाहे पशु-पक्षी हों या मनुष्य, अपने लौकिक क्रिया-कलापों में इतना फँस जाते हैं कि कोई भी अन्तर्मुखी होकर अपने स्वरूप का चिन्तन नहीं कर पाता।

भावार्थ- इस भौतिक जगत से परे हुए बिना आध्यात्मिक तत्वों का साक्षात्कार हो ही नहीं सकता। सूर्य के प्रकाश में बाह्य नेत्रों द्वारा बाह्य जगत को देखा जाता है, जबकि आत्म-चक्षुओं द्वारा इस जगत से परे

होकर परब्रह्म का साक्षात्कार किया जाता है।

काल ना देखें इन फेरे, याही तिमर के फंद।

ए सूरज आंखों देखिए, पर याही फंद के बंध॥१७॥

इस भौतिक सूर्य के उदय होते ही अज्ञानता के अन्धकार का बन्धन इतना अधिक हो जाता है कि लोगों को अपनी मृत्यु की भी चिन्ता नहीं होती। इस सूर्य के द्वारा आँखों से भौतिक एवं स्थूल पदार्थों को देखा जाता है, किन्तु इसी के मोहमयी बन्धन में सब फँस जाते हैं।

भावार्थ- सूर्य के प्रकाश में एक भौतिकवादी व्यक्ति भौतिक पदार्थों की उपलब्धि के लिये घोर परिश्रम करता है और उसी में दिन-रात लगा रहता है। किन्तु यदि आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश मिल जाये, तो एक अध्यात्मवादी व्यक्ति सूर्य के प्रकाश में धर्मग्रन्थों का

स्वाध्याय कर सकता है तथा आँखें बन्द कर ध्यान भी कर सकता है। ध्यान की अवस्था में जब इस जगत का आभास ही नहीं रहता, तब इस सूर्य के उदित होने या अस्त होने का उसकी आध्यात्मिक साधना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

वाओ बादल बीज गाजही, जिमी जल ना समाए।

ए पांचो आप देखाए के, फेर ना पैदा हो जाए॥१८॥

कभी तीव्र हवा बहने लगती है, तो कभी चारों ओर बादल छा जाते हैं। विद्युत चमकने लगती है और इतनी अधिक वर्षा होती है कि लगता है जल धरती में समा ही नहीं पायेगा अर्थात् सब कुछ डूब जायेगा, किन्तु थोड़ी ही देर में सब सामान्य हो जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। इस प्रकार का दृश्य

पाँचों तत्व के द्वारा दिखाया जाता है।

या भांत अनेक ब्रह्मांड में, देत देखाई दसों दिस।

ए मोहजल लेहेरां लेवहीं, सागर सब एक रस॥१९॥

इस प्रकार ब्रह्माण्ड में दसो दिशाओं में अनेक तरह के प्राकृतिक दृश्य दिखायी पड़ते हैं। सृष्टि में सर्वत्र मोह सागर (माया) का ही एकछत्र साम्राज्य फैला हुआ है, जहाँ उसकी लहरें क्रीड़ा करती हुई दिखायी देती हैं।

ए कोहेड़ा काली रैन का, कोई न पावे कल मूल।

कहां कल किल्ली कुलफ, जो द्वार न पाइए सूल॥२०॥

काली रात्रि के समान अज्ञानता का गहन अन्धकार फैलाने वाली इस माया ने ही यह कुहासे (कुहरे) का धुन्ध फैला रखा है, जिससे बाहर निकलने का मार्ग कोई

भी नहीं खोज पा रहा है। जब इससे बाहर निकलने का कोई द्वार ही किसी को दिखायी नहीं पड़ रहा है, तो ज्ञान रूपी चाभी से उसके बन्द ताले को खोलने की कला की कल्पना ही कैसे की जा सकती है?

द्रष्टव्य— उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण में प्रयुक्त "कुलफ" वस्तुतः "कुफ़" है।

ए तीनों लोक तिमर के, लिए जो तीनों ही घेर।

ए निरखे मैं नीके कर, पर पाईए ना काहूं सेर॥२१॥

सम्पूर्ण पृथ्वी लोक, स्वर्ग, एवं वैकुण्ठ भी माया के अन्धकार से ही उत्पन्न हुए हैं और इन तीनों को माया ने चारों ओर से घेर रखा है अर्थात् इनमें अपना वर्चस्व बनाये हुए है। मैंने अच्छी प्रकार से चिन्तन करके यही निष्कर्ष निकाला है कि संसार में किसी को भी इससे परे

जाने का मार्ग नहीं मिल पा रहा है।

भावार्थ- पृथ्वी पर सत्व, रज, एवं तम तीनों का वर्चस्व है, जबकि वैकुण्ठ में सतोगुण अत्यधिक है, रज एवं तम अति न्यून मात्रा में हैं। स्वर्ग मध्यम परिमाण में है, फिर भी उसमें पृथ्वी की अपेक्षा सतोगुण की अधिकता है। यही कारण है कि वैकुण्ठ सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को माया के अधीन कहा गया है। वस्तुतः ये बने ही माया से हैं।

ए अंधेरी इन भांत की, काहूं सांध न सूझे सल।

ए सुध काहूं न परी, कई गए कर कर बल॥२२॥

इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में माया का अन्धकार इस प्रकार फैला हुआ है कि किसी को भी अपने मूल लक्ष्य (ब्रह्म-साक्षात्कार) को पाने के मार्ग का पता नहीं चल पा रहा

है। बड़े-बड़े मनीषियों एवं योगी-यतियों ने बहुत अधिक प्रयास किया, किन्तु किसी को भी इसकी वास्तविकता का बोध नहीं हो सका है।

ग्यान लिया कर दीपक, अंधेर आप नहीं गम।

जोत दीपक इत क्या करे, ए तो चौदे तबकों तम॥२३॥

संसार के प्रबुद्ध जनों ने अपने हाथों में ज्ञान का दीपक लेकर माया के अन्धकार से स्वयं को पार करने का प्रयास किया, किन्तु न तो वे अपनी पहचान कर पाये और न ही माया के अन्धकार की। जब चौदह लोकों के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार फैला हुआ है, तो भला यह छोटा सा दीपक कितना उजाला कर सकता है?

भावार्थ- तारतम वाणी के अवतरण से पूर्व के धर्मग्रन्थों

का ज्ञान स्वप्नमयी बुद्धि का था, जिससे हमेशा संशय बना रहता था। यही कारण है कि उनके ज्ञान की तुलना एक दीपक से की गयी है।

ए देखे ही परिण दुख में, कोई ब्राध को रचियो रोग।

छुटकायो छूटे नहीं, नहीं ना देखन जोग॥२४॥

जिस प्रकार किसी असह्य रोग से ग्रसित रोगी के स्पर्श मात्र से वह पीड़ादायी रोग लग जाता है, उसी प्रकार यह संसार ऐसा है, जिसमें मोहक विषय-भोगों को देखने मात्र से ही तरह-तरह के दुःखों में फँसना पड़ता है। विषय-भोगों की यह तृष्णा छुड़ाने पर भी नहीं छोड़ती है। इस प्रकार तृष्णा के दुःखों से भरा हुआ यह जगत देखने योग्य नहीं है।

भावार्थ- जिस प्रकार अग्नि में घी डालने पर वह और

अधिक प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार जीव विषय-भोगों का जितना अधिक सेवन करता है, उतनी ही अधिक उसकी इच्छा भी बढ़ती जाती है। इस प्रकार विषय-भोग और उसके परिणाम स्वरूप मिलने वाले दुःख का चक्र प्रारम्भ हो जाता है। चित्त में विषयों के संस्कार और दृढ़ होते जाते हैं, जिससे वह विषय-भोगों के दलदल में और अधिक फँसता जाता है। इस सम्बन्ध में एक मनीषी का कथन है—

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्ण सर्पा विषादपि।

विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्यहम्॥

अर्थात् विषय का विष काले सर्प से भी अधिक भयंकर होता है। काले सर्प का काटा हुआ तो मात्र एक बार ही मरता है, किन्तु विषय रूपी सर्प से काटा हुआ बार-बार जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है और विषयों को देखने

मात्र से दुःखी होता है।

टेढ़ी सकड़ी गलियां, तामें फिरे फेर फेर।

गुन पख अंग इंद्रियां, कियो अंधेरी में अंधेर॥२५॥

अनेक प्रकार की कष्टमयी योनियों में जीव इस चाहत से भटकता रहता है कि उसे विषय सुख प्राप्त हो जायें। उसके साथ जुड़े हुए तीन गुण (सत्व, रज, तम), दो पक्ष (बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी प्रवृत्ति), अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, एवं अहंकार), और इन्द्रियों (५ ज्ञानेन्द्रियाँ व ५ कर्मेन्द्रियाँ) का बन्धन उसके मायावी अन्धकार में और अधिक वृद्धि कर देता है।

भावार्थ— टेढ़ी-संकरी गलियों का तात्पर्य है – वे योनियाँ जिनमें जीव को बहुत अधिक कष्ट भोगना पड़ता है। जब रज और तम के बन्धन में बँधे हुए जीव के

अन्तःकरण और इन्द्रियों के अन्दर विषय सुख की कामना प्रबल हो उठती है तो सुख की चाहत में वह और अधिक बढ़ती ही जाती है। इसका फल यह होता है कि वह माया में और अधिक फँसता जाता है। इसे ही "कियो अंधेरी में अंधेर" कहा गया है।

तत्व पांचो जो देखिए, यामें ना कोई थिर।

प्रले होसी पल में, वैराट सचरा चर॥२६॥

इन पाँच तत्वों के विषय में यदि देखा जाये तो यह सभी नश्वर हैं। महाप्रलय का समय आने पर पल भर में ही चर-अचर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नाश हो सकता है।

ए उपजे पांचो मोह थें, और मोह को तो नहीं पार।

नेत नेत कहे निगम फिरे, आगे सुध ना परी निराकार॥२७॥

इन पाँच तत्वों की उत्पत्ति मोहतत्व से होती है और मोहसागर की कोई सीमा ही नहीं है। वैदिक ग्रन्थों ने परब्रह्म को "नेति-नेति" कहकर मौन धारण कर लिया। इनमें इस निराकार मण्डल मोहसागर से आगे का स्पष्ट ज्ञान नहीं है।

भावार्थ- मूल वेदों में कहीं भी "नेति" शब्द नहीं है। वेदों के व्याख्यान ग्रन्थों ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, एवं षट् दर्शनों में "नेति" शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है। इन्हें ही "निगम" शब्द की संज्ञा दी गयी है। मनुस्मृति के कथन "निगमांश्चैव वैदिकान्" से भी यही सिद्ध होता है कि मूल संहिता भाग ही वेद हैं और उसके व्याख्या ग्रन्थ निगम हैं।

"नेति-नेति" का अर्थ होता है- ऐसा नहीं-ऐसा नहीं। परब्रह्म का स्वरूप तमस (प्रकृति) से परे अनन्त सूर्यों के

समान प्रकाशमान है। उनके अलौकिक स्वरूप की तुलना किसी भी मायाजन्य पदार्थ से नहीं की जा सकती। इसलिये निराकार तक की अनुभूति को उन्होंने "नेति-नेति" अर्थात् "ऐसा नहीं-ऐसा नहीं" कहकर व्यक्त किया है। शब्द की गति निराकार तक ही है। इसलिये निराकार से परे शब्दातीत परब्रह्म के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अथर्व वेद के केन सूक्त में स्पष्ट रूप से ब्रह्मपुरी का वर्णन दिया गया है। इसी प्रकार मुण्डक उपनिषद् का कथन है- "दिव्ये ब्रह्मपुरे हि एषः व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठितः"। यदि वेद में निराकार को ही परमात्मा का स्वरूप माना गया होता, तो इस प्रकार के कथन कहीं भी नहीं होते।

मूल बिना ए मंडल, नहीं नेहेचल निरधार।

निकसन कोई न पावहीं, वार न काहूं पार॥२८॥

यह सम्पूर्ण क्षर मण्डल (प्रकृति मण्डल) निश्चित रूप से बिना किसी मूल का है और नश्वर है। इसके साथ ही यह असीम है और कोई भी इसके परे नहीं जा पाता है।

भावार्थ- यद्यपि सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म के आधार में स्थित है, तथापि जिस कारण प्रकृति से इसकी रचना हुई है, वह इतनी सूक्ष्म है कि उसकी सूक्ष्मता का आकलन मन, बुद्धि के धरातल पर या किसी वैज्ञानिक यन्त्र की माप से नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि सामान्यतः कारण-प्रकृति से बने असंख्य लोकों वाले इस क्षर मण्डल को बिना मूल का कहा जाता है। इसका आशय यह है कि जिस कारण-प्रकृति से यह जगत बना है, उसके रूप का निर्धारण ही नहीं हो सकता। कारण-

प्रकृति की सूक्ष्मता को मात्र इस कथन से समझा जा सकता है कि उसमें विकृति से महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती हैं, महत्तत्त्व से अहंकार, तन्मात्रा, तत्पश्चात् आकाश आदि पञ्चभूतों की उत्पत्ति होती है। इसके बाद ही कार्य जगत का रूप दिखायी देता है।

गीता में इस संसार की तुलना उस वृक्ष से की गयी है जिसकी जड़ तो ऊपर आकाश में है और शाखायें नीचे की ओर। इस संसार को बिना मूल का कहा जाना एक आलंकारिक वर्णन है।

पंथ पैडे कई चलहीं, कई भेख दरसन।

ता बीच अंधेरी ग्यान की, पावे ना कोई निकसन॥२९॥

इस संसार में परब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग दर्शाने का दावा करने वाले अनेक प्रकार के दार्शनिक सिद्धान्त एवं वेश-

भूषा वाले पन्थ प्रचलित हैं। इनका ज्ञान स्वप्नमयी बुद्धि का है, जिसके परिणामस्वरूप इनके हृदय में अज्ञानता का अन्धकार बना ही रहता है और इनमें से कोई भी निराकार से परे नहीं जा पाता।

भावार्थ- यद्यपि ज्ञान से हृदय में सत्य का प्रकाश होता है, किन्तु स्वप्नमयी बुद्धि से परब्रह्म के धाम एवं स्वरूप आदि विषयों का वास्तविक निर्धारण नहीं हो पाता , जिससे मन में हमेशा संशय बना रहता है। इस स्थिति में मन-बुद्धि के धरातल पर आध्यात्मिक विषयों में जो सिद्धान्त गढ़े जाते हैं, उनमें परस्पर विरोधाभास होता है क्योंकि सबके मन-बुद्धि का धरातल अलग-अलग होता है। इस प्रकार जिसे ज्ञान माना जाता है, वह अज्ञान के ही रूप में फलित होने लगता है।

यामें ज्यों ज्यों खोजिए, त्यों त्यों बंध पड़ते जाएं।

कई उदम जो कीजिए, तो भी तिमर न छोड़े ताए॥३०॥

इस संसार में परब्रह्म के विषय में जितनी ही खोज की जाती है, संशयात्मक ज्ञान होने के कारण उतना ही अधिक उलझनों-बन्धनों में बँधते जाते हैं। यदि कोई अनेक प्रकार से प्रयास करे, तो भी अज्ञानता का संशय भरा अन्धकार उनका पीछा नहीं छोड़ता।

इत जुध किए कई सूरमें, पेहेन टोप सिल्हे पाखर।

बचन बड़े रन बोल के, सो भी उलट पड़े आखिर॥३१॥

इस संसार में माया से युद्ध करने के लिये बड़े-बड़े ज्ञानियों ने ज्ञान (टोप) एवं वैराग्य (पाखर) का कवच धारण किया, और साधनों के अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित होकर अपनी निश्चित विजय के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी

बातें की, किन्तु अन्ततोगत्वा उन्हें हार कर निराश होना पड़ा।

भावार्थ- शिर की रक्षा के लिये लोहे का टोप धारण किया जाता है, जिसे "शिरस्त्राण" कहते हैं। "सिल्हे" का शुद्ध शब्द सिलह होता है, जिसका तात्पर्य होता है अस्त्र-शस्त्र। यह अरबी-फारसी भाषा का शब्द है। लोहे के तारों का बना हुआ रक्षा कवच "पाखर" कहलाता है। हाथी के शरीर पर डाला जाने वाला पाखर बड़ा होता है।

ए सुध अजूं किन ना परी, बढ़त जात विवाद।

ए खेल तो है एक खिन का, पर जाने सदा अनाद॥३२॥

माया से परे सच्चिदानन्द परब्रह्म की सुधि आज तक किसी को नहीं हो सकी थी। स्वप्न की बुद्धि के कारण धार्मिक विषयों में सभी मतों में विवाद बना ही रहता है।

यह माया का खेल अक्षर ब्रह्म के मन के पल भर के स्वप्न का है, किन्तु संसार के लोगों को ऐसा लगता है कि जैसे यह अनादि काल से चला आ रहा है।

खेल खावंद जो त्रैगुन, जाने याथें जासी फेर।

ए निरखे मैं नीके कर, अजूं ए भी मिने अंधेर॥३३॥

इस मायावी खेल के प्रमुख व्यक्तित्व माने जाने वाले ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव हैं, जो तीनों गुणों के विशिष्ट प्रतीक माने जाते हैं। मैं सोचती थी कि सम्भवतः इनके ज्ञान से संसार के आवागमन का चक्र मिट जाएगा, किन्तु जब अच्छी तरह से मैंने इन्हे देखा तो मुझे यह अनुभव हुआ कि ये तो अभी भी माया के अन्धकार से बाहर नहीं निकले हैं।

भावार्थ— सत्व, रज, तम प्रत्येक प्राणी में कम या

अधिक मात्रा में होते हैं। पौराणिक मान्यता में विष्णु भगवान को सतोगुण का, ब्रह्मा जी को रजोगुण का, और शिव को तमोगुण का प्रतीक माना जाता है। इसी आधार पर इन्हें तारतम्य वाणी में "त्रैगुण" कहकर सम्बोधित किया गया है।

किन्तु वैदिक मान्यता के अनुसार सत्त्व, रज, और तम प्रत्येक प्राणी में अनिवार्य रूप से होते हैं। अन्तर केवल इतना ही होता है कि किसी में सतोगुण अधिक है, किसी में रजोगुण, तो किसी में तमोगुण। ब्रह्मा जी में रजोगुण की प्रबलता है और शिव जी में तमोगुण की। किन्तु यह कदापि नहीं माना जा सकता कि विष्णु जी में तमोगुण का अल्प अंश भी नहीं है या शिव जी में सतोगुण का अल्प अंश भी नहीं है।

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड के विशिष्ट व्यक्ति होने से

इन्हें ब्रह्माण्ड का स्वामी भी कहा गया है। पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो ब्रह्मा, विष्णु, और शिव तीनों का जन्म एवं साधना का स्थान पृथ्वी लोक ही रहा है। जैसे भगवान शिव का कैलाशवासी होना एवं भगवान विष्णु का मानसरोवरवासी होना सर्वमान्य है।

इस सृष्टि के वास्तविक स्वामी अक्षर ब्रह्म हैं, जिनके प्रतिनिधि रूप में उनका स्वाप्निक (सांकल्पिक) रूप आदिनारायण है। इस पृथ्वी लोक पर ब्रह्मा, विष्णु, और शिव का वर्चस्व रहा है। इसलिये गौण रूप में इनको भी स्वामी कह दिया गया है।

ए द्वार कोई खोल के, कबहूँ ना निकस्या कोए।

ए बुजरक जो छल के, बैठे देखे बेसुध होए॥३४॥

माया के आवरण को पार करके आज तक कोई भी

अखण्ड में नहीं जा पाया। इस खेल के बड़े-बड़े अग्रगण्य महापुरुषों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) को भी मैंने माया में बेसुध हुए देखा है।

भावार्थ- शिव जी और विष्णु भगवान अक्षर ब्रह्म की वासना हैं। इसलिये ये निराकार से परे बेहद का कुछ रहस्य तो जानते हैं, किन्तु स्पष्ट रूप से वहाँ के बारे में बताने का सामर्थ्य नहीं रखते। यदि ऐसा कहा जाये कि भगवान शिव ने पुराण संहिता में व्यास जी से और माहेश्वर तन्त्र में उमा से अखण्ड की लीला का वर्णन कैसे कर दिया, तो इसका स्पष्ट समाधान यह है कि ऐसा उन्होंने परब्रह्म की कृपा दृष्टि से किया है, अपने बल पर नहीं।

ए जिन बांधे सो खोलहीं, तोलों ना छूटे बंध।

या विध खेल खावंद की, तो औरों कहा सनंध॥३५॥

जिस अक्षरातीत के आदेश से यह माया का बन्धन हुआ है, एकमात्र वह ही इस बन्धन को हटा सकता है। जब इस खेल के स्वामी कहे जाने वाले ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी इसके बन्धन में हैं, तो बेचारे औरों के बारे में क्या कहा जा सकता है?

निज बुध आवे अग्याएँ, तोलों ना छूटे मोह।

आतम तो अंधेर में, सो बुध बिना बल ना होए॥३६॥

निज बुद्धि धाम धनी के आदेश से प्राप्त होती है। जब तक उसकी प्राप्ति न हो, तब तक इस मोह का पर्दा नहीं हट सकता। आत्मा तो इस मोह सागर में जीव के ऊपर बैठकर खेल को देख रही है। जब तक जीव को जाग्रत

बुद्धि या निज बुद्धि का ज्ञान प्राप्त नहीं होता , तब तक आत्म-जाग्रति के लिये वह बल नहीं कर सकता।

ए तो कही इन इंड की, पिया पूछ्यो जो प्रश्न।

कहूँ और अजुं बोहोत है, वे भी सुनो वचन॥३७॥

हे धाम धनी! आपने मुझसे जो कुछ प्रश्न पूछा, उससे सम्बन्धित ये संसार की सारी बातें मैंने आपसे कही हैं। अभी और भी बहुत-सी बातें शेष हैं, जिन्हें मैं कह रही हूँ, उन्हें आप सुनिये।

प्रकरण ॥१॥ चौपाई ॥३७॥

प्रकरण खोज का – राग श्री मारू

पिया मैं बोहोत भांत तोको खोजिया, छोड़ धंधा सब और।

पूछत फिरों सोहागनी, कोई बताओ पिया ठौर॥१॥

श्री श्यामा जी कहती हैं कि मेरे प्राणेश्वर! मैंने संसार के सभी लौकिक कार्यों को छोड़कर आपको अनेक प्रकार से ढूँढा और एक सुहागिन के रूप में मैं चारों ओर खोज करते हुए यह पूछती फिरी कि इस संसार में कोई तो मुझे प्रियतम का धाम बता दे।

मैं नेक बात याकी कहूं, तुम कारन खोज्या खेल।

कोई ना कहे मैं देखिया, जिनों नीके कर खोजेल॥२॥

मेरे धाम धनी! इस माया के खेल में मैंने आपकी जो खोज की है, उसके सम्बन्ध में मैं थोड़ी-सी बात बताती

हूँ। जिन्होंने अपने विशिष्ट ज्ञान, वैराग्य, एवं कठोर साधनाओं से आपको खोजने का प्रयास किया था, उनमें से किसी ने भी यह नहीं कहा कि मैंने सच्चिदानन्द परब्रह्म का दर्शन किया है।

सास्त्र साधू जो साखियां, मैं देखी सबों की मत।

पिया सुध काहू में नहीं, कोई न बतावे तित॥३॥

मैंने तरह-तरह के शास्त्रों एवं सन्तों की वाणियों का अवलोकन किया। इस प्रकार मैंने सभी मत-मतान्तरों में खोजा, किन्तु मुझे ऐसा लगा कि इनमें से किसी को भी आपकी पहचान नहीं है। किसी ने भी आपके परमधाम के बारे में कुछ भी नहीं बताया।

छोटे बड़े जिन खोजिया, न पाया करतार।

संसा सब कोई ले चल्या, पर छूटा नहीं विकार॥४॥

सामान्य से लेकर बड़े-बड़े ज्ञानियों एवं भक्तों ने आपको खोजा, लेकिन कोई भी आपको पाने में सफल नहीं हुआ। सबके मन में अपने ज्ञान, अनुभूति, एवं आपके धाम तथा स्वरूप के विषय में संशय बना रहा। इस प्रकार माया के विकारों से परे न जा सके।

झूठा ए छल कठन, काहूँ ना किसी की गम।

कहां वतन कहां खसम, कौन जिमी कौन हम॥५॥

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड छल-प्रपञ्च से भरा हुआ मिथ्या (परिवर्तनशील) है। इसमें रहना बहुत दुःखदायी (कठिन) है। इस संसार में कहीं भी किसी को आपकी वास्तविक पहचान नहीं है। इस संसार में किसी को भी

यह बोध नहीं है कि हमारा मूल घर कहाँ है ? हमारी आत्मा का प्रियतम कौन है ? यह संसार कैसा है ? हमारा निज स्वरूप क्या है ?

ए देखी बाजी छल की, छल की तो उलटी रीत।

इनमें सीधा दौड़के, कोई ना निकस्या जीत॥६॥

मैंने इस मायावी छल के खेल रूपी ब्रह्माण्ड को देखा, जिसमें चाल-चलन ही उल्टा है अर्थात् यहाँ क्षणभंगुर सुखों से ही तृप्ति मानी जाती है। जिस प्रकार नदी की धारा के विपरीत दिशा में सीधा तैरने पर उसको पार नहीं किया जा सकता, बल्कि तिरछी दिशा में तैरने पर ही पार किया जा सकता है, उसी प्रकार विषय-भोगों के हठपूर्वक त्याग या सेवन से भी इस संसार से पार नहीं हुआ जा सकता है, बल्कि विवेकपूर्वक आसक्तिरहित

तिरछे मार्ग से ही पार किया जा सकता है।

मैं देख्या दिल विचार के, चितसों अर्थ लगाए।

इस मंडल में आतमा, चल्या ना कोई जगाए॥७॥

मैंने अपने हृदय में बहुत ही गम्भीरतापूर्वक विचार किया और अपने चित्त के चिन्तन से यही निष्कर्ष निकाला कि इस मायावी जगत में अब तक कोई भी अपनी आत्मा (अपने चैतन्य स्वरूप) को यथार्थ रूप में जाग्रत नहीं कर सका है।

मेहेनत तो बोहोतों करी, अहनिस खोज विचार।

तिन भी छल छूटा नहीं, गए हाथ पटक कई हार॥८॥

आपको पाने के लिये अनेकों ने बहुत अधिक परिश्रम किया। उन्होंने दिन-रात तत्व ज्ञान के सम्बन्ध में विचार

किया और साधनायें की, परन्तु उनसे भी माया का बन्धन टूट नहीं सका। अन्ततोगत्वा वे निराश हो गये और हार गये।

भावार्थ- "हाथ पटकना" एक मुहाविरा है जिसका अर्थ होता है- निराशा के भावों में छटपटाना। यह उस अवस्था में कहा जाता है, जब सफलता की कोई भी सम्भावना नहीं रह जाती।

मोहादिक के आद लों, जेती उपजी सृष्टि।

तिन सारों ने यों कहया, जो किनहूं ना देख्या दृष्टि॥९॥

सृष्टि में सर्वप्रथम कारण रूप मोहतत्व की उत्पत्ति हुई। उससे महत्तत्व तथा अहंकार की रचना के साथ ही कार्य रूप में यह अनन्त सृष्टि दृष्टिगोचर होने लगी। इस सृष्टि में किसी भी लोक में उत्पन्न होने वाले प्राणी (मनुष्य, देवता

आदि) ने आज तक यह नहीं कहा कि मैंने सच्चिदानन्द परब्रह्म का साक्षात्कार किया है।

विशेष- यद्यपि रामकृष्ण परमहंस जी ने अवश्य यह कहा है कि मैंने परमात्मा को साक्षात् देखा है, किन्तु उनका यह कथन आदिनारायण-अव्याकृत के लिये ही है, अक्षर-अक्षरातीत के लिये नहीं।

वरना वरनो खोजिया, जेती बनिआदम।

एता दृढ़ किने ना किया, कहां खसम कौन हम॥१०॥

मानव समाज की जितनी भी जातियाँ हैं, उन सबने आपके सम्बन्ध में खोज की, किन्तु किसी ने भी इस प्रश्न का उत्तर दृढ़तापूर्वक नहीं दिया कि हम कौन हैं तथा हमारा प्रियतम कौन है?

भावार्थ- वर्ण एवं जाति में अन्तर होता है। गुण, कर्म,

एवं स्वभाव के अनुसार मात्र चार ही वर्ण होते हैं – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र, किन्तु इनके पारस्परिक मेल से १८ वर्णों की कल्पना कर ली जाती है। इनके जन्मना आधार पर, वर्तमान समय में हिन्दू धर्म में १२०० जातियाँ बन गयी हैं।

किन्तु उपरोक्त चौपाई में संसार की सभी जातियों की खोज को दर्शाया गया है, इसलिये यहाँ हिन्दू समाज की १२०० जातियों या ४ अथवा १८ वर्णों का प्रसंग नहीं है। इस प्रकार सभी जातियों का तात्पर्य है – हिन्दी, चीनी, तुर्क, मुगल, यहूदी, पठान, अंग्रेज, इत्यादि।

उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण का अन्तिम शब्द "हम" है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि इस चौपाई में श्री देवचन्द्र जी की खोज का प्रसंग नहीं है, अपितु संसार के समस्त वर्गों (जातियों) के द्वारा परब्रह्म की खोज का

प्रसंग है। "जेती बनि आदम" से भी यही भाव प्रकट होता है। सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने संसार के सभी वर्गों (पारसी, यहूदी, तुर्क, अंग्रेज आदि) में खोज नहीं की थी।

आद मध और अबलों, सब बोले या विध।

केवल विदेही हो गए, तिन भी ना कही सुध॥११॥

इस सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर मध्य काल तक और आज दिन तक सबने यही कहा है कि हमने न तो परब्रह्म को जाना है और न अपने स्वरूप को ही जाना है। कैवल्य की विदेहावस्था को प्राप्त होने वाले राजा जनक जैसे अनेकों ज्ञानी हो चुके हैं, किन्तु उन्होंने भी परब्रह्म के विषय में यथार्थ रूप से नहीं बताया।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाई में वर्णित "केवल" योग दर्शन

का कैवल्य है, जिसमें चेतना अपने निज स्वरूप में स्थित तो हो जाती है, किन्तु परमगुहा की प्राप्ति न होने से ब्रह्म साक्षात्कार से वंचित रह जाती है। इस अवस्था में स्वयं की प्रकृति से परे की शुद्धावस्था की प्राप्ति तो हो जाती है, किन्तु ब्रह्म के साक्षात्कार के लिये परब्रह्म से एकात्म प्रेम भाव की आवश्यकता होती है। इस अवस्था की प्राप्ति करने वाले जनक, व्यास, गौतम बुद्ध आदि अनेकों मनीषी हो चुके हैं।

जनश्रुति है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जन्म अब से लगभग १७ लाख वर्ष पूर्व हुआ था और शुकदेव जी का जन्म आज से लगभग ५ हजार वर्ष पूर्व, किन्तु दोनों समय ही जनक की उपस्थिति क्यों मानी जाती है?

इसका कारण यह है कि जनक एक वैसी ही उपाधि है जैसे शंकराचार्य। आदि शंकराचार्य के पश्चात् उनके सभी

शिष्य जिस प्रकार शंकराचार्य ही कहलाते हैं, उसी प्रकार सीता के पिता मिथिला नरेश जनक के पश्चात् वहाँ के राज सिंहासन पर बैठने वाले जिस राजा ने अध्यात्म जगत की उस अवस्था (कैवल्य) को प्राप्त किया, उन्हें भी शोभा रूप में जनक ही कहा गया। शुकदेव जी के गुरु भी जनक ही थे, किन्तु वे दूसरे व्यक्ति थे। विश्वामित्र, वशिष्ठ, आदि विशिष्ट व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही मानना चाहिये।

वेदों कथ कथ यों कथ्या, सब मिथ्या चौदे लोक।

बकते बकते यों बके, एक अनेक सब फोक॥१२॥

वैदिक ग्रन्थों ने कहते-कहते यह कहा अर्थात् कठिनतापूर्वक यह कह दिया कि चौदह लोकों का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परिवर्तनशील (मिथ्या) है। इस प्रकार

अनावश्यक शब्द-जाल के द्वारा उन्होंने मात्र इतना ही दर्शाया कि उसी एक अद्वितीय ब्रह्म के द्वारा ही अनन्त (अनेक) प्राणियों की यह सृष्टि दृष्टिगोचर हो रही है। वस्तुतः यह सम्पूर्ण जगत मिथ्या है।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई में "वेद" का तात्पर्य वेदों की व्याख्यान स्वरूप ११२७ शाखाओं, ब्राह्मण, आरण्यक, तथा उपनिषद् ग्रन्थों से है। पौराणिक मान्यता में ब्राह्मण, आरण्यक, एवं उपनिषद् ग्रन्थों को भी वेद ही कहा जाता है, जो उचित नहीं है। संहिता भाग ही यथार्थ रूप में वेद हैं और ईश्वरीय ज्ञान होने से अपौरुषेय हैं। "ब्रह्म अक्षर समुद्भवम्" (गीता) का कथन इसी सन्दर्भ में है।

यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म मन-वाणी से सर्वथा परे हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें शब्दों के माध्यम से वास्तविक रूप में दर्शाया जाना सम्भव नहीं

है। ब्रह्म के विषय में जो कुछ भी कहा जाता है, वह मात्र आधार रूप ही होता है, यथार्थ नहीं। मूल संहिता रूप में उपस्थित वेदों का अनुपम ज्ञान इतने सूक्ष्म रूप में है कि बिना समाधिस्थ (ऋतम्भरा) प्रज्ञा के उसके परम सत्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता। यद्यपि वेदों की मूल संहिता में कई दर्जन ऐसे मन्त्र हैं, जो ब्रह्म के धाम एवं स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं। अथर्व वेद का केन सूक्त मात्र इसी विषय से सम्बन्धित है, किन्तु तारतम वाणी के प्रकाश में ही इस सत्य को यथार्थ रूप से जाना जा सकता है, सामान्य मानवीय बुद्धि से नहीं।

वेदों में निहित शाश्वत सत्य को तारतम ज्ञान के अभाव में ऋषिजन अपने व्याख्यान ग्रन्थों में यथार्थ रूप से प्रकट नहीं कर सके, जिसका परिणाम यह हुआ कि जन सामान्य परब्रह्म के धाम एवं स्वरूप के सम्बन्ध में यथार्थ

रूप से नहीं जान सका और अनेक विरोधाभासी मान्यताओं का शिकार हो गया। वेदों के व्याख्यान स्वरूप इस विशाल साहित्य को ही व्यंग्यात्मक रूप में इस चौपाई में "बकना" कहा गया है, क्योंकि निरर्थक एवं निरुद्देश्य बोलते रहने को सामान्य भाषा में बकना कहते हैं। इसी तथ्य को कलश ग्रन्थ के प्रकरण १७ (वेद का कोहेड़ा) में दूसरे शब्दों में दर्शाया गया है। यहाँ भी वेद का आशय संहिता भाग नहीं, अपितु व्याख्यान ग्रन्थ हैं।

बुध तुरिया दृष्ट श्रवना, जहांलों पोहोंचे मन।

ए होसी उतपन सब फना, जो आवे मिने वचन॥१३॥

जिसकी बुद्धि से विवेचना हो, जो अनुभव प्रकृति मण्डल की सम्प्रज्ञात समाधि में हो, जो दृष्टि एवं श्रवण के कार्य क्षेत्र की परिधि में आता हो, जिसमें मन की गति

हो, एवं वाणी से जिसका कथन हो सकता हो, वह निश्चित रूप से प्रकृति का ही कार्य-कारण रूप होता है। उसके विषय में यही मान लेना चाहिये कि यह अनुभूत तथ्य या तो कारण प्रकृति का है या उससे उत्पन्न होने वाले कार्य जगत का है, जो महाप्रलय में पूर्ण रूप से लय हो जाने वाला है।

भावार्थ- जाग्रत, स्वप्न, तथा सुषुप्ति के पश्चात् जीव की जो चौथी अवस्था आती है, उसे तुरीयावस्था कहते हैं। यह अवस्था मात्र समाधिस्थ काल में ही प्राप्त होती है। सम्प्रज्ञात समाधि के अन्तर्गत वितर्क, विचार, आनन्द, और अस्मिता अनुगत समाधियाँ होती हैं, जिसमें प्रकृति से सम्बन्ध बना रहता है। इस स्थिति में ब्रह्म के स्वरूप के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्णय नहीं लिया जा सकता।

यद्यपि माण्डूक्य उपनिषद् में तुरीयावस्था को ही

सर्वोपरि कह दिया गया है, किन्तु यह जाग्रत, स्वप्न, एवं सुषुप्ति अवस्था की अपेक्षा में कहा गया है। सम्प्रज्ञात के पश्चात् असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि की जो अवस्था आती है, उसे ही प्रकृति से परे कहा जाता है। इस स्थिति को ही माण्डूक्योपनिषद् में "प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैतः" अर्थात् कल्याणकारी और सभी प्रपञ्चों से रहित अद्वैत कहा गया है।

वेदांती भी कहे थके, द्वैत खोजी पर पर।

अद्वैत शब्द जो बोलिए, तो सिर पड़े उतर॥१४॥

वेदान्ती भी परब्रह्म के विषय में बोलते-बोलते थक गये। वे द्वैत (जीव+माया) के इस मायावी मण्डल में अद्वैत ब्रह्म को खोजते रहे, किन्तु पा न सके। अन्त में उन्होंने यही कहा कि यदि हम अद्वैत शब्द भी बोल दें, तो हमारा

शिर धड़ से अलग हो जायेगा अर्थात् अद्वैत शब्दातीत है।

मन चित बुध श्रवणा, पोहोंचे दृष्ट ना सब्दा कोए।

खट प्रमान थें रहित है, सो दृढ़ कैसे होए॥१५॥

वेदान्तियों का कथन है कि मन, चित्त, बुद्धि, श्रवण, दृष्टि, तथा शब्द में से कोई भी परब्रह्म तक पहुँच नहीं पाता है। इस प्रकार जो परब्रह्म इन ६ प्रमाणों (मनन, चिन्तन, विवेचन, श्रवण, दृश्यता, तथा शब्द) की पहुँच से परे है, उसके विषय में दृढ़तापूर्वक कुछ भी कैसे कहा जा सकता है?

भावार्थ— मन से मनन, चित्त से चिन्तन, तथा बुद्धि से विवेचना होती है। आँखों से देखा जाता है तथा कानों से सुना जाता है। इसी प्रकार ग्रन्थों के शब्द प्रमाण से उसको जानने का प्रयास किया जाता है। मन, चित्त,

बुद्धि, नेत्र, एवं श्रवण प्रमाण उपलब्ध कराने के साधन हैं, साध्य (प्रमाण) नहीं। ६ प्रमाण तो मनन, चिन्तन, विवेचन, श्रवण, दृश्यता, तथा शब्द को ही मानना पड़ेगा।

द्वैत आड़े अद्वैत के, सब द्वैतई को विस्तार।

छोड़ द्वैत आगे वचन, किने ना कियो निरधार॥१६॥

अद्वैत ब्रह्म के साक्षात्कार के लिये हमारी अन्तर्दृष्टि के सम्मुख यह द्वैत जगत आड़े आ जाता है। इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र द्वैत (जीव तथा प्रकृति) का ही विस्तार दिखायी देता है। आज तक इस सृष्टि में पञ्चवासनाओं को छोड़ कर किसी ने भी इस द्वैत मण्डल से आगे जाकर अद्वैत धाम या परब्रह्म के विषय में कुछ भी नहीं कहा है।

ए अलख किनहूं ना लखी, आदै थें अकल।

ऐसी निराकार निरंजन, व्याप रही सकल॥१७॥

यह माया ऐसी अलख (अगम्या, अज्ञेया) है, जिसे सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज दिन तक कोई भी जान नहीं सका है। इसका न तो कोई आकार (आकृति) है और न अवयव है, किन्तु सम्पूर्ण सृष्टि में इसका ही विस्तार (साम्राज्य) है।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण में "व्याप" शब्द से ऐसा भाव ग्रहण नहीं करना चाहिये कि यह सबमें व्यापक है, अपितु ऐसा मानना चाहिए कि जीव के अतिरिक्त इस सृष्टि के दृश्य—अदृश्य पदार्थों के रूप में एकमात्र वही स्वयं है अर्थात् कण—कण के रूप में उसका ही रूप विद्यमान है। व्यापक पदार्थ व्याप्य (जिसमें व्यापकता पाई जाये) से सर्वदा ही सूक्ष्म होना चाहिए।

माया का जीव या ब्रह्म से अधिक सूक्ष्म होना सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में कठोपनिषद् का यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है—

महताः परं अव्यक्तः अव्यक्तात् पुरुषः परः।

पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥

अर्थात् महत्तत्त्व से परे अव्यक्त कारण प्रकृति है। उससे भी परे वह पुरुष है, जिसके परे अन्य कोई भी नहीं है।

चेतन व्यापी व्याप में, सो फेर फेर आवे जाए।

जड़ को चेतन ए करे, चेतन को मुरछाए॥१८॥

शरीर में चैतन्य जीव की चैतन्यता व्यापक होती है। यह जीव भिन्न-भिन्न योनियों में एक शरीर से दूसरे शरीर में आता-जाता रहता है। यह माया जड़ को चेतन कर देती है अर्थात् मायावी सुखों के भोग की वासना से जब जीव

एक जड़ शरीर (गर्भ) में प्रवेश करता है, तो वह शरीर चेतन हो जाता है, तथा माया के प्रभाव से उम्र के समाप्त हो जाने पर जब जीव शरीर का परित्याग करने लगता है, तो उसमें संज्ञाहीनता (मूर्च्छा, बेहोशी) आने लगती है।

ऊपर तले मांहें बाहेर, दसो दिसा सब एह।

छोड़ याको कोई न कहे, ठौर खसम का जेह॥१९॥

इस ब्रह्माण्ड में ऊपर, नीचे, अन्दर, बाहर सर्वत्र माया ही माया की लीला है। इस प्रकार कोई भी ज्ञानी इस मायावी जगत से परे परब्रह्म के धाम-स्थान के विषय में कुछ कहता ही नहीं है।

जो कछू कहिए वचने, सो तो सब अनित।

वतन सरूप कोई न कहे, तो क्यों कर जाइए तित॥२०॥

परब्रह्म के विषय में शब्दों से जो कुछ भी व्यक्त किया जाता है, वह इस अनित्य जगत के वर्णन से ही सम्बन्धित होता है। जब कोई परब्रह्म के अखण्ड स्वरूप एवं अखण्ड धाम का वर्णन ही नहीं करता है, तो भला उसकी प्राप्ति (प्रवेश) कैसे सम्भव है?

पेड़ काली किन न देखी, सब छाया में रहे उरझाए।

गम छाया की भी न पड़ी, तो पेड़ पार क्यों लखाए॥२१॥

आज तक किसी ने भी इस जगत के मूल अव्यक्त कारण प्रकृति रूपी वृक्ष को नहीं देखा है। सभी उस वृक्ष की छाया में ही उलझे रहे हैं। यहाँ तक कि बहुतों को छाया की भी पहचान नहीं हो सकी। ऐसी अवस्था में यह कैसे सम्भव है कि उस वृक्ष रूपी माया के परे कोई अखण्ड ब्रह्म की पहचान कर लेता।

भावार्थ- गीता तथा कठोपनिषद् में इस संसार रूपी वृक्ष का वर्णन किया गया है-

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।

छान्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषय प्रवालाः।

अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्य लोके॥

गीता १५/१,२

अर्थात् प्रवाह रूप से कभी भी नष्ट न होने वाला, किन्तु परिवर्तनशील, यह संसार एक अश्वत्थ (पीपल का वृक्ष) है। विज्ञान (सत्य) के नियम इसके पत्ते हैं। जो इसे जानता है, वही वेदवेत्ता कहा जा सकता है। यह ऐसा वृक्ष है, जिसका महामूल तो ऊपर है, किन्तु इसके नीचे भी बहुत सी जड़ें हैं। नीचे-ऊपर चारों ओर सत्व, रज, एवं तम आदि गुणों के विस्तार से इसकी अनन्त शाखायें

फैली हुई हैं, जिनमें रूप, रस, गन्धादि कोपलें हैं, जिनका विकास उन नियमों में परिणत होता है जो इसके छन्द रूपी पत्ते हैं। इसकी बहुत सी जड़ें नीचे मनुष्य लोक में भी फैली हुई हैं, जिनका मूल कारण वे कर्म हैं, जिनके अनुसार नाना प्राणी बीज बोकर स्वयं नवीन जन्म रूपी फल प्राप्त करते हैं।

इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् में "अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वी प्रजाः सृजमाना स्वरूपा" कहकर कारण प्रकृति को सत्त्व (श्वेत), रज (लाल), तथा तम (काली) अवस्था वाली अजन्मा कहा गया है। काला रंग तमोगुण का प्रतीक है, जो अज्ञानता का अन्धकार उत्पन्न करता है। इसी श्वेताश्वतरोपनिषद् में "मायां तू प्रकृतिं विद्धि मायिनं तु महेश्वरम्" कहकर माया को ही स्पष्ट रूप से प्रकृति कहा है। उपरोक्त चौपाई में जिस माया का वर्णन

है, वह सुमंगला शक्ति है जो अव्याकृत के महाकारण (सबलिक के स्थूल) में स्थित है।

किरंतन ७/२ में कहा गया है—

"तू कहा देखे इन खेल में, ए तो पड़यो सब प्रतिबिम्ब।"

स्पष्ट है कि इस नश्वर संसार में जिसे कारण प्रकृति कहकर जगत का मूल कहा जा रहा है, वह सुमंगला शक्ति का सांकल्पिक रूप से प्रतिबिम्बित रूप है, क्योंकि किरंतन ६५/१० का यह कथन ध्यान देने योग्य है—

प्रकृती पैदा करे, ऐसे कई इंड आलम।

ए ठौर माया ब्रह्म सबलिक, त्रिगुन की परआतम॥

यदि यह संशय किया जाये कि सुमंगला शक्ति तो चेतन है, उसका प्रतिबिम्ब कारण प्रकृति के रूप में कैसे हो सकता है? तो इसका समाधान यह है कि प्रतिबिम्ब का तात्पर्य मात्र वह लौकिक प्रतिबिम्ब नहीं जिसे हम स्थूल

वस्तुओं के स्थूल प्रतिबिम्ब के रूप में देखा करते हैं, अपितु किसी व्यक्ति या पदार्थ के चिन्तन के परिणाम स्वरूप जो उसका प्रतिबिम्ब हृदय पटल पर उभरता है, वह भी प्रतिबिम्ब (सांकल्पिक) ही कहा जाता है।

अव्याकृत अक्षर ब्रह्म के मन का स्वरूप है। उसके महाकारण स्वरूप में उसकी शक्ति सुमंगला है। यह वैसे ही है, जैसे सूर्य की शक्ति दाहकता है। उसमें सृष्टि रचना का बीज चित्त स्वरूप सबलिक में स्थित चिदानन्द लहरी से प्रकट होता है। आनन्द शक्ति एवं चित्त शक्ति का आंशिक योग ही चिदानन्द लहरी है। वस्तुतः अहम् (सत्स्वरूप) के द्वारा निर्देशित होने पर आनन्द रस में डूबी बुद्धि (केवल), एवं सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, एवं संहार का संस्कार रखने वाले चित्त (सबलिक) की संयुक्त प्रक्रिया ही मन को सृष्टि कार्य के लिये प्रेरित

करती है, जो सुमंगला के द्वारा सम्पादित होता है। किन्तु यह कार्य भी वह अपने स्थूल रूप प्रणव तथा रोधिनी शक्ति के द्वारा प्रकट करती है।

अव्याकृत चेतन और प्रकाशमयी (नूरमयी) है। उसमें विद्यमान सुमंगला शक्ति जब नूरमयी (शुक्रमयी) स्वरूप को चिन्तन रूपी स्वप्न में देखती है, तो उसके हृदय पटल पर प्रकाशमयी (नूरमयी) स्वरूप का जो रूप अंकित होता है, वह ही मोह सागर के रूप में व्यक्त होता है, जो कालान्तर में कारण प्रकृति के रूप में जाना जाता है। यही मोह सागर रोधिनी शक्ति के द्वारा व्यक्त किया गया माया का छाया रूप है। अथर्व वेद ८/९/५ में इसी तथ्य को "माया ह जज्ञे मायया" कहा गया है अर्थात् अनादि-चेतन माया से नश्वर माया की उत्पत्ति हुई है।

संक्षिप्त रूप में उपरोक्त चौपाई के आशय को इस प्रकार

व्यक्त किया जा सकता है कि उस सुमंगला शक्ति (अनादि चैतन्य माया) को कोई भी नहीं जानता, जिसकी छाया रूपी इस त्रिगुणात्मिका माया (कारण प्रकृति) से इस जगत की रचना होती है। सभी इस कारण प्रकृति को ही मूल कारण मानकर इसमें उलझ जाते हैं। अधिकतर तो इसको भी नहीं जान पाते, अपितु अष्टावरण (पञ्चभूत, तथा मन, बुद्धि, एवं अहंकार) से ही आगे जाने का साहस नहीं कर पाते। ऐसी अवस्था में यह कैसे सम्भव है कि संसार के लोग सुमंगला पुरुष (अव्याकृत) से परे सबलिक, केवल, सत्स्वरूप, एवं उनसे परे अक्षर-अक्षरातीत के विषय में जानने के लिये प्रयासरत होंगे।

ए जाए न उलंघी देखीती, ना कछू होए पेहेचान।

तो दुलहा कैसे पाइए, जाको नेक ना सुन्यो निसान॥२२॥

इस माया के विषय में सामान्य रूप से सभी लोग जानते हैं, किन्तु न तो कोई इसे पार कर पाता है और न इसकी यथार्थ रूप से पहचान कर पाता है। ऐसी स्थिति में जिस प्रियतम अक्षरातीत के विषय में संसार के लोगों ने थोड़ा सा भी सांकेतिक ज्ञान नहीं सुना है, भला वे उन्हें कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

खसम जो न्यारा द्वैत से, और ठौरों सब द्वैत।

किने ना कहया ठौर नेहेचल, तो पाइए कैसी रीत॥२३॥

इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र द्वैत का ही विस्तार है, जबकि परब्रह्म द्वैत मण्डल से परे हैं। जब इस संसार में किसी को भी अखण्ड धाम के विषय में कुछ पता ही नहीं है,

तो वे उसका साक्षात्कार किस प्रकार कर सकते हैं?

ए मत वेद वेदांत की, सास्त्र सबों ए ग्यान।

सो साधू लेकर दौड़हीं, आगे मोह न देवे जान॥२४॥

वेद-वेदान्त एवं शास्त्रों में इस प्रकार का ज्ञान दर्शाया गया है, जिसका अनुसरण करते हुए साधु-सन्त परम तत्व की खोज तो करते हैं, किन्तु मोहतत्व का आवरण उन्हें अखण्ड धाम में जाने नहीं देता।

या विध ग्यान जो चरचही, सो मैं देख्या चित ल्याए।

ज्यों मनुआ सुपने मिने, बेसुध गोते खाए॥२५॥

मैंने इस बात का बहुत अच्छी तरह से अनुभव किया है कि जिस प्रकार स्वप्न में मन बेसुध होकर इधर-उधर भटकता रहता है, उसी प्रकार स्वप्न की बुद्धि वाले

ज्ञानीजन भी इसी प्रकार के संशय भरे ज्ञान की चर्चा किया करते हैं।

खिनमें कहे सब ब्रह्म है, खिन में बंझा पूत।

मद माते मरकट ज्यों, करे सो अनेक रूप॥२६॥

ये नवीन वेदान्ती किसी क्षण तो कहते हैं कि यह सारा जगत ही ब्रह्मरूप है, किन्तु दूसरे ही क्षण यह भी कहते हैं कि जिस प्रकार बन्ध्या स्त्री का पुत्र नहीं होता , उसी प्रकार यह जगत भी वास्तव में है ही नहीं। यह मात्र काल्पनिक रूप में ही भास (प्रतीत हो) रहा है। इन विद्वानों का कथन इसी प्रकार बदलता रहता है, जैसे कोई बन्दर मदिरा के नशे में तरह-तरह की अटपटी क्रीड़ाये करता है।

भावार्थ— वेदों एवं शास्त्रों के गुह्य रहस्यों को मात्र

समाधिस्थ प्रज्ञा के द्वारा ही जाना जा सकता है, किन्तु ध्यान-समाधि से कोसों दूर रहने वाले ये शुष्क हृदय विद्वान कठोपनिषद के कथन "नेषा तर्केण मतिरापनेया" को झुठलाते हुए अपने तर्क जाल से ब्रह्मवाद की घोषणायें करते हैं तथा वाद-विवाद को ही ब्रह्मानन्द का अनुभव मानते हैं। आध्यात्मिक अनुभूतियों से रहित इन वाचक विद्वानों की उपमा (अति कठोर शब्दों में) मदिरा पीने वाले बन्दरों से की गयी है।

खिनमें कहे सत असत, माया कछुए कही न जाए।

यों संग संसा दृढ़ हुआ, सब धोखे रहे फिराए॥२७॥

ये एक क्षण में कहते हैं कि उस ब्रह्म (सत्) से ही इस जगत (असत्) का विस्तार हुआ है, माया तो कुछ है ही नहीं। इस प्रकार इनकी संगति करने से संशय और

अधिक बढ़ जाता है। इनकी बातों के जाल में फँसने वाले सभी लोग धोखे में ही भटकते रहते हैं।

खिन में कहें है आप में, खिन में कहे बाहेर।

खिन में मांहें न बाहेर, याको सब्द न कोई निरधार॥२८॥

ये एक क्षण में कहते हैं कि ब्रह्म हमारे अन्दर विद्यमान है। दूसरे क्षण कहते हैं कि वह हमारे बाहर है। अगले क्षण कह देते हैं कि वह न तो हमारे अन्दर है और न बाहर है। इस प्रकार इनके कथनों में कोई स्थिरता ही नहीं रहती।

खिन में कछू और कहे, खिन में और की और।

सो बात दृढ़ क्यों होवहीं, जाको वचन ना रेहेवे ठौर॥२९॥

एक क्षण में जो बात कहते हैं, अगले ही क्षण में उसका विरोधाभासी कथन भी कर देते हैं। इस प्रकार इन नवीन

वेदान्तियों की संशय भरी बातों पर किसी को कैसे दृढ़ता हो सकती है? इन शुष्क ज्ञानियों की संशय भरी बातों की स्थिरता का कोई आधार ही नहीं होता।

भावार्थ- महर्षि वेदव्यास ने वेद और योग से जो कुछ भी आत्मसात् किया, उसे वेदान्त के सूत्रों में समाहित कर दिया। किन्तु वर्तमान समय के आधुनिक विद्वानों ने अपने शुष्क तर्कों एवं साम्प्रदायिक पक्षपात के कारण वेदान्त दर्शन को विवादों के जाल में उलझा दिया है। यही कारण है कि आज उसी वेदान्त दर्शन के सूत्रों को आधार बनाकर द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, त्रैत आदि अनेक मत बन गए हैं। इनमें ब्रह्म के सम्बन्ध में प्रत्येक की विचारधारा दूसरे के विपरीत जाती है। ऐसी स्थिति में वास्तविक सत्य का निर्णय कैसे किया जा सकता है?

जैसे बालक बावरा, खेले हंसता रोए।

ऐसे साधू सास्त्र में, दृढ़ ना सब्दा कोए॥३०॥

जिस प्रकार एक नादान बालक खेलते समय कभी हँसता है तो कभी रोने लगता है, उसी प्रकार समाधिस्थ बुद्धि के अभाव में शास्त्रों का अनुसरण करने वाले साधु-सन्तों के कथनों में सत्य की पूर्ण दृढ़ता नहीं होती।

ए सब सींग ससिक, बंझा पूत वैराट।

फूल गगन नाम धर के, उड़ाए देवें सब ठाट॥३१॥

वर्तमान समय के नवीन वेदान्ती जो आधुनिक शंकराचार्य के अद्वैतवाद का अनुसरण करते हैं, वे इस संसार को बँध्या के पुत्र, खरगोश के सींग, और आकाश के फूल के समान अस्तित्वहीन घोषित कर देते हैं। इस प्रकार वे ब्रह्म के आदेश से होने वाली सृष्टि की अनन्त

लीला को ही नकार देते हैं।

आप होत फूल गगन, बढ़त जात गुमान।

देखीतां छल छेतर, हाए हाए ऐसी नार सुजान॥३२॥

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो स्वयं को ब्रह्म घोषित करने वाले ये आधुनिक वेदान्ती भी तो आकाश के फूल के समान अस्तित्वहीन हैं, क्योंकि जब ब्रह्म के अतिरिक्त कोई दूसरा है ही नहीं तो इनका अस्तित्व कैसे हो सकता है? शुष्क तर्कों के द्वारा अपनी बात को थोपते-थोपते इनके ज्ञान का अहंकार बढ़ता ही जाता है। हाय-हाय! माया की ऐसी विचित्र लीला है कि सबके देखते-देखते माया के छल में ये ज्ञानीजन छले जाते हैं।

कोई ना परखे छल को, जिन छल में है आप।

तो न्यारा खसम जो छल थें, सो क्यों पाइए साख्यात॥३३॥

इन नवीन वेदान्तियों में ऐसा कोई भी ज्ञानी नहीं है जो इस मायावी जगत की वास्तविकता जान जाये, जिसमें वह स्वयं रह रहा है। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि ये मायावी प्रपञ्च से सर्वथा पृथक् रहने वाले उस सच्चिदानन्द परब्रह्म की साक्षात् प्राप्ति कर सकें।

अटक रहे सब इतहीं, आगे सब्द न पावे सेर।

ए इंड गोलक बीच में, याके मोह तत्व चौफेर॥३४॥

इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर मोह सागर का अनन्त विस्तार है। सभी ज्ञानीजन इस मोहतत्व (निराकार) तक आकर रुक जाते हैं। इसके आगे जाने के मार्ग का ज्ञान उनके पास नहीं होता।

सब्द जो सारे मोह लों, एक लवा न निकस्या पार।

खोज खोज ताही सब्द को, फेर फेर पड़े अंधार॥३५॥

विद्वानों के ब्रह्म सम्बन्धी सभी शब्द निराकार तक ही होते हैं। वे निराकार से परे का एक भी शब्द कह नहीं पाते। उनके अनुयायी उन्हीं के द्वारा कहे हुए शब्दों के आधार पर ही परब्रह्म को खोजने का प्रयास करते हैं और बार-बार माया के अन्धकार में भटकते हैं।

ए ख्वाबी दम सब नींद लों, ए दम नींद के आधार।

जो कदी आगे बल करे, तो गले नींद में निराकार॥३६॥

हृद की इस सृष्टि के सभी जीव निराकार तक ही जा पाते हैं। इन का अस्तित्व ही निराकार (मोह सागर) में प्रकट होने वाले आदिनारायण पर अवलम्बित रहता है। यदि वे अपनी ओर से प्रयास भी करते हैं, तो नींद

स्वरूप निराकार (मोह सागर) में लय हो जाते हैं।

भावार्थ- गीता के कथनानुसार जब चैतन्य जीव को न किसी अस्त्र-शस्त्र से काटा जा सकता है और न अग्नि तत्व से जलाया ही जा सकता है, तो यहाँ प्रश्न होता है कि वह महाप्रलय में किस प्रकार निराकार में लय को प्राप्त होता है?

इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है— श्वेताश्वेतरोपनिषद् के कथनानुसार "बालाग्र शत भागस्य शतधा कल्पितस्य च", अर्थात् जीव बाल की नोक के दस हजारवें भाग से भी अधिक सूक्ष्म होता है। ऐसी स्थिति में उसे किसी भी अस्त्र-शस्त्र से काटने का प्रश्न ही नहीं होता। अग्नि तत्व पाँच तत्वों के अन्तर्गत आता है। पञ्च सूक्ष्मभूत इनसे भी अधिक सूक्ष्म होते हैं। अहंकार, महत्तत्त्व, तथा मोहतत्त्व क्रमशः अधिक सूक्ष्म

होते हैं। जब जीव की इन्द्रियों की उत्पत्ति तन्मात्राओं (सूक्ष्मभूतों) तथा अन्तःकरण की उत्पत्ति महत्तत्त्व से होती है, तो अन्तःकरण से भी अधिक सूक्ष्म जीव को जलाने का सामर्थ्य जड़ एवं स्थूल अग्नि तत्त्व में कहाँ से आ सकता है?

उपरोक्त चौपाई में जीव का नींद में गलना कहा गया है, लय होना या अस्तित्वविहीन होना नहीं। सूर्य या अग्नि की उष्णता के समक्ष घी, बर्फ, और मोम गल (पिघल) जाते हैं और द्रव रूप में परिणित हो जाते हैं, किन्तु उनका अस्तित्व समाप्त नहीं होता। इस प्रकार गल जाने का आशय यही लिया जा सकता है कि घी, बर्फ, या मोम में उष्णता के समक्ष अपने स्थूल स्वरूप को स्थिर रखने में असमर्थता का अनुभव हुआ और द्रव रूप में परिणित होना पड़ा। ठीक इसी प्रकार, निराकार (नींद)

में जीव के गलने का तात्पर्य यह है कि पूर्णतः संज्ञा शून्य (आत्म-बोध से रहित) होकर स्वयं को इस प्रकार भुला देना कि जैसे उसका कोई अस्तित्व ही न हो।

जीव का प्राकट्य आदिनारायण के सांकल्पिक प्रतिबिम्ब से होता है। इसलिये उसका अस्तित्व तब तक बना रहेगा, जब तक आदिनारायण का अस्तित्व है। इसलिये आदिनारायण के द्वारा अपने मूल स्वरूप का बोध होने से पहले, कभी भी अस्तित्वविहीनता का सामना नहीं करना पड़ा था। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि जब तक आदिनारायण का अस्तित्व है, तब तक जीव को समाप्त करने की शक्ति जड़ निराकार में नहीं है, क्योंकि जीव और आदिनारायण दोनों ही समान धर्मी (चैतन्य) हैं। जीव महाप्रलय से पूर्व गल तो सकता है (संज्ञा शून्य हो सकता है), किन्तु समाप्त नहीं हो

सकता।

तबक चौदे ख्वाब के, याको पेड़ै नींद निदान।

नींद के पार जो खसम, सो ए क्यों करे पेहेचान॥३७॥

चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड स्वाप्लिक है, जिसका मूल निराकार मण्डल है। ऐसी स्थिति में निराकार से परे परब्रह्म का जो स्वरूप है, उसकी पहचान भला संसार के प्राणी कैसे कर सकते हैं?

बड़ी बुध वाले जो कहावहीं, सो सीतल भए इन भांत।

ना पेहेचान छल वतन की, सो सुन्य गले ले स्वांत॥३८॥

इस प्रकार महान बुद्धि के स्वामी कहे जाने वाले बड़े-बड़े ज्ञानीजन भी हार गये (ठण्डे हो गये)। उन्हें इस मायावी प्रपञ्च की पहचान नहीं हो पायी। इसका परिणाम

यह हुआ कि उन्हें विवश होकर महाशून्य में संज्ञाशून्य होना (गलना) पड़ा।

ए पुकार साधू सुनके, हट रहे पीछे पाए।

पार सुध किन ना परी, सब इतहीं रहे उरझाए॥३९॥

इन महान तत्वज्ञानियों के द्वारा निराकार को पार न कर पाने की असफलता की बात सुनकर अन्य साधु-महात्माओं ने भी निराकार को पार करने का विचार छोड़ दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस संसार में पञ्चवासनाओं के अतिरिक्त अन्य किसी को भी अखण्ड की सुधि नहीं हो पायी। सभी हद में ही भटकते रह गये।

जिनहूं जैसा खोजिया, सो बोले बुध माफक।

मैं देखे सब्द सबन के, जो गए जाहेर मुख बक॥४०॥

परब्रह्म के विषय में जिसने जितनी खोज की , उसने अपनी बुद्धि के द्वारा उसे उसी रूप में व्यक्त किया। मैंने सभी पन्थों के धर्मग्रन्थों को देखा। इनमें विद्वानों का परब्रह्म के विषय में निरर्थक शब्दजाल ही दिखायी देता है।

भावार्थ— शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य आदि पौराणिक पन्थों के ग्रन्थों को यदि देखा जाये, तो हजारों श्लोकों से युक्त उनकी विशालता तो दिखायी देती है, किन्तु कुछ विशेष सार तत्व प्राप्त नहीं होता। परब्रह्म के धाम , स्वरूप, एवं लीला के सम्बन्ध में जहाँ उनमें मौनावस्था दिखायी देती है, वहीं नवग्रह पूजा, जड़ पूजा, काल्पनिक देवी-देवताओं की कथाएँ, पशु बलि आदि प्रपञ्च , एवं दूसरे मतवादियों की निन्दा की प्रवृत्ति अधिक दिखायी देती है।

या बिध तो हुई नास्त, सो नास्त जानो जिन।

सार सब्द मैं देख के, लिए सो दृढ़ कर मन॥४१॥

उपरोक्त कथन से तो यही सिद्ध होता है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म को पाया ही नहीं जा सकता, किन्तु ऐसा नहीं मानना चाहिए। मैंने इन संसार के धर्मग्रन्थों के सार तत्त्व से दृढ़तापूर्वक अपने मन में यही निर्णय किया कि परब्रह्म को अवश्य पाया जा सकता है।

भावार्थ- केनोपनिषद् का कथन है कि "न विद्मो न विजानीमः" अर्थात् परब्रह्म को न तो हम यथार्थ रूप से जानते हैं और न कभी जान सकेंगे। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो इस प्रकार का कथन ज्ञान एवं साधना की निरन्तरता को बनाये रखने एवं अहंकार से निवृत्ति के लिये किया गया है। उसी केनोपनिषद् में "विद्यया विन्दते अमृतम्" तथा अथर्ववेद के केन सूक्त

१०/२/३० में ब्रह्मपुरी का वर्णन है और "पुर यो वेद ब्रह्मणो यस्याः पुरुषः उच्यते" कहकर और स्पष्ट रूप से प्राप्ति का निर्देश दिया गया है। ऋग्वेद में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि "यस्तत् न वेद किम ऋचा करिष्यति", अर्थात् यदि उस परमात्मा का तुम्हें साक्षात्कार नहीं हुआ, तो मात्र ऋचाओं को पढ़ने से कोई लाभ नहीं है। यजुर्वेद ने एक पग और आगे बढ़ाकर यह बात कही है कि उसको जाने बिना मृत्यु के बन्धन से छूटने का कोई मार्ग ही नहीं है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽय नाय।

यजुर्वेद ३१/१८

पुनः कहा है—

तत् पश्चत् निहितं गुहासत्।

यजुर्वेद ३२/८

अर्थात् परम गुहा में उस ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

जिन जानो पाया नहीं, है पावनहार प्रवान।

सो ए छिपे इन छल थें, वाकी मिले न कासों तान॥४२॥

ऐसा भी नहीं समझना चाहिए कि आज तक उसे किसी ने पाया नहीं है। निश्चित रूप से उसका साक्षात्कार करने वाले भी हैं, किन्तु वे संसार के प्रपञ्चों से छिपे ही रहते हैं क्योंकि उनकी राह किसी से मिलती नहीं है।

भावार्थ- इन प्रकरण की चौपाई ४० तक श्री श्यामा जी (श्री देवचन्द्र जी) ने श्री राज जी से प्रत्युत्तर में कहा है। इसके आगे (४१वीं चौपाई) से वे सुन्दरसाथ एवं संसार को सम्बोधित करती हुई कह रही हैं। अक्षरातीत का साक्षात्कार करने वाली मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही होती हैं। यह तथ्य चौपाई ४२-४५ में दर्शाया गया है।

उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण में कथित "तान" का तात्पर्य गुण, कर्म, स्वभाव, एवं परब्रह्म को पाने के मार्ग

से सम्बन्धित है।

सो तो प्रेमी छिप रहे, वाको होए गयो सब तुच्छ।

ओ खेले पिया के प्रेम में, और भूल गए सब कुछ॥४३॥

परब्रह्म के सच्चे प्रेमी (ब्रह्ममुनि) तो सांसारिक आडम्बरों से अलग रहते हैं। उन्हें ब्रह्माण्ड का सारा सुख तुच्छ लगता है। अपने प्राणेश्वर के प्रेम में वे इतने डूबे रहते हैं कि संसार को वे पूर्णतया भूले ही रहते हैं।

सुरत न वाकी छल में, वाही तरफ उजास।

प्रेम में मगन भए, और होए गयो सब नास॥४४॥

उनकी सुरता इस मायावी जगत में नहीं, अपितु अपने अखण्ड धाम में लगी रहती है। वे मात्र अपने आराध्य के प्रेम में सर्वदा मग्न रहते हैं और उनके लिये संसार का

अस्तित्व एक प्रकार से मिट ही गया होता है।

प्रेमी तो नेहेचे छिपे, उन मुख बोल्यो न जाए।

सब्द कदी जो निकसे, सो ग्यानी क्यों समझाए॥४५॥

अक्षरातीत परब्रह्म के सच्चे प्रेमी तो निश्चित रूप से छिपे ही रहते हैं। उनके मुख से कभी वाद-विवाद की बातें नहीं निकलती। कदाचित उनके मुख से आध्यात्मिक ज्ञान की अमृतधारा निकल भी जाती है, तो इस संसार के ज्ञानीजन उसके वास्तविक आशय को समझने में असमर्थ रहते हैं।

सब्द जो सीधे प्रेम के, सास्त्र तो स्यानप छल।

या विध कोई ना समझहीं, बात पड़ी है वल॥४६॥

प्रेम के शब्द सीधे और सरल होते हैं, किन्तु शास्त्रों में

विद्वानों का छल भरा बौद्धिक चातुर्य छिपा रहता है। यह गहन रहस्य की बात है कि प्रेमी की बात ज्ञानी के हृदय में नहीं उतर पाती और ज्ञानी की बात प्रेमी के हृदय को नहीं छू पाती, इस प्रकार दोनों ही एक-दूसरे की बातों को समझ नहीं पाते हैं।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई के दूसरे चरण में शास्त्र का आशय छः दर्शनों से नहीं, अपितु भिन्न-भिन्न मतों के ग्रन्थों से है। छः दर्शनों की रचना तो ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त करने वाले छः ऋषियों ने की है। महाभारत के पश्चात् आधुनिक विद्वानों के द्वारा पक्षपातपूर्ण बुद्धि के द्वारा जो ग्रन्थ बनाये गये हैं, उनमें बौद्धिक चतुराई का छल भरा है, जिसमें उलझकर कोई भी सत्य मार्ग से भटक सकता है। जैसे- योग वाशिष्ठ, पञ्चदशी, तर्क संग्रह, सिद्धान्त कौमुदी, सायण, महीधर-उब्बट आदि

के वेद भाष्यः, तथा समस्त पौराणिक ग्रन्थ आदि मिथ्या सिद्धान्तों से भरे हैं। ऐसे ग्रन्थों को ही अनार्ष की संज्ञा दी जाती है।

साधू सास्त्र जो बोलहीं, सो तो सुनता है संसार।

पर मूल माएने गुझ हैं, सोई गुझ सब्द हैं पार॥४७॥

समस्त संसार साधु-सन्तों या शास्त्रों के वचनों का अनुसरण करता है। वस्तुतः आध्यात्मिक जीवन का मूल उद्देश्य अत्यधिक रहस्यमयी है। यह अलौकिक गुह्य ज्ञान माया से परे अखण्ड धाम का है।

सब कोई देखे सास्त्र को, सास्त्र तो गोरख धंध।

मूल कड़ी पाए बिना, तोलो देखीता ही अंध॥४८॥

अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिये प्रत्येक व्यक्ति

शास्त्रों का अध्ययन करता है। शास्त्रों में सच्चे अर्थ एवं सिद्धान्त को लेकर तरह-तरह की उलझनें बनी रहती हैं। जब तक तारतम ज्ञान के प्रकाश में मूल आशय का पता नहीं चलता, तब तक इन ग्रन्थों का चिन्तन-मनन करने पर भी व्यक्ति अन्धा ही बना रहता है अर्थात् वास्तविक सत्य से बहुत दूर रहता है।

ऐसा तो कोई न मिल्या, जो दोनों पार प्रकास।

मगन पिया के प्रेम में, उधर भी उजास॥४९॥

मुझे आज दिन तक इस संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिला, जो हृद का भी ज्ञान रखता हो तथा बेहद एवं परमधाम को भी जानता हो, प्रियतम के प्रेम में भी मग्न हो तथा परमधाम का साक्षात्कार भी करने वाला हो।

जो कोई ऐसा मिले, सो देवे सब सुध।

सब्दे सब समझावहीं, कहे वतन की विध॥५०॥

यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाये जिसमें उपरोक्त गुण हों, तो वह ही सारी सुधि दे सकता है। वही सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों को भी समझा सकता है तथा परमधाम का ज्ञान भी दे सकता है।

कड़ी बतावे मूल की, सास्त्र निकाले वल।

ठौर खसम सब केहेवहीं, जो है सदा नेहेचल॥५१॥

ऐसा व्यक्ति ही इस खेल के बनने तथा इसमें अपने मूल परमधाम से ब्रह्मात्माओं के आने के गुह्य रहस्य को उजागर कर सकता है। वही शास्त्रों की उलझनों को दूर करके वास्तविक सत्य को उजागर कर सकता है और उस अखण्ड परमधाम की भी पहचान दे सकता है जहाँ

प्रियतम का निवास है।

आप ओलखावे आप में, आप पुरावे साख।

आतम को परआतमा, नजरों आवे साख्यात॥५२॥

ऐसा व्यक्ति परब्रह्म का ही स्वरूप होता है। वह अपने स्वरूप में परब्रह्म की पहचान कराता है तथा अपनी अलौकिक लीला और धर्मग्रन्थों के कथनों से अपनी पहचान की साक्षी देता है। ऐसे अलौकिक स्वरूप की सान्निध्यता में आत्मा को परब्रह्म (परमात्मा) के साक्षात् दर्शन प्राप्त होते हैं।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई के प्रथम चरण का तात्पर्य वैसा ही है, जैसे "तुम स्वरूप तुममें स्वरूप, तुम स्वरूप के संग।" सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी तथा श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान सुन्दरसाथ ने उनकी

अलौकिक लीलाओं तथा धर्मग्रन्थों की साक्षियों से की। परआत्मा या परमात्मा एकार्थवाची हैं। परआत्मा को परात्म नहीं कहा जा सकता। पर और परम शब्दों का भाव एक ही है।

और सब्द भी हैं सही, पिया करसी परदा दूर।

सब मिल कदमों आवसी, तब हम पिया हजूर॥५३॥

इस सम्बन्ध में सभी ग्रन्थों का कथन पूर्णतया सत्य है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म इस संसार में आकर सबकी अज्ञानता का अन्धकार दूर करेंगे। जब संसार के सभी लोग उस समय परब्रह्म के चरणों में विश्वास कर लेंगे, तब हम ब्रह्मात्मार्ये भी धाम धनी के सम्मुख अपने मूल तनों में जाग्रत हो जायेंगी।

आगम की बानी कहे, पिया आवेंगे तेहेकीक।

तिन आसा मेरी बंधी, पूरन आई परतीत॥५४॥

भविष्य का कथन करने वाले धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि धाम धनी इस संसार में अवश्य आयेंगे। मुझे इस कथन पर पूर्ण विश्वास है। मुझे पूर्ण आशा भी है कि अब धाम धनी से मेरा मिलन अवश्य होगा।

मन चित बुध दृढ़ किया, पिया न करें निरास।

महामत नेहेचें कहें, होसी दुलहे सों विलास॥५५॥

श्री महामति जी के स्वरों में श्यामा जी की आत्मा कहती हैं कि मेरे मन, चित्त, एवं बुद्धि में इस बात की पूर्ण दृढ़ता है कि मेरे प्राणवल्लभ मुझे निराश नहीं करेंगे और मुझे अवश्य मिलेंगे। यह बात मैं पूर्ण दृढ़ता के साथ कह रही हूँ कि प्रियतम के प्रेम भरे आनन्द का रसपान मैं

अवश्य करूँगी।

प्रकरण ॥२॥ चौपाई ॥९२॥

विरह तामस का प्रकरण – राग सिंधूड़ो कड़खा

मैं चाहत न स्वांत इन भांत।

अपने प्राणवल्लभ की सान्निध्यता को प्राप्त करने के लिये जलविहीन मछली की भांति इस प्रकार तड़पना कि मेरे प्राणेश्वर अभी आ गये, विरह कहलाता है। विरह की नौ अवस्थायें होती हैं – स्वयं के प्रति अवहेलना, विषाद, दीनता, दुःख, स्मृति, चिन्ता, उन्माद, मोह, तथा प्रियतम को देखने की तीव्र उत्सुकता।

सात्विक विरह प्रथम अवस्था है। इस अवस्था में आँसू भी बहते हैं तथा हृदय विरह की पीड़ा से चीत्कार कर रहा होता है, किन्तु धैर्य होता है। इसके विपरीत तामस विरह में न तो आँसू बहते हैं, और न रोना आता है। केवल मन में एक ही बात बस जाती है। यदि इस क्षण

प्रियतम मेरे सम्मुख नहीं आये, तो मैं अपना तन छोड़ दूँगी। इन दोनों की मध्यम अवस्था को राजस विरह कहते हैं।

हृष्ये में श्री मिहिरराज जी (श्री इन्द्रावती जी के जीव) का हृदय विरह की इन तीनों अवस्थाओं से होकर गुजरता है। विरह में तड़पते-तड़पते छः मास व्यतीत हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप तामस का विरह अपने प्रचण्ड रूप में प्रकट होता है। स्थिति ऐसी हो जाती है कि—

जब आह भी सूकी अंग में, स्वांस भी छोड़यो संग।

तब तुम परदा टाल के, दियो मोहे अपनो अंग॥

कलस हिन्दुस्तानी ८/८

वस्तुतः यही तामस का विरह है। इसे लालदास जी एवं गोवर्धन दास जी के विवाद के कारण श्री प्राणनाथ जी की फटकार के घटनाक्रम के रूप में नहीं लेना चाहिए।

उस अवस्था में श्री इन्द्रावती जी के जीव ने कोई विरह नहीं किया, अपितु गोवर्धन जी को सूरत तथा मुकुन्द दास जी को उदयपुर भेजकर श्रीजी खिन्न मन से अनूपशहर चल पड़े थे। फटकार की घटना के इतने अल्प समय में तामस के विरह में डूबना सम्भव नहीं लगता।

मोंह आगे बिजलीय के, चमकत लेहेरां दई।

तब श्री राज के मुख से, ए बातां पुकार कही॥

कारखाना कागद का, ए सौँप्या लालदास।

उदयपुर को जावहीं, भीम मुकुन्द मोमिन खास॥

बुध दई भीम को, गोवरधन को सूरत।

मुकुन्द भीम उदय पुर, हम जात अनूपसहर इत॥

बी. सा. ३९/१६, १७, २०

जबकि कलस हिन्दुस्तानी ५/२, ३, ११ का कथन है—

सब तन विरहे खाइया, गल गया लोहू मांस।
 न आवे अंदर बाहेर, या विध सूकत स्वांस॥
 हाड़ हुए सब लकड़ी, सिर श्री फल विरह अगिन।
 मांस मीज लोहू रगां, या विध होत हवन॥
 आठों जाम विरहनी, स्वांस लिये हूक हूक।
 पत्थर काले ढिग हुते, सो भी हुए टूक टूक॥
 उपरोक्त चौपाइयाँ यही दर्शाती हैं कि तामस के विरह में
 डूबने का प्रसंग हब्शे का ही है।

अजूं आउध अंग चले,

इन नैनों दोनों नेक न आवे नीर।

दरद देहा जरद गरद रद करे,

मैं क्यों धरुं धीर अस्थिर सरीर॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है – मेरे प्राणेश्वर! आपके विरह में तड़पते-तड़पते लगभग छः मास बीत गये। समय गुजरता रहे और आपके मधुर दर्शन रूपी निर्णय के बिना मैं शान्तिपूर्वक बैठी रहूँ, यह मुझे किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं है। मैं अब इस प्रकार शान्त होकर नहीं बैठे रहना चाहती। आपको पाने के लिये मेरे हृदय रूपी शस्त्रागार में श्रद्धा, समर्पण, एवं विरह के सभी आयुध पूर्ण रूप से सक्रिय हैं।

आपके विरह की अग्नि ने मेरे इन नेत्रों से बहने वाले आँसुओं की धारा को इस प्रकार सुखा दिया है कि अब तो एक बूँद भी आँसू नहीं टपकता। विरह की पीड़ा ने मेरे शरीर को धूल के समान इतना निर्बल कर दिया है कि वह पीला पड़ गया है। यह शरीर तो नश्वर है ही। अब मुझसे और अधिक धैर्य नहीं रखा जा सकता। अब केवल

एक ही मार्ग है कि आपको अभी, इसी क्षण, मेरे सम्मुख आना ही होगा।

कठिन निपट विकट घाटी प्रेम की,
 त्रबंक बंको सूरों किनों न अगमाए।
 धार तरवार पर सचर सिनगार कर,
 सामी अंग सांगा रोम रोम भराए॥२॥

प्रेम की प्राप्ति का मार्ग बहुत ही कठिन और भयावह मार्गों से होकर गुजरता है। इस मार्ग पर ज्ञान, कर्म, एवं उपासना के बड़े-बड़े वीर भी पूरी तरह से नहीं चल पाते हैं। मेरी आत्मा! अब तू तलवार की तीखी धार के समान कष्टकारी इस मार्ग पर चलने के लिये पूर्ण समर्पण का श्रृंगार कर ले। तेरे शरीर के रोम-रोम में विरह के भालों की चुभन पीड़ा दे रही है।

भावार्थ- पर्वतों के नीचे की समतल भूमि घाटी कहलाती है। इस पर मनोरम बस्ती बसी होती है, किन्तु वहाँ तक पहुँचने का मार्ग दुर्गम होता है। इसी प्रकार त्रिगुणातीत प्रेम को पाने के लिये रज और तम के कष्टदायी मार्गों से होकर ही जाना पड़ता है।

प्रेम मार्ग को तलवार की धार के समान तीखा कहा है क्योंकि जिस प्रकार तलवार की धार पर पैर रखते ही वह कट जाता है, उसी प्रकार प्रेम मार्ग में पल-पल भयानक कष्टों का सामना करना पड़ता है। किन्तु यदि हमने सर्वस्व समर्पण का मार्ग अपना लिया, तो हमें कष्टों से भय नहीं लगेगा। भय की उत्पत्ति तो अहंकार से होती है। प्रियतम के प्रेम में जब सारा अहंकार समाप्त हो जाता है, तो संसार का अस्तित्व भी नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति में सुख और दुःख से परे आनन्दमयी अवस्था

प्राप्त हो जाती है।

सागर नीर खारे लेहेरां मार मारे फिरें,

बेटो बीच बेसुध पछाड़ खावे।

खेलें मछ मिले गलें ले उछाले,

संधो संध बंधे अंधों यों जो भावे॥३॥

इस भवसागर का जल अत्यन्त खारा है अर्थात् तत्वहीन है। इसका किसी भी प्रयोजन (प्रेम, शान्ति, एवं आनन्द) में उपयोग नहीं हो सकता। जीव इस संसार सागर की मोह रूपी भयानक लहरों की चोट से इतना आहत हो जाता है कि वह टापुओं के बीच भिन्न-भिन्न योनियों के शरीरों में मूर्छित होकर गिर जाता है। इस मायावी सागर में काम, क्रोध, लोभ, मद, एवं अहंकार रूपी बड़े-बड़े मगरमच्छ क्रीड़ा करते हैं, जो जीव के

शरीर का माँस खाने के लिये उसका गला पकड़कर उछालते रहते हैं (विकार उसे घेरे रहते हैं)। उसके शरीर के अंगों की प्रत्येक सन्धि (जीव की प्रत्येक अवस्था) कर्म-फल की रस्सियों से बँधी होती है। ज्ञान चक्षु न होने से वह अन्धा हो गया होता है। ऐसी अवस्था में तो एकमात्र प्रियतम की अनन्य कृपा का ही सहारा होता है कि अब उनकी जो इच्छा हो वह करें।

दाहो दसे दिसों दिस सबे धखे,

लाल झालां चले इंड न झलाए।

फोड़ आकास फिरे सिर सिखरों,

ए फलंग उलंघ संग खसम मिलाए॥४॥

मेरी आत्मा ! दसों दिशाओं में तृष्णा की भयंकर ज्वालायें धधक रही हैं जिसमें सभी प्राणी जल रहे हैं।

ब्रह्माण्ड में उसकी लाल लपटें इतनी अधिक उठ रही हैं कि वे पकड़ में नहीं आ रहीं। स्वर्ग-वैकुण्ठ आदि लोकों से होते हुए तू निराकार मण्डल को पार कर और इस क्षर ब्रह्माण्ड से शीघ्रतापूर्वक (छलांग लगाकर) परे हो जा। ऐसा करके ही तू अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत से मिलन कर सकेगी।

घाट अवघाट सिलपाट अति सलवली,

तहां हाथ ना टिके पपील पाए।

वाओ वाए बड़े आग फैलाए चढ़े,

जले पर अनलें ना चले उड़ाए॥५॥

इस भवसागर के किनारे ज्ञान के बड़े-बड़े पत्थरों से घाट बने हुए हैं, जिन पर संशय की काई के उग जाने से इतनी अधिक चिकनाहट हो गई है कि उस पर चींटी के

पैर (हाथ) भी नहीं टिक पा रहे हैं। ऐसी अवस्था में उस पर चल पाना तो बहुत ही कठिन है। आलस्य और प्रमाद रूपी हवा के झोंकों से अग्नि की लपटें (अशान्ति) और अधिक तेज होती जा रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप आत्मा रूपी पक्षी के दोनों पंख – अटूट विश्वास तथा प्रेम (ईमान एवं इश्क) – जल जाते हैं। फलतः परमधाम की ओर उड़ान भरना असम्भव सा हो जाता है।

पेहेन पाखर गज घंट बजाए चल,

पैठ सकोड़ सुई नाके समाए।

डार आकार संभार जिन ओसरे,

दौड़ चढ़ पहाड़ सिर झांप खाए॥६॥

जिस प्रकार युद्ध-क्षेत्र में हाथी पर सवार योद्धा उस पर लोहे के तारों से बने हुए जाल का आवरण डाल देता है

तथा उसके दोनों ओर बड़े घण्टे लगा देता है, उसी प्रकार मेरी आत्मा! तू भी माया के साथ होने वाले इस युद्ध में अपने ऊपर धैर्य का लौह -वस्त्र डाल तथा सहनशीलता के घण्टे धारण कर ले। जैसे सुई में धागा डालते समय अपने मन को एकाग्र कर लिया जाता है, उसी प्रकार तू भी सारे संसार से अपनी चित्त-वृत्तियों को हटाकर एकमात्र युगल स्वरूप में केन्द्रित कर दे। अब तू इस बात को अच्छी तरह से याद रख कि अपने प्राणवल्लभ को पाने के लिये अपने शरीर को न्यौछावर करने में जरा भी पीछे नहीं हटना है। जिस प्रकार अपने आराध्य को पाने की कामना से दौड़ते हुये पहाड़ पर चढ़कर छलाँग लगायी जाती है, उसी प्रकार तू भी आत्म-समर्पण रूपी पहाड़ पर चढ़कर प्रेम की छलाँग लगा जा।

बोहोत बंध फंद धंध अजू कई बीच में,
सो देखे अलेखे मुख भाख न आवे।
निराकार सुन्य पार के पार पिउ वतन,
इत हुकम हाकिम बिना कौन आवे॥७॥

मैंने इस बात का बहुत गहराई से अनुभव किया है कि मेरे द्वारा प्रियतम के मधुर दर्शन रूपी इस महान कार्य में माया के इतने बड़े-बड़े बन्धन और उलझने हैं कि उनका वर्णन इस मुख से नहीं हो सकता। निराकार और बेहद के परे प्रियतम का वह लीलाधाम है, जहाँ उनकी इच्छा (आदेश) के बिना भला किसी की अन्तर्दृष्टि पहुँच ही कैसे सकती है? कदापि नहीं।

मन तन वचन लगे तिन उतपन,

आस पिया पास बांध्यो विस्वास।

कहे महामती इन भांत तो रंग रती,

दर्ई पिया अग्या जाग करुं विलास॥८॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि अब मैं अपने तन, मन, एवं वाणी से अपने प्राणवल्लभ को पाने के लिए तत्पर हो गयी हूँ। मुझे इस बात की पूर्ण आशा है और विश्वास भी है कि अपने प्राणेश से मेरा मिलन अवश्य होगा। इस प्रकार एकनिष्ठ प्रेम की स्वर्णिम राह पर चलकर प्रियतम के प्रेम और आनन्द का रस मुझे मिलना ही है। मुझे तो अब प्रियतम का आदेश भी प्राप्त हो चुका है कि मैं जाग्रत होकर उनके आनन्द सागर में विहार करूँ।

प्रकरण ॥३॥ चौपाई ॥१००॥

राग श्री सामेरी

इस प्रकरण में पूर्व प्रकरण के ही भावों का विस्तार है।

पिया मोहे स्वांत न आवहीं, ना कछू नैनों नीर।

पिया बिना पल जो जात है, अहनिस धखे सरीर॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है – मेरे प्राणेश्वर! आपका दर्शन पाये बिना मुझे कदापि शान्ति नहीं मिल सकती। अब तो आपके विरह में तड़पते-तड़पते मेरी आँखों के आँसू भी सूख चुके हैं। मेरे आराध्य! मेरे सर्वस्व! आपके बिना दिन या रात्रि का कोई भी पल जो बीत रहा है, उसमें मेरा शरीर विरह की अग्नि में जला जा रहा है।

सब अंग अगनी जलके, जात उड़े ज्यों गरद।

क्यों इत स्वांत जो आवहीं, जित दुलहे का दरद॥२॥

आपके विरह की अग्नि ने मेरे शरीर के एक-एक अंग को इतना निर्बल और असहाय बना दिया है कि जैसे हवा में उड़ती हुई धूल। मेरे जीवन के आधार! मेरे हृदय में आप को पाने की इतनी टीस (पीड़ा) है कि आपको पाये बिना मेरे अन्दर किसी भी प्रकार से शान्ति आ ही नहीं सकती।

हाड़े हाड़ पिसात हैं, चकी बीच जिन भांत।

आराम ना जीवरा होवहीं, तो क्यों कर उपजे स्वांत॥३॥

जिस प्रकार चक्की में अन्न पीसा जाता है, उसी प्रकार विरह की चक्की ने मेरी अस्थियों को पीस कर चूरा बना दिया है अर्थात् अत्यधिक निर्बल बना दिया है। जब मेरे

जीव को प्रियतम की सान्निध्यता का आनन्द ही नहीं मिल रहा है, तो भला मेरे हृदय में शान्ति कहाँ से आ सकती है?

सब अंग सारन होए के, सारे सकल संधान।

अपनी इंद्री आप को, उलट लगी है खान॥४॥

विरह की अग्नि ने मेरे एक-एक अंग में ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि वे भाले छेदने के समान मेरे सभी सन्धि स्थानों (जोड़ों) में पीड़ा दे रहे हैं। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे मेरी सभी इन्द्रियाँ स्वयं को ही नष्ट करने (खाने) पर तुली हुई हैं।

भावार्थ— कलाई-कोहनी, कन्धा, घुटना, कमर, एड़ी आदि शरीर के सन्धि स्थान हैं। इन स्थानों पर शरीर के अन्य दो अंग जुड़े होते हैं। विरह की पीड़ा से ऐसा प्रतीत

हो रहा है कि इनके जोड़ अभी टूट जायेंगे और सभी अंग अलग-अलग हो जायेंगे। इसे ही भाला चुभने की पीड़ा के रूप में दर्शाया गया है।

उड़ी जो नींद अंदर की, पड़त न क्यों ही चैन।

प्यारी पिउ के दरस की, कब देखूं मुख नैन॥५॥

तारतम ज्ञान के प्रकाश ने मेरी अज्ञानता की नींद को समाप्त कर दिया है, जिससे मुझे अपने प्रियतम के स्वरूप की पहचान हो गयी है। अब मुझे उनके वियोग में किसी भी प्रकार से चैन (आराम) नहीं मिल रहा है। मेरी एकमात्र यही चाहत है कि मैं कब अपने नैनों से उनके सुन्दर मुखकमल का दर्शन करूँ।

पिया बिन कछुए न भावहीं, जानूं कब सुनों पिया बैन।

जोलों पिउ मुझे न मिले, तोलों तलफत हों दिन रैन॥६॥

अपने प्राणवल्लभ से अलग रहकर मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। न जाने वह घड़ी कब आयेगी, जब मैं अपने जीवन के आधार प्राणप्रियतम की अमृत से भी मीठी वाणी को सुनूँगी? जब तक वे मुझे नहीं मिलेंगे, तब तक मुझे दिन-रात तड़पना ही पड़ेगा।

घाटी टेढ़ी सकड़ी, तीखी खांडा धार।

रोम रोम सांगा सामिया, तामें चढ़ूं कर सिनगार॥७॥

प्रेम के महल (घाटी) में पहुँचने का मार्ग बहुत ही टेढ़ी एवं तंग पगडण्डी से होकर जाता है। इस पर चलना तलवार की तीखी धार पर चलने के समान कष्टकारी है। मेरे रोम-रोम में विरह के भाले छेद कर रहे हैं। ऐसी

अवस्था में मुझे सर्वस्व समर्पण का श्रृंगार करके ही चलना है।

भावार्थ- कर्मकाण्ड का मार्ग बहिर्मुखी होता है। इसमें शरीर की बहिर्मुखी इन्द्रियाँ ही भाग लेती हैं, इसलिये यह सीधा और चौड़ा है। इसके विपरीत प्रेम का मार्ग आत्मा की गहराइयों में होता है। इसके लिये सारे संसार से अपनी दृष्टि हटाकर एकमात्र प्रियतम में ही केन्द्रित करनी होती है, जो बहुत ही कठिन कार्य है। यही कारण है कि प्रेम के मार्ग को संकरा और टेढ़ा कहा गया है अर्थात् अन्तर्मुखी होकर मात्र एक (परब्रह्म) को चाहना।

नीर खारे भवसागर, और लेहेरां मारे मार।

बेटो बीच पछाड़हीं, वार न काहूं पार॥८॥

इस भवसागर का जल बहुत ही खारा है, अर्थात्

आत्मिक आनन्द के लिये इसमें कुछ भी नहीं है। इसकी मोह रूपी लहरों की चोट से जीव भिन्न-भिन्न योनियों के शरीर रूपी टापुओं में भटकता रहता है। इस भवसागर का कहीं भी ओर-छोर नहीं है। यह अनन्त विस्तार वाला है।

तान तीखे आड़े उलटे, और लेत भमरियां जल।

मिने मछ लडाइयां, यामें लेवें सारे निगल॥९॥

इस भवसागर की लहरों की गर्जना बहुत ही तीखी है। उल्टी दिशा से लहरों के सीधे प्रहार से जीव जन्म-मरण रूप भँवर में इस प्रकार फँस जाता है कि उससे निकल पाना कठिन हो जाता है। इसकी अथाह जलराशि में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि बड़े-बड़े मगरमच्छ होते हैं, जो जीव से लड़कर उसे निगल जाते हैं।

ए दुनी दिल अंधी दिवानी, और बंधी संधों संध।

हाथों हाथ न सूझहीं, तिमर तो या सनंध॥१०॥

सांसारिक प्राणियों के हृदय में माया का अन्धकार फैला होता है, और वह मायावी सुखों के लिये पागल रहते हैं। माया के जीव चारों ओर (शारीरिक, मानसिक, व्यवहारिक आदि) से माया से बँधे होते हैं। इस संसार में माया का इतना अधिक अन्धकार फैला हुआ है कि हाथ को हाथ नहीं दिखायी दे रहा है, अर्थात् बहुत पास की वस्तु भी दिखायी नहीं देती।

भावार्थ- "हाथ को हाथ न सूझना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है- बहुत पास की भी वस्तु का न दिखायी देना। इसका आशय यह है कि हम इस संसार में अपने निकटतम सम्बन्धियों के विषय में भी यह नहीं जानते कि पूर्व जन्म में हमारे साथ इनका क्या सम्बन्ध

था। हम अपने भविष्य या पूर्व के जन्मों के विषय में भी नहीं जानते।

प्रत्येक प्राणी अपने शरीर, अन्तःकरण, आहार, एवं विहार के लिये माया पर आश्रित होता है। इसे ही प्रत्येक अंग की सन्धि का माया से जुड़ना कहा जाता है।

धखत दाह दसो दिस, झालां इंड न समाए।

फोड़ आकास पर फिरे, किन जाए ना उलंघी ताए॥११॥

दसों दिशाओं में तृष्णा की अग्नि जल रही है, जिसकी लपटें इतनी अधिक हैं कि वे इस ब्रह्माण्ड में भी नहीं समा पा रही हैं। मेरी आत्मा! इस तृष्णा की अग्नि से बचने के लिये तू उस निराकार मण्डल (जिसे आज दिन तक कोई भी पार नहीं कर सका है) को पार करके अपने प्राण प्रियतम से मिलन कर ले।

घाट पाट अति सलवली, तहां हाथ न टिके पपील पाए।
पवने अगनी पर जले, किन चढ़यो न उड़यो जाए॥१२॥

भवसागर के किनारे की धरती पर संशय की ऐसी काई उग गयी है कि उस पर चींटी रूपी चित्तवृत्ति का भी चल पाना सम्भव नहीं होता। आलस्य एवं प्रमाद रूपी हवा के झोंको से तृष्णा रूपी अग्नि और अधिक प्रज्वलित हो जाती है, जिससे आत्मा के अटूट विश्वास एवं प्रेम रूपी पँख जल जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि किसी भी प्रकार से भवसागर को पार नहीं किया जा सकता, न तो चलकर और न उड़कर।

इत चल तूं हस्ती होए के, पेहेन पाखर गज घंट बजाए।
पैठ सकोड़ सुई नाके मिने, जिन कहूं अंग अटकाए॥१३॥
मेरी आत्मा! अब तू धैर्य का लौह वस्त्र धारण कर तथा

सहनशीलता के घण्टे बजाते हुए हाथी के समान चल दे। सुई के छोटे से छिद्र में डाले जाने वाले धागे की भांति, तू अपनी चितवृत्तियों को सारे संसार से इस प्रकार समेट ले कि किसी भी वस्तु में तेरा नाम मात्र भी आकर्षण न रहे। अपनी सम्पूर्ण चित्तवृत्ति को एकमात्र मूल मिलावे में विराजमान युगल स्वरूप के प्रति केन्द्रित कर दे।

दीजे न आल आकार को, पिउ मिलना अंग इन।

दौड़ चढ़ पहाड़ झांप खा, कायर होवे जिन॥१४॥

तू अपने शरीर में किसी भी प्रकार से आलस्य का प्रवेश न होने दे, क्योंकि तुझे अपने प्राणेश्वर को इन्हीं संसाधनों (शरीर के अन्तःकरण आदि) से प्राप्त करना है। तू कायर बनने की राह पर न चल, अपितु दौड़ते हुए तू आत्म-समर्पण रूपी पर्वत के शिखर पर पहुँच जा और प्रेम की

छलाँग लगा दे। ऐसी अवस्था में तेरे आराध्य तुझे क्यों नहीं मिलेंगे?

बोहोत फंद बंध धंध कई, कई कोटान लाखों लाख।

अंदर नजरोँ आवही, पर मुख न देवे भाख॥१५॥

प्रियतम से मिलन की राह में लाखों-करोड़ों बन्धन और उलझने हैं, जिन्हें मात्र आत्मिक दृष्टि से ही देखा जा सकता है। उनके विषय में इस मुख से कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं है।

आड़े चौदे तबक मोह, निराकार निरंजन।

याके पार पोहोचना, इन पार पिउ वतन॥१६॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर मोहतत्व (निराकार-निरञ्जन) का विस्तार है। तुझे इसके परे

जाना है। निराकार-बेहद के पार जाकर ही तू अपने प्रियतम के लीला-धाम में प्रवेश कर सकती है।

भावार्थ- पञ्चभूतात्मक चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड जैसे असंख्य ब्रह्माण्ड (लोक) मन, बुद्धि, एवं अहंकार के आवरण में भ्रमण करते रहते हैं। इन सबके परे मोहतत्व का आवरण है। निराकार से तात्पर्य है- आकार से रहित। इसी प्रकार अवयव रहित पदार्थ को निरञ्जन कहते हैं। इस आधार पर आकाश, अहंकार, महत्तत्व, तथा मोहतत्व सभी को निराकार-निरञ्जन ही कहा जाता है। उपरोक्त चौपाई में व्यष्टि (व्यक्तिगत) रूप से केवल एक ब्रह्माण्ड को लक्ष्य करके वर्णित किया गया है। वस्तुतः इन सभी समष्टि (सामूहिक) स्थूल ब्रह्माण्डों के चारों ओर सूक्ष्म रूप से अहंकार, महत्तत्व, तथा उसके पश्चात् मोहतत्व का आवरण है।

पांउ चले ना पर उड़े, बीच तो ऐसे पंथ।

पर ए सब तोलों देखिए, जोलों ना दृष्टें कथ॥१७॥

निराकार से परे परमधाम की राह इतनी दुर्गम है कि उस पर प्रियतम की कृपा के बिना न तो ज्ञान एवं उपासना के पैरों से चला जा सकता है, और न अटूट विश्वास और प्रेम के पँखों से उड़ा ही जा सकता है। किन्तु ये बाधायें तभी तक दिखायी देती हैं, जब तक प्रियतम से मिलन नहीं होता।

आतम बंधी आस पिया, मन तन लगे वचन।

कहे महामती कौन आवहीं, इत हुकम खसम के बिन॥१८॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि मेरे प्राणवल्लभ! मैं अपने तन, मन, एवं वचन से एकमात्र आपसे ही बँधी हूँ। यह तो निश्चित है कि जब तक आपकी इच्छा नहीं

होगी (हुक्म नहीं होगा), तब तक कोई भी माया को पार करके आपके चरणों में नहीं आ सकता।

प्रकरण ॥४॥ चौपाई ॥११८॥

विरह के प्रकरण – राग देसांकी

तलफे तारुनी रे, दुलही को दिल दे।

सनमंध मूल जानके रे, सेज सुरंगी पर ले॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि मेरे प्राणेश्वर! आपको अपना हृदय सौंपकर आपके प्रेम भरे दर्शन के लिये मैं तड़प रही हूँ। परमधाम के मूल सम्बन्ध से अपने हृदय की सुन्दर शैय्या पर आपके विराजमान होने की मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ।

विशेष- उपरोक्त चौपाई में "दुलही" के स्थान पर यदि "दुल्हे" हो तो अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि तारुणी (तरुणी) और दुल्हेन शब्द एकार्थवाची हैं। हृदय ही वह शैय्या है जिस पर प्रियतम अपनी प्रियतमा को प्रेम का उपहार देता है।

सब तन विरहे खाइया, गल गया लोहू मांस।

न आवे अंदर बाहेर, या विध सूकत स्वांस॥२॥

आपके विरह ने मेरे इस सम्पूर्ण शरीर को ही जर्जर कर दिया है। विरह की अग्नि ने मेरे रक्त एवं माँस को सुखा दिया है। श्वाँस की भी ऐसी अवस्था हो गयी है कि न तो वह सरलतापूर्वक बाहर से अन्दर आ रही है और न अन्दर से बाहर निकल पा रही है।

हाड़ हुए सब लकड़ी, सिर श्रीफल विरह अगिन।

मांस मीज लोहू रंगा, या विध होत हवन॥३॥

विरह की अग्नि ने मेरी अस्थियों को सुखाकर लकड़ी के समान कर दिया है। मेरा सिर भी अब सूखे नारियल की भाँति दृष्टिगोचर हो रहा है। विरह की अग्नि में मेरे शरीर का माँस, मज्जा, और नाड़ियों (नसों) में बहता हुआ रक्त

यज्ञ की आहुति के समान जल रहा है।

रोम रोम सूली सुगम, खंड खंड खांडा धार।

पूछ पिया दुख तिनको, जो तेरी विरहिन नार॥४॥

मेरे प्राणेश्वर! आपके विरह में ऐसा लग रहा है कि जैसे मेरे शरीर के रोम-रोम में बछियाँ चुभ रही हैं तथा तलवार से मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े किये जा रहे हैं। आप तो मेरे सर्वस्व हैं। कृपा करके इतना तो पूछ लीजिए कि आपके विरह में मुझ अर्धांगिनी की क्या स्थिति है?

ए दरद जाने सोई, जिन लगे कलेजे घाव।

ना दारु इन दरद का, फेर फेर करे फैलाव॥५॥

विरह की मेरी पीड़ा का अनुभव मात्र उसी को हो सकता है, जिसके हृदय में स्वयं विरह की चोट लगी हो।

विरह की इस पीड़ा को समाप्त करने की कोई दवा नहीं होती। यह तो नित्य-निरन्तर बढ़ती ही रहती है।

ए दरद तेरा कठिन, भूखन लगे ज्यों दाग।

हेम हीरा सेज पसमी, अंग लगावे आग॥६॥

आपके विरह की पीड़ा असह्य है। इस अवस्था में सुन्दर आभूषण भी शरीर को जला देने वाले प्रतीत होते हैं, तथा सोने और हीरे से जड़ी हुई मखमली शैय्या भी स्पर्श मात्र से शरीर को अग्नि के समान जला देने वाली लगती है।

विरहिन होवे पिउ की, वाको कोई ना उपाए।

अंग अपने वैरी हुए, सब तन लियो है खाए॥७॥

जिसे अपने प्रियतम के विरह में तड़पने का रोग लग

जाता है, उसे उसकी पीड़ा से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं सूझता। उसे अपने ही शरीर के अंग शत्रु के समान कष्टकारी प्रतीत होते हैं। वस्तुतः उसके शरीर को विरह ने निगल लिया होता है।

ए लछन तेरे दरद के, ताए गृह आँगन न सुहाए।

रतन जड़ित जो मंदिर, सो उठ उठ खाने धाए॥८॥

प्राणवल्लभ! आपके विरह की पीड़ा से तड़पने का यही लक्षण है कि अपना घर-आँगन तनिक भी अच्छा नहीं लगता। हीरे-मोतियों से बना हुआ अपना निवास भी श्मशान की तरह भयावह लगता है (खाने को दौड़ता है)।

भावार्थ- "खाने को दौड़ना" एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है- बहुत बुरा लगना।

ना बैठ सके विरहनी, सोए सके ना रोए।

राजप्रथी पाँउ दाब के, निकसी या विध होए॥९॥

प्रियतम के विरह में तड़पने वाली आत्मा न तो शान्ति से बैठ पाती है, न सो सकती है, और न खुलकर रो सकती है। उसकी ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य को भी ठोकर मारकर एकान्तवास के लिये निकल सकती है।

विरहा ना देवे बैठने, उठने भी ना दे।

लोट पोट भी ना कर सके, हूक हूक स्वांस ले॥१०॥

प्रियतम का विरह न तो बैठने देता है और न उठने देता है। इस अवस्था में तो जी भरकर (लोट-पोटकर) रोना भी सम्भव नहीं हो पाता। केवल आँहें भरने के अतिरिक्त कोई भी चारा नहीं रह जाता।

आठों जाम विरहनी, स्वांस लिए हूक हूक।

पत्थर काले ढिग हुते, सो भी हुए टूक टूक॥११॥

मेरे प्राण प्रियतम! जब मैं छः मास तक आठों प्रहर (दिन-रात) आपके विरह में गर्म-गर्म साँसे लेती रही, अर्थात् हाय प्रियतम - हाय प्रियतम की आँहें भरती रही, तब आपने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। यह दृश्य देखकर जो मेरे साथ बड़े भाई श्यामल जी थे, वे भी मेरे प्रति समर्पित हो गये।

भावार्थ- श्यामल जी को काला पत्थर इसलिये कहा गया है क्योंकि वे मिहिरराज जी के प्रति रूखा व्यवहार करते थे, तथा उनके स्वरूप के सम्बन्ध में भी उन्हें कोई पहचान नहीं थी। उनमें परमधाम का अँकुर भी नहीं था।

एह विध मोहे तुम दई, अपनी अंगना जान।

परदा बीच टालने, तार्थें विरहा परवान॥१२॥

हे धाम धनी! इस प्रकार मेरे और आपके मध्य में माया का जो आवरण (पर्दा) था, उसे हटाने के लिये आपने अपनी अर्धांगिनी जानकर मुझे विरह के रस में डुबोया और मेरे धाम हृदय में अपना स्वरूप दिया अर्थात् विराजमान हो गये।

प्रकरण ॥५॥ चौपाई ॥१३०॥

राग धना मेवाड़

इस प्रकरण में भी विरह पर मनोरम प्रकाश डाला गया है।

विरहा गत रे जाने सोई, जो मिल के बिछुरी होए, मेरे दुलहा।
ज्यों मीन बिछुरी जलथें, या गत जाने सोए, मेरे दुलहा।
विरहनी विलखे तलफे तारुनी, तारुनी तलफे कलपे कामनी॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं – मेरे प्राणेश!
विरह की पीड़ा का अनुभव मात्र उसे ही हो सकता है,
जो स्वयं प्रियतम से मिलने के पश्चात् बिछुड़ गयी हो।
मछली का जीवन जल है। एकमात्र उसी को पता होता है
कि उसे जल से अलग होने के पश्चात् जीवित रहने के
लिये कितना तड़पना पड़ता है। मेरे आराध्य! मैं आपकी
अर्धांगिनी हूँ। आपके वियोग में मैं विलख रही हूँ, तड़प

रही हूँ, तथा दुःख के आँसू बहाते हुए आर्त स्वरों में रो रही हूँ।

बिछरो तेरो वल्लभा, सो क्यों सहे सुहागिन।

तुम बिना पिंड ब्रह्मांड, हो गई सब अगिन॥२॥

मेरे प्राणवल्लभ! मैं आपकी अंगना हूँ, सुहागिन हूँ। भला आपके वियोग को मैं कैसे सहन कर सकती हूँ? आपके बिना मेरा शरीर तथा समस्त संसार अग्नि की लपटों में जलता हुआ सा दिखायी दे रहा है।

विरहा जाने विरहनी, वाके आग ना अंदर समाए।

सो झालां बाहेर पड़ी, तिन दियो वैराट लगाए॥३॥

विरह की पीड़ा को मात्र विरहिनी ही जानती है। उसके अन्दर विरह की इतनी प्रचण्ड ज्वाला धधक रही होती है

कि वह उसके शरीर में रह नहीं पाती। यदि उसकी एक लपट भी बाहर आ जाये, तो उससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आग लग जाती है।

भावार्थ- "सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आग लग जाने" का कथन आलंकारिक है। इसका आशय यह है कि विरहिनी को सारा संसार सूना, रसहीन, और निरर्थक लगता है। उसे ऐसा लगता है कि अब एक पल के लिये भी वह अपने प्रियतम के बिना रह नहीं पायेगी। केवल प्रियतम की याद में डूबे रहने से उसे संसार का अस्तित्व नगण्य सा लगता है। इसे ही ब्रह्माण्ड में आग लगना कहते हैं।

विरहा ना छूटे वल्लभा, जो पड़े विघन अनेक।

पिंड ना देखों ब्रह्मांड, देखों दुलहा अपनो एक॥४॥

मेरे प्राण प्रियतम! भले ही मेरे समक्ष माया के बहुत से

लुभावने सुख क्यों न आयें, किन्तु वे नाममात्र भी आपके विरह से मुझे डिगा नहीं सकते (विचलित नहीं कर सकते)। मैं तो केवल आपको ही देख रही हूँ। न तो अब मुझे अपना शरीर दिखायी दे रहा है और न यह स्वप्नवत् संसार।

विरहनी विरहा बीच में, कियो सो अपनों घर।

चौदे तबक की साहेबी, सो वारुं तेरे विरहा पर॥५॥

मैंने तो विरह के सागर में ही अपना निवास बना लिया है। मेरे सर्वस्व! यदि आपके विरह के बदले मुझे चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड का भी स्वामित्व मिले, तो भी मैं उसे छोड़ने के लिये सर्वदा तत्पर हूँ।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाई में उन सुन्दरसाथ के लिये एक बहुत बड़ी सीख दी गयी है जो धाम धनी की

चितवनि करने से बचने के लिये छोटे-छोटे कामों में व्यस्त होने का बहाना बनाया करते हैं।

आंधी आई विरह की, तिन दियो ब्रह्मांड उड़ाए।

विरहिन गिरी सो उठ ना सकी, मूल अंकूर रही भराए॥६॥

मेरे हृदय में प्रियतम के विरह की ऐसी आँधी आयी कि उसने मेरे हृदय में विद्यमान इस संसार के अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया। विरह में मैं इतनी डूब गयी कि बेसुध हो गयी। मुझमें पुनः उठने (पूर्व स्थिति में आने) का सामर्थ्य ही नहीं रहा। केवल परमधाम के मूल सम्बन्ध ने मेरे अन्दर यह आशा बनाए रखी कि प्रियतम अवश्य मिलेंगे। इसी कारण मैं देह त्याग से बच गयी।

विरहा सागर होए रहया, बीच मीन विरहनी नार।

दौड़त हों निसवासर, कहूं बेट ना पाऊं पार॥७॥

मेरे श्री राज! आपका विरह एक अथाह सागर है, जिसमें मैं एक मछली की भांति तड़प रही हूँ। मैं दिन – रात तैर रही हूँ, किन्तु इस अथाह सागर में न तो मुझे कहीं कोई ओर-छोर या किनारा दिखायी दे रहा है और न कोई टापू (द्वीप) ही दिखायी दे रहा है।

प्रकरण ॥६॥ चौपाई ॥१३७॥

राग सोख मलार

इस प्रकरण में परमधाम के प्रेम (इश्क) का वर्णन किया गया है। प्रेम और इश्क को अलग-अलग मानने की भ्रान्ति चल पड़ी है। वस्तुतः इनमें केवल भाषा भेद है। परिक्रमा ग्रन्थ के कथन "याके प्रेमें के वस्तर, याके प्रेमें के भूखन, प्रेम धनी को आउध, प्रेम बसे पिया के चित" आदि से स्पष्ट है कि प्रेम को केवल योगमाया तक ही सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि धाम धनी के हृदय में भी इसका विद्यमान होना मानना पड़ेगा।

इस्क बड़ा रे सबन में, ना कोई इस्क समान।

एक तेरे इस्क बिना, उड़ गई सब जहान॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं – निःसन्देह परमधाम का ज्ञान एवं धनी के लिये विरह का होना

अनमोल सम्पदाये हैं, किन्तु प्रेम की महिमा इन सबसे बड़ी है। प्रेम के समान कुछ भी नहीं है। यदि इस संसार में आने के पश्चात् आपका प्रेम नहीं मिलता है, तो मेरे लिये इस संसार का कोई अस्तित्व ही नहीं है अर्थात् इस संसार में मेरा रहना निरर्थक है।

चौदे तबक हिसाब में, हिसाब निरंजन सुन।

न्यारा इस्क हिसाब थें, जिन देख्या पिउ वतन॥२॥

मेरे सर्वस्व! चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड का माप किया जा सकता है। अनन्त कहे जाने वाले निराकार मण्डल को भी मापा जा सकता है, किन्तु जिस प्रेम से परमधाम को प्रत्यक्ष देखा जाता है, उस प्रेम को मापा जाना किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं है।

लोक अलोक हिसाब में, हिसाब जो हद बेहद।

न्यारा इस्क जो पिउ का, जिन किया आद लों रद॥३॥

पृथ्वी, सूर्य, आदि सभी स्थूल लोकों एवं असीम-सूक्ष्म आकाश सहित इस अनन्त सृष्टि (हद) को नापा जा सकता है, सीमातीत कहे जाने वाले बेहद मण्डल का भी माप किया जा सकता है, किन्तु मेरे प्राणेश! आपका प्रेम तो इन सबसे न्यारा है क्योंकि इसके हृदय में विद्यमान हो जाने पर अब तक की सारी गणनायें निरर्थक लगती हैं।

भावार्थ- मानवीय बुद्धि के लिये आकाश या निराकार का मण्डल अनन्त है, किन्तु ईश्वरीय सृष्टि के लिये नहीं। इसी प्रकार ईश्वरीय सृष्टि भी बेहद से परे की कोई बात नहीं जानती। ब्रह्मसृष्टि बेहद से परे परमधाम की बात तो जानती है, किन्तु प्रेम (इश्क) की पूर्ण पहचान उन्हें अब

तक नहीं थी।

एक अनेक हिसाब में, और निराकार निरगुन।

न्यारा इस्क हिसाब थें, जो कछू ना देखे तुम बिन॥४॥

आदिनारायण एवं उनके संकल्प "एकोऽहम् बहुस्याम्" से उत्पन्न होने वाली जीव सृष्टि तथा निराकार – निर्गुण को भी सीमाबद्ध किया जा सकता है, किन्तु आपका प्रेम सीमाबद्ध गणना से परे है। जब वह हृदय में आ जाता है, तो आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं दिखायी देता है।

और इस्क कोई जिन कथो, इस्कें ना पोहोंच्या कोए।

इस्क तहां जाए पोहोंचिया, जहां सुन्य सब्द ना होए॥५॥

इस संसार का कोई भी व्यक्ति प्रेम (इश्क) की व्याख्या करने का प्रयास न करे, क्योंकि आज दिन तक इस

ब्रह्माण्ड के किसी भी व्यक्ति ने प्रेम के वास्तविक स्वरूप को जाना ही नहीं है। प्रेम का यथार्थ स्वरूप उस स्वलीला अद्वैत परमधाम में है, जहाँ न तो जड़ शून्य है और न नश्वर जगत के शब्द हैं।

नाहीं कथनी इस्क की, और कोई कथियो जिन।

इस्क तो आगे चल गया, सब्द समाना सुन॥६॥

प्रेम (इश्क) को शब्दों के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। इस सृष्टि के किसी भी मनीषी को इश्क (प्रेम) की व्याख्या करने का अनुचित प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि किसी के भी द्वारा कहे गये शब्द शून्य में ही लीन हो जाते हैं, जबकि प्रेम की गति तो शून्य से परे परमधाम में रहती है।

सब्द जो सूकया अंग में, हले नहीं हाथ पाए।

इस्क बेसुध न करे, रही अंदर बिलखाए॥७॥

मेरे प्राणवल्लभ! आपके प्रेम में मेरी ऐसी अवस्था हो गयी है कि मेरे हृदय से निकलने वाले शब्द हलकों (होंठों) तक आते-आते सूखे जा रहे हैं (समाप्त हो जा रहे हैं)। मेरे हाथ-पैर भी हिलने-डुलने की स्थिति में नहीं रहते। आपके प्रेम में बेहोशी जैसी बेसुधि तो नहीं आती, किन्तु आन्तरिक रूप से विलखना पड़ता है।

भावार्थ- शब्द की उत्पत्ति मूलाधार चक्र में होती है, उसे "परा वाणी" कहते हैं। हृदय में आकर वही शब्द "पश्यन्ती" कहा जाता है। कण्ठ में उसे "मध्यमा" तथा मुख से निकलने पर "बैखरी वाणी" कहा जाता है। विरह को कुछ अंशों में व्यक्त किया भी जा सकता है, किन्तु प्रेम को तो नाममात्र भी व्यक्त नहीं किया जा सकता

क्योंकि वह शब्दातीत है। यही कारण है कि उपरोक्त चौपाई के प्रथम चरण में प्रेम के शब्दों को होंठों में सूख जाने वाला कहा गया है।

पांपण पल ना लेवही, दसो दिस नैन फिराऊं।

देह बिना दौड़ों अन्दर, पिया कित मिलसी कहां जाऊं॥८॥

आपके प्रेम भरे मधुर दर्शन (शर्बत-ए-दीदार) की चाहत में पल भर के लिये भी मेरी आँखों की पलकें झपकती नहीं हैं। मैं दसों दिशाओं में आपको खोजती फिर रही हूँ। यद्यपि मेरा शरीर तो एक ही स्थान पर स्थिर है, किन्तु सांकल्पिक रूप से मैं दसों दिशाओं में आपको ही ढूँढ़ रही हूँ। मेरे मन में केवल एक ही विचार है कि मेरे प्राणेश्वर! आप मुझे कहाँ मिलेंगे कि मैं आकर आपसे मिल लूँ।

भावार्थ- दस दिशायें इस प्रकार हैं – पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊपर, तथा नीचे। हृदय में प्रेम के प्रस्फुटित होने पर प्रेम की तरंगें मन के साथ संयुक्त होकर एक भावमय (संकल्पमय) शरीर की रचना करती हैं, जो अपने प्रेमास्पद की खोज में सर्वत्र घूमता रहता है। चौ. ७-१० में प्रेम की मनोरम स्थिति का वर्णन किया गया है।

इस्क को ए लछन, जो नैनों पलक ना ले।

दौड़े फिरे न मिल सके, अन्दर नजर पिया में दे॥९॥

प्रेम का यही लक्षण है कि पल भर के लिये भी आँखों की पलकें झपकती नहीं हैं। जब चारों ओर भावमय (संकल्पमय) शरीर से दौड़ने पर भी प्रियतम के दर्शन नहीं होते हैं, तो वह अपनी अन्तर्दृष्टि को अपनी आत्मा

में ही इस भावना के साथ केन्द्रित कर देती है कि मेरा प्रियतम मेरी आत्मा के धाम हृदय में बसता है।

भावार्थ- उपरोक्त कथन के आधार पर चितवनि के दो रूप स्पष्ट होते हैं। पहला स्वरूप वह है जिसमें विरह के भावों के साथ ज्ञान दृष्टि से कालमाया एवं योगमाया को पार कर परमधाम में प्रवेश किया जाता है तथा नख से शिख तक युगल स्वरूप की शोभा में स्वयं को डुबोया जाता है। इसे ही संकल्पमय शरीर से दौड़ना कहा जाता है। इस स्थिति में विचरण करते-करते ज्ञान की अवस्था समाप्त हो जाती है तथा विरह की अवस्था गहराने लगती है।

यहाँ यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य है कि अपनी परात्म की भावना से कालमाया एवं योगमाया को पार कर हमने अब तक जो भी परमधाम में विचरण किया होता है, वह

भावमय (संकल्पमय) ही होता है और वह ज्ञान एवं हमारे अटूट विश्वास पर आधारित होता है, जिसे हमने तारतम वाणी और ब्रह्मात्माओं के चरणों में बैठकर प्राप्त किया होता है। किन्तु इस अवस्था में हमारे जीव का अन्तःकरण क्रियाशील होता है, जिसके परिणाम स्वरूप शरीर एवं संसार से हमारी पूर्ण निवृत्ति नहीं हुई होती है। इस प्रकार की चितवनि से मानसिक आनन्द प्राप्त होता है। विरह की परिपक्व अवस्था में सुरता शरीर, संसार, तथा मन-बुद्धि के द्वन्द्वों से परे हो जाती है। इसके पश्चात् प्रेम की रसधारा बहने लगती है, जिसमें आत्मा को यह विदित होने लगता है कि उसका प्राणेश्वर तो उसकी अन्तरात्मा में हैं। सागर की लहरों की तरह वह भी उसकी प्राणेश्वरी है। उससे न तो पल भर के लिये कभी अलग हुई थी और न कभी हो सकेगी।

इस अवस्था में आत्मा एवं परब्रह्म में ऐक्य भाव स्थापित हो जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि उसे अपनी आत्मा के धाम हृदय में सम्पूर्ण परमधाम सहित युगल स्वरूप के प्रत्यक्ष दर्शन होने लगते हैं। इसे ही अगली चौपाई के तीसरे चरण में "अंदर तो न्यारा नहीं" तथा किरन्तन १३२/४ में "तो अधखिन पिऊ न्यारा नहीं, मांहे रहे हिल मिल" कहा गया है। भ्रान्तिवश उपरोक्त कथन का आशय यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि इसमें अस्थि-माँस के इस स्थूल शरीर की छाती में चितवनि करने के लिये कहा जा रहा है। प्रारम्भिक अवस्था में विरह की अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये "मेरी छाती दिल की कोमल, तिनसे तुम्हारे पाँऊ कोमल", "इतही सेज बिछाए देऊँ, जुदे करो जिन दम" जैसे भावों का आश्रय लेकर अवश्य स्थूल शरीर के हृदय

में भावना कर सकते हैं। इसके पश्चात् ज्ञानमयी चितवनि (कालमाया एवं योगमाया से होते हुए परमधाम में) का ही आधार लेना पड़ेगा। विरह की परिपक्व अवस्था में स्वतः ही आत्मा के धाम हृदय में प्रियतम का दर्शन होगा। उस अवस्था में इस स्थूल शरीर या संसार का जरा भी आभास नहीं रहेगा।

नजरों निमख न छूटहीं, तो नाहीं लागत पल।

अन्दर तो न्यारा नहीं, पर जाए न दाह बिना मिल॥१०॥

उस अवस्था में क्षण भर के लिये भी प्रियतम की छवि ओझल नहीं होती है। यही कारण है कि पलकें भी झपकने का नाम नहीं लेती हैं। यद्यपि प्रियतम मुझसे पल भर के लिये भी आन्तरिक रूप से अलग नहीं हैं, किन्तु जब तक बाह्य रूप से मिलन (साक्षात्कार) नहीं होता है,

तब तक प्रियतम से मिलने की अग्नि (बल, इच्छा) शान्त नहीं होती।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई के कथन से यह संशय होता है कि यहाँ किस अवस्था का वर्णन है, जिसमें आँखों की पलकें झपकती नहीं हैं ? चितवनि की अवस्था में तो आँखे बन्द रहती हैं। उस स्थिति में तो झपकने का प्रश्न ही नहीं है। इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि आँखों के झपकने का तात्पर्य है- यदि खुली हो तो बन्द न हों और यदि बन्द हों तो खुलें नहीं।

रात्रि के अन्धेरे या गहन एकान्त में जहाँ कोई भी अन्य न हों, वहाँ खुली आँखों से भी विरह में तड़पा जा सकता है। उस समय आँखों के खुले रहने पर भी संसार का आभास नगण्य सा होता है। प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था में आँखे अधखुली हो सकती हैं, परन्तु इसके पश्चात् वे

बन्द तो हो सकती है, किन्तु खुलना नहीं चाहेंगी। चितवनि की गहन अवस्था या प्रेम की परिपक्वावस्था में आँखें पूर्णतया बन्द हो जाती हैं। इस अवस्था में उनके आन्तरिक नेत्र खुल जाते हैं, जिनसे प्रियतम का दर्शन होता रहता है। उसमें जो निरन्तरता बनी रहती है, अर्थात् पल भर के लिये भी दर्शन में व्यवधान नहीं होता, उसे ही पलकों (आन्तरिक पलकों) का न झपकना कहते हैं।

जो दुख तुमहीं बिछुरे, मोहे लाग्यो जो तासों प्यार।
 एता सुख तेरे विरह में, तो कौन सुख होसी विहार॥११॥
 मेरे प्राणप्रियतम! आपके वियोग में मेरे हृदय को जो पीड़ा हो रही है, मुझे उससे ही गहरा लगाव हो गया है, क्योंकि उससे भी मुझे एक मधुर सामीप्यता (मीठे

अहसास) की प्राप्ति होती है। जब आपके विरह में तड़पने पर इतना सुख मिलता है, तो आपके प्रत्यक्ष दर्शन रूपी लीला विहार का आनन्द कितना होगा? अनन्त! अनन्त! अनन्त!

प्रकरण ॥७॥ चौपाई ॥१४८॥

राग श्री धना काफी

मूल सम्बन्ध के कारण विरह एवं प्रेम किस प्रकार फलीभूत होते हैं, इस प्रकरण में इसी तथ्य को दर्शाया गया है।

सनमंध मूल को, मैं तो पाउ पल छोड़यो न जाए।

अब छल बल मोहे कहा करे, मोह आद थें दियो उड़ाए॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं— मेरे जीवन के आधार स्वरूप श्री राज जी! आपसे मेरा परमधाम का जो मूल सम्बन्ध है, उसे मैं किसी भी स्थिति में मन , वाणी, एवं कर्म से नहीं छोड़ सकती। जब आपने तारतम ज्ञान से अपनी पहचान देकर प्रारम्भ में ही मेरे मोह रूपी अज्ञान को नष्ट कर दिया, तो अब इस छल रूपी माया का बल मेरा क्या अहित कर लेगा?

भावार्थ- एक ही अक्षरातीत ने अपने आवेश स्वरूप से श्री कृष्ण, श्री देवचन्द्र जी, एवं श्री मिहिरराज जी के तन में विराजमान होकर लीला की है, किन्तु भ्रान्तिवश इन तनों में लीला करने वाले स्वरूप की पहचान न करके, तनों के नाम एवं उनके जन्म स्थान, गोत्र, आदि की पहचान की जा रही है। जब इस जागनी लीला में मूल स्वरूप ने अपनी सारी शोभा इन्द्रावती जी को दे रखी है, तो उनके धाम हृदय में विराजमान श्री प्राणनाथ जी को सन्त, कवि, एवं महापुरुष कहना, तथा मात्र श्री कृष्ण नाम की महिमा गाना मूल स्वरूप श्री राज जी एवं अपने मूल सम्बन्ध का अपमान करना है।

दरद जो तेरे दुलहा, कर डारयो सब नास।

पर आस न छोड़े जीव को, करने तुम विलास॥२॥

मेरे प्राणवल्लभ! आपके विरह की पीड़ा ने मेरे इस शरीर को जर्जर (नष्ट प्राय) कर दिया है, किन्तु इसमें रहने वाले जीव को अभी भी यह आशा बनी हुई है कि आपके साथ निश्चित रूप से मेरा मिलन होगा और आपकी प्रेमभरी लीला का रसपान करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

विरहा न छोड़े जीव को, जीव आस भी पिउ मिलन।

पिया संग इन अंगे करूँ, तो मैं सुहागिन॥३॥

न तो आपका विरह मेरे जीव को छोड़ पा रहा है और न जीव आपसे मिलने की आशा को छोड़ रहा है। मैं अपने सुहागिन कहलाने के गौरव की रक्षा तभी कर पाऊँगी, जब मैं अपने हृदय को आपकी सान्निध्यता की अनुभूति करा दूँ।

लागी लड़ाई आप में, एक विरहा दूजी आस।

ए भी विरहा पिउ का, आस भी पिउ विलास॥४॥

मेरे अन्दर प्रियतम को पाने का विरह है, तो उनके साथ होने वाली आनन्दमयी लीला का रसपान करने की आशा है। इस समय इन दोनों में ही इस बात के लिये संघर्ष हो रहा है कि कौन महत्वपूर्ण है – प्रियतम का विरह या उनके प्रेम की आशा?

भावार्थ— कालमाया में प्रियतम के विलास का तात्पर्य है— प्रियतम की सान्निध्यता में उनका दर्शन, तथा उनकी प्रेम भरी बातों का श्रवण, एवं अपने हृदय की भावनाओं को उनके सामने व्यक्त करना। परमधाम में प्रियतम के साथ विलास का आशय है— अष्ट प्रहर की लीला में रसमग्न होना।

मूल सम्बन्ध (निसबत) से ही विरह और मूल सम्बन्ध

से ही आशा है। इस प्रकार निस्वत के अंग होने से विरह और आशा एक समान हैं। इनमें कोई बड़ा-छोटा नहीं है। ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं, अपितु पूरक हैं। विरह से ही प्रेम आता है, जिससे धनी का मिलन होता है एवं विरह से ही प्रियतम को पाने की आशा भी जाग्रत होती है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि मूल सम्बन्ध के प्रति अटूट विश्वास के कारण ही आशा उत्पन्न होती है। तभी विरह के प्रति हृदय उत्तरोत्तर आगे बढ़ता है। अन्यथा निराशावाद की इस नकारात्मक सोच के कारण कोई विरह की राह पर चल ही नहीं सकता।

मैं कहावत हों सुहागनी, जो विरहा न देऊं जिउ।

तो पीछे वतन जाए के, क्यों देखाऊं मुख पिउ॥५॥

मैं इस संसार में अक्षरातीत की सुहागिन आत्मा

कहलाती हूँ। ऐसी अवस्था में यदि मैं अपने जीव को विरह के रस में न डुबोऊँ, तो परमधाम में जाग्रत होने पर अपने प्रियतम को अपना मुख कैसे दिखाऊँगी, अर्थात् मुझे बहुत अधिक लज्जा का अनुभव होगा।

भावार्थ- "मुख न दिखाना" एक मुहावरा है जिसका आशय होता है- अत्यधिक लज्जा का अनुभव करना।

जो जीव देते सकुचों, तो क्यों रहे मेरा धरम।

विरहा आगे कहा जीव, ए केहेत लगत मोहे सरम॥६॥

यदि मैं इस विरह में अपने जीव को समर्पित करते समय संकोच करती हूँ, तो मेरा धर्म कैसे सुरक्षित रह सकता है, अर्थात् मैं अपने कर्तव्य पथ से भटकी हुयी कही जाऊँगी। प्रियतम के प्रेम में भला जीव के शरीर के अस्तित्व की क्या चिन्ता की जाये? अपने इस नश्वर तन

की चिन्ता की बात कहने में भी मुझे लज्जा का अनुभव होता है।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई के द्वितीय चरण में "धर्म" का अभिप्राय अपने कर्त्तव्य पथ से है।

माया काया जीवसों, भान भून टूक कर।

विरहा तेरा जिन दिसा, मैं वारुं तिन दिस पर॥७॥

मेरे प्राणवल्लभ! माया के इस शरीर तथा जीव को तोड़कर तथा टुकड़े-टुकड़े कर मैं उस दिशा पर न्यौछावर कर दूँ, जिस दिशा से मुझे आपका विरह प्राप्त होता है।

भावार्थ- "जीव" सूक्ष्म होने से तोड़ा तो नहीं जा सकता, किन्तु यहाँ जीव को तोड़ने का भाव है इसे कठिन साधना की कसौटी से गुजारना।

जब आह सूकी अंग में, स्वांस भी छोड़यो संग।

तब तुम परदा टालके, दियो मोहे अपनो अंग॥८॥

जब हब्से में आपके विरह में निकलने वाली आहें भी होंठों में सूख गयीं, तो मेरी साँस (प्राणवायु) भी निकल गयी, अर्थात् मेरे जीव ने अपने तन का परित्याग कर दिया। तब आपने माया का पर्दा हटा दिया और मुझे अपना हृदय ही दे दिया, अर्थात् मेरे धाम हृदय में आकर विराजमान हो गये।

भावार्थ- हब्सा में जाने से पूर्व श्री इन्द्रावती जी को यह बोध ही नहीं था कि मेरे धाम हृदय में अक्षरातीत विराजमान हैं। हब्सा में प्रियतम के मिलन की घटना ने श्री मिहिरराज जी के सारे संशयों को दूर कर दिया।

मैं तो अपना दे रही, पर तुम ही राख्यो जिउ।

बल दे आप खड़ी करी, कारज अपने पिउ॥९॥

मेरे प्रियतम! लम्बे समय तक प्रतीक्षा के पश्चात् भी जब आपने मुझे दर्शन नहीं दिया, तो मैंने निराश होकर विरह में अपना तन छोड़ दिया। किन्तु मेरे तन से जागनी कार्य की सेवा लेने के लिये आपने मेरे जीव के इस तन को सुरक्षित रखा तथा मुझे अपनी शक्ति देकर जागनी कार्य के लिये खड़ा (तैयार) कर दिया।

जीवरा भी मेरा रख्या, तुम कारज भी कारन।

आस भी पूरी सुहागनी, और ब्रध भी राख्यो विरहिन॥१०॥

हे धाम धनी! आपने जागनी कार्य की सेवा के लिये मेरे जीव के इस तन को जीवित रखा। मेरे मन में आपके साथ आनन्दमयी लीला की जो आशा थी, उसको भी

आपने पूर्ण किया और मेरी लाज भी रख ली।

तुम आए सब आइया, दुख गया सब दूर।

कहे महामती ए सुख क्यों कहूं, जो उदया मूल अंकुर॥११॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे मेरे प्राणवल्लभ! मेरे धाम हृदय में आपके विराजमान होते ही परमधाम की सभी निधियाँ मेरे अन्दर आ गयीं। इसके अतिरिक्त मेरे विरह का सम्पूर्ण दुःख भी समाप्त हो गया। परमधाम का मूल अंकुर जाग्रत होने पर मुझे इतना आनन्द हुआ कि उसका वर्णन करना सम्भव नहीं है।

भावार्थ— तारतम वाणी के प्रकाश में जब आत्मा ज्ञान दृष्टि से प्रियतम की पहचान कर लेती है, तो उसका हृदय विरह में तड़पने लगता है। विरह के परिपक्व होने पर जब उसके हृदय में प्रेम का रस प्रवाहित होता है, तो

वह अपनी परात्म, युगल स्वरूप, एवं परमधाम को प्रत्यक्ष देखने लगती है। उस स्थिति में उसे अपने शरीर और संसार का कोई बोध नहीं रहता। इसे ही परमधाम के मूल अंकुर का जाग्रत होना कहते हैं।

प्रकरण ॥८॥ चौपाई ॥१५९॥

विरह को प्रकास – राग आसावरी

इस प्रकरण में विरह के ऊपर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है।

एह बात मैं तो कहूं, जो कहने की होए।

पर ए खसमें रीझ के, दया करी अति मोहे॥१॥

प्रियतम के विरह को शब्दों में व्यक्त करना बहुत कठिन है, इसलिये इस सम्बन्ध में मेरा कुछ भी कहना उचित नहीं है। किन्तु मेरे प्राणेश्वर अक्षरातीत ने मेरे ऊपर प्रेम-विह्वल होकर अति प्रेम भरी दया की और मेरे द्वारा विरह की वास्तविकता का वर्णन करवाया।

सुनियो बानी सुहागनी, दीदार दिया पिउ जब।

अंदर परदा उड़ गया, हुआ उजाला सब॥२॥

परमधाम की ब्रह्मात्माओं! प्रियतम ने मेरे तन से जो कुछ कहलवाया है, उसे सुनिये। जब प्रियतम ने हब्सा में मुझे दर्शन दिया और मेरे धाम हृदय में विराजमान हुये, तो मेरे अन्दर परमधाम के अलौकिक ज्ञान का प्रकाश हो गया तथा जो भी संशय था वह समाप्त हो गया।

पिया जो पार के पार हैं, तिन खुद खोले द्वार।

पार दरवाजे तब देखे, जब खोल देखाया पार॥३॥

निराकार-बेहद से परे परमधाम में विराजमान स्वयं धाम धनी ने मेरे धाम हृदय में बैठकर वहाँ का ज्ञान दिया। जब उन्होंने निराकार-बेहद से परे परमधाम की पहचान करायी, तभी मुझे वहाँ का साक्षात्कार हुआ।

कर पकर बैठाए के, आवेस दियो मोहे अंग।

ता दिन थें पसरी दया, पल पल चढ़ते रंग॥४॥

प्रियतम ने हाथ पकड़कर मुझे अपने पास बैठाया और मेरे हृदय में अपना आवेश दिया, अर्थात् अत्यधिक प्रेम में भरकर मुझे दर्शन दिया और मेरे धाम हृदय में विराजमान हो गये। उस दिन से उनकी कृपा बढ़ती ही गयी और पल-पल मेरे आनन्द में वृद्धि होती गयी।

हुई पेहेचान पिउसों, तब कहयो महामती नाम।

अब मैं हुई जाहेर, देख्या वतन श्री धाम॥५॥

जब मुझे प्रियतम की पूर्ण पहचान हो गयी, तब मेरा नाम महामति पड़ा। मैंने अपने मूल घर परमधाम का भी दर्शन किया और सब सुन्दरसाथ के बीच में महामति के रूप में उजागर हो गयी।

भावार्थ- हब्सा में श्री इन्द्रावती जी को अक्षरातीत की पूर्ण पहचान हो जाती है। इसलिये वहीं से उनके महामति नाम की सार्थकता सिद्ध होती है। प्रकाश गुजराती ३७/२१ की प्रगटवाणी में स्पष्ट रूप से कहा गया है-

"ते माहें एक इन्द्रावती, केहे वाणी सहुमां महामती।"

यह निर्विवाद सत्य है कि हब्सा में प्रकाश गुजराती अवतरित हुई थी, इसलिये हब्सा से महामति जी के नाम का प्रचलन करना उचित है। यदि यह कहा जाये कि प्रकाश हिन्दुस्तानी की प्रगट वाणी में कहा गया है-

धनी जी को जोश आतम दुलहिन, नूर हुकम बुध मूल वतन।
ए पांचों मिल भई महामत, वेद कतेबों पोहोंची सरत॥

प्रकाश हिन्दुस्तानी १०/३७

और अक्षर की आत्मा मेड़ते में आकर विराजमान होती है, तभी से उन्हें महामति कहने की सार्थकता है, क्योंकि

हब्सा में अवतरित रास, प्रकाश, खटरूती, और कलश गुजराती में श्री इन्द्रावती जी की छाप है, जबकि वि.सं. १७३३ के पश्चात् अवतरित वाणी में श्री महामति जी की छाप है।

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि "पौढ़े भेले जागसी भेले" (क.हि. २३/२९) के कथन के अनुसार अक्षर की आत्मा का ब्रह्मात्माओं के साथ आना ही उचित लगता है। यह अवश्य हो सकता है कि—

महंमद आया ईसे मिने, तब अहमद हुआ श्याम।

अहमद मिल्या मेहेदी मिने, ये तीनों मिल भये इमाम॥

अर्थात् मेड़ते में कतेब पक्ष के ज्ञान का अवतरण प्रारम्भ होता है, जिसे सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तारतम ज्ञान में मुहम्मद (अक्षर की आत्मा) के ज्ञान का समायोजन कहा जाता है। इसे कुरआन-हदीसों की

भाषा में दो सूरतों- बशरी और मल्की- का मिलन भी कहा जाता है। तभी हकी सूरत उजागर होते हैं। इस प्रकार कतेब परम्परा की दृष्टि से जागनी लीला में बशरी सूरत की भूमिका मेड़ते से प्रारम्भ होती है, क्योंकि उन्होंने अरब में कहा था कि कियामत के समय में अल्लाह के साथ मैं भी रहूँगा।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर यही कहा जा सकता है कि हब्सा की घटना के आधार पर श्री इन्द्रावती जी का महामति नाम तभी से पड़ गया था, किन्तु अक्षर की लीला में कोई भूमिका मेड़ते तक नहीं थी। उदाहरण के रूप में सूरत, ठठानगर, मस्कत बन्दर, आदि में अवतरित अनेक किरन्तनों, जैसे- सुनो रे सत के बनजारे, पहले आप पहचानो रे साधो, वचन विचारो रे मीठड़ी वल्लभाचारज बानी, रे हो दुनियां बावरी, रे हो

दुनियां को तूं कहा पुकारे, आदि में "महामति" की छाप है।

बात कही सब वतन की, सो निरखे मैं निसान।

प्रकास पूरन दृढ़ हुआ, उड़ गया उनमान॥६॥

प्रियतम ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर परमधाम की शोभा एवं लीला का वर्णन किया, जिन्हें मैंने अन्तः श्रवणों से सुना तथा आत्म-चक्षुओं से प्रत्यक्ष देखा। अब तक मेरा ज्ञान अनुमान पर आधारित था, किन्तु धाम धनी के द्वारा प्रत्यक्ष दिखाये जाने पर ज्ञान में पूर्ण रूप से दृढ़ता हो गयी।

भावार्थ- श्री मिहिराज जी ने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारविन्द से परमधाम की जिस शोभा एवं लीला के विषय में सुना था, उसे अब तक प्रत्यक्ष नहीं किया

था, इसलिये अब तक का ज्ञान अनुमान पर आधारित था। किन्तु धाम धनी के हृदय में विराजमान हो जाने पर अखण्ड परमधाम तथा ब्रज-रास की लीला प्रत्यक्ष रूप से दिखायी देने लगी, जिससे उनके मन में परमधाम के प्रति पूर्ण रूप से दृढ़ता आ गयी।

आपा मैं पेहेचानिया, सनमंध हुआ सत।

ए मेहेर कही न जावहीं, सब सुध परी उतपत॥७॥

धाम धनी की कृपा (मेहेर) की महिमा को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनकी प्रेम भरी कृपा की छत्रछाया में मैंने अपनी परात्म (मूल तन) को देखा, जिससे मुझे अनुभव होने लगा कि मेरा और धनी का सम्बन्ध अटूट है। इसके अतिरिक्त मुझे इस खेल में आने के मूल कारण का भी पूर्ण रूप से पता चला।

भावार्थ- इस चौपाई के प्रथम चरण में कथित "आपा" शब्द का अर्थ है- निज स्वरूप। हमारा मूल स्वरूप वह परात्म है, जो धाम धनी के सम्मुख मूल मिलावा में विराजमान है। इस खेल में परात्म की सुरता ही आत्मा के रूप में आयी है, जो जीव के ऊपर विराजमान होकर इस स्वापिक लीला को देख रही है। माया की नींद में डूबे अज्ञानी व्यक्ति को अपना यह पञ्चभूतात्मक शरीर ही अपना वास्तविक रूप लगता है, किन्तु ज्ञानीजन अपने जीव के स्वरूप को अपना वास्तविक रूप मानते हैं। तारतम ज्ञान की दृष्टि से इन दोनों से परे निज स्वरूप आत्मा एवं परात्म के रूप में निश्चित होता है।

मुझे जगाई जुगतसों, सुख दियो अंग आप।

कंठ लगाई कंठसों, या विध कियो मिलाप॥८॥

प्रियतम ने मुझे युक्तिपूर्वक हब्शा में भेजकर विरह में तड़पाया और प्रत्यक्ष दर्शन देकर मुझे जाग्रत किया। मेरे धाम हृदय में स्थित होकर उन्होंने परमधाम के अपार सुख दिये। हब्शा में उन्होंने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन देकर गले लगाया।

भावार्थ- "गले लगाना" एक मुहावरा है और इसका आशय अक्षरातीत के द्वारा श्री इन्द्रावती जी को अत्यन्त प्रेम भरी दृष्टि से देखना और वार्ता करना है। आलिङ्गन स्थूल शरीरों में ही होता है, सूक्ष्म शरीरों में नहीं। जिस परम सुख का अनुभव आलिङ्गन से हो सकता है, उसे धाम धनी ने अपनी दृष्टि मात्र से दे दिया। इसलिये इस चौपाई के तीसरे चरण में "कण्ठ लगाई कण्ठ सों" कहा गया है।

खासी जान खेड़ी जिमी, जल सींचिया खसम।

बोया बीज वतन का, सो ऊग्या वाही रसम॥९॥

मुझे परमधाम की विशिष्ट आत्मा जानकर धाम धनी ने मेरे हृदय रूपी उर्वरा धरती को प्रेम के जल से सिंचित किया और उसमें परमधाम के तारतम ज्ञान का बीज बोया। वह बीज हब्सा में वाणी अवतरण के रूप में अंकुरित हो गया।

भावार्थ- महारास की लीला के समय विरह के प्रसंग में श्री इन्द्रावती जी ने श्री कृष्ण जी का अभिनय किया था, इसलिये इस जागनी लीला में धाम धनी ने उन्हें अपने रूप में शोभा देने के लिये चयनित कर लिया। हब्से में विरह में तड़पाकर श्री इन्द्रावती जी ने स्वयं को समर्पण की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया, जिससे उनका हृदय उस आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच गया जिसमें प्रियतम का

साक्षात्कार अवश्य होता है।

बीज आतम संग निज बुध के, सो ले उठिया अंकूर।

या जुबां इन अंकूर को, क्यों कर कहूं सो नूर॥१०॥

प्रियतम अक्षरातीत के द्वारा मेरी आत्मा में बोया गया ज्ञान का बीज निज बुद्धि की संगति पाकर अंकुरित हो उठा। अब इस नश्वर संसार की जिह्वा से उस अनुपम ज्ञान के प्रकाश का वर्णन नहीं हो सकता है।

नातो ए बात जो गुझ की, सो क्यों होए जाहेर।

सोहागिन प्यारी मुझ को, सो कर ना सकों अंतर॥११॥

अन्यथा हृद्भा में घटित होने वाली सभी बातें, जैसे— मेरा प्रियतम के विरह में तड़पना, उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार होना, एवं तारतम वाणी का उतरना, परम

गोपनीय हैं। इन्हें मैं किसी भी स्थिति में प्रकट नहीं कर सकती थी, किन्तु परमधाम की आत्मायें मुझे बहुत ही प्रिय हैं। इसलिये मैं इनसे किसी भी तरह का छिपाव भी नहीं कर सकती।

नेक कहूं या नूर की, कछुक इसारत अब।

पीछे तो जाहेर होएसी, तब दुनी देखसी सब॥१२॥

हब्शा में मेरे तन से परमधाम के ज्ञान के अवतरण का जो क्रम शुरू हुआ, उसके विषय में कुछ थोड़ा-सा संकेतों में बता रही हूँ। आने वाले समय में जब परमधाम का सम्पूर्ण ज्ञान अवतरित हो जायेगा, तब जागनी लीला के समाप्त होने के पश्चात् योगमाया के ब्रह्माण्ड में सारे संसार को मेरे विषय में सब कुछ विदित हो जाएगा।

ए जो विरहा बीतक कही, पिया मिले जिन सूल।

अब फेर कहूं प्रकास थें, जासों पाइए माएने मूल॥१३॥

उपरोक्त कथनों में मैंने हब्शा के उस विरह का घटनाक्रम वर्णित किया है, जिसमें मेरे प्राणेश्वर से मेरा मिलन हुआ। अब मैं पुनः तारतम वाणी के प्रकाश में उस विरह के वास्तविक रहस्य को उजागर कर रही हूँ, जिससे आध्यत्मिक जीवन का वास्तविक अभिप्राय जाना जा सकता है।

ए विरहा लछन मैं कहे, पर नहीं विरहा ताए।

या विध विरह उदम की, जो कोई किया चाहे॥१४॥

पूर्व के प्रकरण ५ और ६ में मैंने विरह के लक्षणों का वर्णन अवश्य किया है, किन्तु वह विरह का वास्तविक स्वरूप नहीं है क्योंकि विरह शब्द की परिधि में नहीं

आता। परन्तु यदि कोई सुन्दरसाथ विरह की राह अपनाना चाहता है, तो उन प्रकरणों (५,६) में विरह का सरल मार्ग दर्शाया गया है।

विरह सुनते पिउ का, आह ना उड़ गई जिन।

ताए वतन सैयां यों कहें, नाहीं न ए विरहिन॥१५॥

प्रियतम के विरह की बातें सुनकर जिसके हृदय से आह नहीं निकलती, वह परमधाम की ब्रह्मात्माओं की दृष्टि में विरहिणी कहलाने की शोभा कदापि प्राप्त नहीं कर सकती।

जो होवे आपे विरहनी, सो क्यों कहे विरहा सुध।

सुन विरहा जीव ना रहे, तो विरहिन कहां थें बुध॥१६॥

जो आत्मा स्वयं धाम के विरह में डूबी होती है, वह

विरह की अवस्था का वर्णन नहीं कर सकती। प्रियतम की बातें सुनकर जब जीव का हृदय गहन विरह में डूब जाता है, तो वह अपने शरीर को इस संसार में रखना ही नहीं चाहता। ऐसी अवस्था में उसकी बुद्धि भला कहाँ से सक्रिय रह सकती है।

भावार्थ- विरह की बातें सुनने मात्र से कोई अपना तन नहीं त्याग सकता। व्यवहार में प्रायः यही देखा जाता है कि विरह की बातें प्रतिदिन सुनने पर भी अनेकों को विरह नहीं आता। वस्तुतः ज्ञान द्वारा जब विवेक जाग्रत होता है, तभी प्रियतम का विरह आता है।

पतंग कहे पतंग को, कहां रहया तूं सोए।

मैं देख्या है दीपक, चल देखाऊं तोहे॥१७॥

यदि एक पतिंगा दूसरे पतिंगे से ऐसा कहता है कि तू

अब तक कहाँ सो रहा था? मैं जलते हुए दीपक को देख कर आया हूँ। मेरे साथ चल। मैं तुझे भी उस दीपक को दिखाता हूँ।

के तो ओ दीपक नहीं, या तू पतंग नाहें।

पतंग कहिए तिनको, जो दीपक देख झंपाए॥१८॥

यह सुनकर दूसरा पतिंगा उत्तर देता है कि या तो तुमने दीपक को देखा ही नहीं है या तुम वास्तव में पतिंगा ही नहीं हो। पतिंगा मात्र वही कहला सकता है, जो दीपक को देखते ही उसे झाँप मारे।

भावार्थ— दीपक को देखते ही पतिंगा उस पर टूट पड़ता है तथा अपने पँखों से उसे झपट्टा मार कर बुझा देने का प्रयास करता है। इसे ही झाँप मारना कहते हैं। इस प्रयास में या तो वह दीपक को बुझा देता है या स्वयं मर

जाता है।

पतंग और पतंग को, जो सुध दीपक दे।

तो होवे हांसी तिन पर, कहे नहीं पतंग ए॥१९॥

एक पतिंगा यदि दूसरे पतिंगे को दीपक की पहचान देता है, तो उसकी हँसी होती है कि यह वास्तविक पतिंगा ही नहीं है, बल्कि कोई नकली कीड़ा है जो पतिंगा का भेष बनाये हुए है।

दीपक देख पीछा फिरे, साबित राखे अंग।

आए देवे सुध और को, सो क्यों कहिए पतंग॥२०॥

जो दीपक को देखने के पश्चात् अपने अंगों को जलाये बिना लौटकर आ जाता है तथा दूसरे पतिंगे को दीपक की पहचान बताने लगता है, वास्तव में उसे पतिंगा

कहलाने का कोई अधिकार ही नहीं है।

जब मैं हुती विरह में, तब क्यों मुख बोल्यो जाए।

पर ए वचन तो तब कहे, जब लई पिया उठाए॥२१॥

मेरा हृदय भी जब अपने प्राणेश्वर के विरह में तड़प रहा था, तो उस समय मेरे मुख से कुछ भी कहा जाना सम्भव नहीं था। इस समय धाम धनी ने मुझे जाग्रत कर दिया है। इसलिये उनके निर्देश पर सुन्दरसाथ के आत्मिक लाभ के लिये ही विरह के सम्बन्ध में मैं थोड़ा सा प्रकाश डाल रही हूँ।

ज्यों ए विरहा उपज्या, ए नहीं हमारा धरम।

विरहिन कबहूँ ना करे, यों विरहा अनूकरम॥२२॥

हब्शा में जिस प्रकार मेरे अन्दर तामस का विरह उत्पन्न

हुआ, वैसा ही करना ब्रह्मसृष्टियों का कर्त्तव्य (धर्म) नहीं है। परमधाम की आत्माओं को कभी भी इस प्रकार के तामस के विरह का अनुसरण नहीं करना चाहिए।

भावार्थ- तामस के विरह में डूबे होने से श्री मिहिरराज जी का शरीर जर्जर होकर मात्र हड्डियों का ढाँचा रह गया था। इस प्रक्रिया का अनुसरण करने पर समाज में हठ की प्रवृत्ति बढ़ने से भटकाव का प्रारम्भ हो जायेगा। प्रियतम के साक्षात्कार के लिये यदि प्रेमपूर्वक सात्विक विरह का ही अनुसरण करें, तो अधिक उपयुक्त होगा।

विरहा नहीं ब्रह्मांड में, बिना सोहागिन नार।

सोहागिन आत्म पिउ की, वतन पार के पार॥२३॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त इस ब्रह्माण्ड में अन्य किसी के भी पास विरह नहीं होता है। ये प्रियतम

अक्षरातीत की आत्मायें हैं और इनका घर निराकार –
बेहद से परे परमधाम में है।

अब कहूं नेक अंकूर की, जाए कहिए सोहागिन।

सो विरहिन ब्रह्मांड में, हुती ना ऐते दिन॥२४॥

अब मैं परमधाम की उन आत्माओं के सम्बन्ध में थोड़ी
सी बात बता रही हूँ। इन्हें सुहागिन भी कहा जाता है।
आज दिन तक (व्रज के अतिरिक्त) इस ब्रह्माण्ड में
प्रियतम के विरह में तड़पने वाली ब्रह्मात्मायें नहीं आयीं
थीं।

सोई सुहागिन आइयां, खसम की विरहिन।

अंतरगत पिया पकरी, ना तो रहे ना तन॥२५॥

माया का खेल देखने के लिये परमधाम की अंगनायें इस

संसार में आयी हैं। इन्हें ही धाम धनी की विरहिणी कहा जाता है। इन्हें प्रियतम अक्षरातीत ने आन्तरिक रूप से सम्भाला होता है, अन्यथा पहचान होने के बाद धनी के विरह में ये अपना तन ही छोड़ देतीं।

ए सुध पिया मुझे दर्ई, अन्दर कियो प्रकास।

तो ए जाहेर होत है, जो गयो तिमर सब नास॥२६॥

प्रियतम प्राणनाथ ने मुझे विरह की सुधि दी और मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर तारतम ज्ञान का उजाला किया। इसके परिणाम स्वरूप मेरे हृदय से माया का अन्धकार समाप्त हो गया तथा धनी की प्रेरणा से परमधाम का यह अलौकिक ज्ञान अब प्रकट हो रहा है।

प्यारी पिया सोहागनी, सो जुबां कही न जाए।

पर हुआ जो मुझे हुकम, सो कैसे कर ढंपाए॥२७॥

ब्रह्मसृष्टियाँ धाम धनी को इतनी प्यारी हैं कि उसका वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता। धाम धनी का आदेश है कि मैं उसे उजागर करूँ। ऐसी स्थिति में मैं उसे कैसे छिपाये रख सकती हूँ?

अनेक करहीं बंदगी, अनेक विरहा लेत।

पर ए सुख तिन सुपने नहीं, जो हमको जगाए के देत॥२८॥

इस संसार में परमात्मा की भक्ति बहुत से लोग करते हैं। वे विरह की राह पर भी चलने का प्रयास करते हैं, किन्तु धाम धनी हमें जाग्रत करके जो सुख दे रहे हैं, वह उन्हें स्वप्न में भी प्राप्त नहीं हो सकता।

छलथें मोहे छुड़ाए के, कछू दियो विरहा संग।

सो भी विरहा छुड़ाइया, देकर अपनों अंग॥२९॥

प्रियतम अक्षरातीत ने पहले मुझे लौकिक प्रपञ्च रूपी माया से छुड़ाकर विरह के रस में कुछ डुबो दिया। पुनः अपना हृदय देकर, अर्थात् मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर, उन्होंने मुझे विरह से भी अलग कर दिया।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई का प्रसंग उस समय का है जब श्री मिहिरराज जी जाम राजा के मन्त्री के सचिव पद को सम्भाल रहे थे। उनको इस प्रपञ्च से मुक्त करने के लिये धाम धनी ने हब्शा में भिजवाया, जहाँ विरह में तड़प-तड़प कर उन्होंने अपने आराध्य प्रियतम को पा लिया।

यद्यपि अंग का अर्थ हृदय होता है, किन्तु यहाँ आवेश स्वरूप से आशय है। परमधाम में विराजमान श्री राज जी

का जो नूरमयी स्वरूप है, वह इस नश्वर जगत में नहीं आ सकता। ऐसी स्थिति में उनकी इच्छा शक्ति से प्रकट हुआ स्वरूप ही धाम धनी की भूमिका निभाता है, जिसे आवेश स्वरूप या हुक्म का स्वरूप कहते हैं। इसे ही उपरोक्त चौपाई में अंग कहा गया है।

अंग बुध आवेस देए के, कहे तूं प्यारी मुझ।

देने सुख सबन को, हुक्म करत हों तुझ॥३०॥

हब्शा में मेरे हृदय में जाग्रत बुद्धि तथा अपना आवेश देकर उन्होंने स्पष्ट कहा कि इन्द्रावती! तू मुझे बहुत ही प्यारी है। सब सुन्दरसाथ को जागनी लीला का सुख पहुँचाने के लिये मैं तुम्हे आदेश देता हूँ।

भावार्थ— अपनी आत्मा के धाम हृदय में श्री राजश्यामा जी की शोभा को बसा लेना ही आत्म-जाग्रति है। इस

कार्य को श्री महामति जी के तन द्वारा सम्पादित कराना ही उनके द्वारा सबको सुख देना है।

दुख पावत हैं सोहागनी, सो हम सहयो न जाए।

हम भी होसी जाहेर, पर तूं सोहागनियां जगाए॥३१॥

मायावी संसार में ब्रह्मसृष्टियाँ दुःखी हो रही हैं। उनका दुःखी होना मुझसे सहा नहीं जाता है। मैं संसार में अपनी गरिमा से प्रकट हो ही जाऊँगा, किन्तु तुम पहले परमधाम की आत्माओं को जाग्रत करो।

सिर ले आप खड़ी रहो, कहे तूं सब सैयन।

प्रकास होसी तुझ से, दृढ़ कर देखो मन॥३२॥

तू मेरे इस कथन को शिरोधार्य कर और जागनी कार्य में दृढ़तापूर्वक लग जा। सब सुन्दरसाथ को मेरी पहचान

कराओ। तुम अपने मन में दृढ़तापूर्वक इस बात पर विचार करके देख लो कि परमधाम के ज्ञान का प्रकाश तुझसे ही होना है।

तोसों न कछू अन्तर, तूं है सोहागिन नार।

सत सब्द के माने, तूं खोलसी पार द्वार॥३३॥

तू मेरी अर्धांगिनी है, इसलिये मुझमें और तुममें कोई भी अन्तर नहीं है। तू तारतम वाणी के प्रकाश में सभी धर्मग्रन्थों में परमधाम सम्बन्धी छिपे हुए रहस्यों को उजागर कर और निराकार-बेहद से परे परमधाम की पहचान करा।

जो कदी जाहेर न हुई, सो तुझे होसी सुध।

अब थें आद अनाद लों, जाहेर होसी निज बुध॥३४॥

अनादि काल से सृष्टि की उत्पत्ति और लय का चक्र चलता आ रहा है, किन्तु अब तक की किसी भी सृष्टि में मेरे धाम, स्वरूप, और लीला का ज्ञान अवतरित नहीं हुआ था। तारतम्य वाणी के रूप में यह ज्ञान तुम्हारे हृदय में प्रकट होगा और निज बुद्धि के प्रकाश में चारों ओर फैल जायेगा।

सब ए बातें सूझसी, कहूं अटके नहीं निरधार।

हुकम कारन कारज, पार के पारै पार॥३५॥

मेरे आदेश से ब्रह्मसृष्टियों को माया का खेल दिखाने के लिये अक्षर के मन से इस जगत की रचना हुई है। आत्माओं को जाग्रत करने के लिये निराकार-बेहद से परे परमधाम का सम्पूर्ण ज्ञान तुम्हारे ही अन्दर प्रकट होगा। निश्चित रूप से जागनी कार्य में कहीं भी तुझे

अटकना नहीं पड़ेगा।

चौदे तबक एक होएसी, सब हुकम के प्रताप।

ए सोभा होसी तुझे सोहागनी, जिन जुदी जाने आप॥३६॥

मेरे आदेश की शक्ति से चौदह लोकों का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक परब्रह्म की आराधना करने लगेगा। यह कार्य करने की शोभा तुझे ही मिलेगी। तू मुझसे अपने को अलग न समझ।

भावार्थ- श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर श्री राज जी ही अपने आदेश से सारी लीला कर रहे हैं, किन्तु शोभा श्री महामति (इन्द्रावती) जी को दे रहे हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड स्वप्न की बुद्धि से ग्रसित है। इसलिये इस संसार में सभी लोग एक परब्रह्म की भक्ति नहीं कर सकेंगे। एकेश्वरवाद की दुहाई देने वाले मुस्लिम

एवं क्रिश्चियन भी मजारों एवं यीशु की पूजा में लगे हुए हैं। पौराणिक हिन्दू तो मूर्तिपूजा एवं बहुदेववाद के अन्धकार में गहराई तक डूबा हुआ है। ऐसी स्थिति में महाप्रलय के समय को देखते हुए ऐसा नहीं लगता कि सारा संसार अक्षरातीत की भक्ति करने लगेगा। इतना अवश्य है कि आगामी संकटों (विश्व युद्ध या प्राकृतिक प्रकोप) के कारण संसार के अधिकतर लोग परब्रह्म की ओर उन्मुख हो सकते हैं, किन्तु योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही वे अद्वैतवाद को पूर्णरूप से स्वीकार करेंगे क्योंकि वहाँ जाग्रत बुद्धि का प्रकाश होगा।

जो कोई सब्द संसार में, अर्थ न लिए किन कब।

सो सब खातिर सोहागनी, तूं अर्थ करसी अब॥३७॥

संसार में जितने भी धर्मग्रन्थ हैं, उनके वास्तविक

रहस्यों को आज दिन तक किसी ने भी नहीं जाना था।
 इन्द्रावती! ब्रह्मसृष्टियों को जाग्रत करने के लिये अब तू
 सभी धर्मग्रन्थों (वेद, उपनिषद, दर्शन, कुरआन, इंजील,
 आदि) के गुह्य रहस्यों को प्रकट करेगी।

तू देख दिल विचार के, उड़ जासी सब असत।

सारों के सुख कारने, तू जाहेर हुई महामत॥३८॥

महामति! अपने हृदय में तू इस बात का अच्छी तरह से
 विचार करके देख ले। तुम्हारे तन से अवतरित होने वाले
 अनुपम ज्ञान से अज्ञानता का अन्धकार नष्ट हो जायेगा।
 तेरा इस संसार में अवतरण ही सबको (ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरी
 सृष्टि, एवं जीवसृष्टि) को सुख देने के लिये हुआ है।

भावार्थ— जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश का लाभ सभी को
 प्राप्त होता है, उसी प्रकार तारतम वाणी के दिव्य ज्ञान से

अपने-अपने अँकुर एवं आचरण के अनुसार तीनों सृष्टियों को सुख मिलेगा। ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम का सुख मिलेगा, तो ईश्वरीय सृष्टि को परमधाम की सुधि (पहचान) मिलेगी। जीव सृष्टि बेहद मण्डल की अखण्ड मुक्ति को प्राप्त करेगी।

पेहेले सुख सोहागनी, पीछे सुख संसार।

एक रस सब होएसी, घर घर सुख अपार॥३९॥

तारतम वाणी से परमधाम और अक्षरातीत की पहचान का सुख सबसे पहले ब्रह्मसृष्टियों को ही प्राप्त होगा। इसके पश्चात् संसार के लोगों को उसका लाभ मिलेगा। परमधाम के ज्ञान की शरण में आने वाले सभी एकरस हो जायेंगे। इस प्रकार उनके घरों में अपार सुख की क्रीड़ा होगी।

भावार्थ- श्री प्राणनाथ जी के साथ पन्ना जी पहुँचने वाले ५००० सुन्दरसाथ में ५०० ब्रह्मसृष्टि, १५०० ईश्वरीय सृष्टि, तथा ३००० जीव सृष्टि थी। उत्तम जीव भी ब्रह्मसृष्टियों की सान्निध्यता से तारतम ज्ञान को ग्रहण करके अवश्य सुख प्राप्त करेंगे, किन्तु सम्पूर्ण जीव सृष्टि योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही पूर्ण रूप से धाम धनी के चरणों में आयेगी। उपरोक्त चौपाई में दूसरे चरण का यही आशय है।

ए खेल किया जिन खातिर, सो तूं कहियो सोहागिन।

पेहेले खेल दिखाए के, पीछे मूल वतन॥४०॥

जिन ब्रह्मसृष्टियों को माया का खेल दिखाने के लिये यह संसार बनाया गया है, उनके पास जाकर तू तारतम ज्ञान का प्रकाश करना। पहले आत्माओं को माया का खेल

दिखाना है, तत्पश्चात् उन्हें परमधाम ले चलना है।

अंतर सैयों से जिन करे, जो सैयां हैं इन घर।

पीछे चौदे तबक में, जाहिर होसी आखिर॥४१॥

जो परमधाम की आत्मायें हैं, उनसे किसी भी प्रकार का तुम भेद या छिपाव नहीं करना। महाप्रलय के पश्चात् योगमाया के ब्रह्माण्ड में अन्ततोगत्वा यह वाणी तो उजागर हो ही जायेगी।

भावार्थ- सुन्दरसाथ से भेद न करने का तात्पर्य है— प्रान्त, वर्ग, रूप, कुल, धन, प्रतिष्ठा, आदि के आधार पर किसी भी प्रकार का भेद न करना। "अन्तर" शब्द का अर्थ छिपाव रखना भी होता है। इस प्रकार पहले चरण का आशय होगा सुन्दरसाथ से ज्ञान की कोई भी बात नहीं छिपाना।

वर्तमान समय में पृथ्वी लोक में ही तारतम वाणी का प्रकाश है, स्वर्ग-वैकुण्ठ में नहीं। इस आधार पर यही कहा जा सकता है कि सभी लोकों के प्राणी तारतम ज्ञान के प्रकाश को बेहद मण्डल में ही प्राप्त कर सकेंगे। पृथ्वी लोक के कुछ भागों में भी तारतम वाणी का फैल जाना चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में तारतम ज्ञान का प्रकट (जाहिर) होना है। जाहिर (प्रकट) होने तथा फैल जाने में अन्तर होता है। सीमित क्षेत्र में ज्ञान के होने को भी प्रकट होना माना जा सकता है, किन्तु फैलने का तात्पर्य है— सबके द्वारा ग्रहण कर लिया जाना।

तें कहे वचन मुख थें, होसी तिनथें प्रकास।

असत उड़सी तूल ज्यों, जासी तिमर सब नास॥४२॥

तुम्हारे मुख से जिस तारतम वाणी का अवतरण होगा,

उससे अखण्ड परमधाम के अलौकिक ज्ञान का प्रकाश इस प्रकार फैल जायेगा कि अज्ञानता का सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो जायेगा तथा झूठ आक (मदार) के फुए (रुई) के समान उड़ जायेगा अर्थात् नष्ट हो जायेगा।

भावार्थ- प्राणियों के हृदय में असत्य या अन्धकार निवास करता है। हृदय में तारतम ज्ञान का प्रकाश आते ही अज्ञान रूपी माया का अन्धकार अति सरलता से नष्ट हो जाता है, जिसे आक से फुए के उड़ने के दृष्टान्त से दर्शाया गया है।

तूं लीजे नीके माएने, तेरे मुख के बोल।

जो साख देवे तुझे आतमा, तो लीजे सिर कौल॥४३॥

मेरी वाणी तुम्हारे ही मुख से अवतरित होगी। तुम इसके अभिप्राय को अच्छी प्रकार से ग्रहण करना और तुम्हारी

अन्तरात्मा से जिस सत्य की साक्षी मिले, उसे मेरा ही कथन मानकर शिरोधार्य करना अर्थात् आचरण में उतारना।

खसम खड़ा है अंतर, जेती सोहागिन।

तू पूछ देख दिल अपना, कर कारज दृढ़ मन॥४४॥

इस खेल में जितनी ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, मैं (प्रियतम) उनके लिये अभी छिपा हुआ हूँ (पर्दे में हूँ)। महामति! तू अपने हृदय से पूछ कर देख कि क्या मैं ही तुम्हारे अन्दर विराजमान नहीं हूँ? मुझे अपने हृदय में विद्यमान मानकर, तू जागनी कार्य की सेवा के लिये मन से दृढ़ हो जा।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाई के प्रथम चरण में "अंतर" का तात्पर्य अन्दर (भीतर) से नहीं, अपितु गुह्य होने से है।

यद्यपि मूल सम्बन्ध से धाम धनी सभी आत्माओं से एक पल के लिये भी अलग नहीं हो सकते तथा उनके धाम हृदय में ही विराजमान हैं, किन्तु जब तक माया का आवरण रहता है, तब तक आत्माओं को उनकी अनुभूति नहीं हो पाती।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हब्शा की ही घटना है। वि.सं. १७१२ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के पश्चात् युगल स्वरूप श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान हो गये थे, किन्तु उन्हें इसकी अनुभूति नहीं थी। विरह की अग्नि में तप्त होने के पश्चात् वि.सं. १७१५ में उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन होता है तथा लीला रूप में उनके अन्दर विराजमान होने की बात कही जाती है। अन्य आत्माओं के साथ हब्शा जैसी घटना नहीं घटित होती। इसलिये माया के आवरण में होने के कारण प्रियतम को

उनसे दूर कहा गया है।

यदि यह संशय किया जाये कि इस प्रकार का कथन तो स्वप्न की बुद्धि के ज्ञानीजन भी किया करते हैं कि "य आत्मनि तिष्ठति अन्तरो यमात्मा न वेद", अर्थात् जो आत्मा के अन्दर विद्यमान है किन्तु जिसे आत्मा नहीं जानती। ऐसी स्थिति में तारतम ज्ञान की महत्ता ही क्या है?

इसका समाधान यह है कि तारतम ज्ञान के अवतरण से पूर्व जीव सृष्टि के द्वारा आदिनारायण , अव्याकृत, या अक्षर ब्रह्म को ही अक्षरातीत माना जाता है। जीव सृष्टि के हृदय में जिसका निवास होता है , उसे आधुनिक वेदान्त की भाषा में ईश्वर या शबल ब्रह्म कहते हैं। गीता में इसी तथ्य को "ईश्वरः सर्व भूतानां हृददेशे तिष्ठति अर्जुन" कहकर दर्शाया गया है। जीव ईश्वर या

आदिनारायण का सांकल्पिक-प्रतिबिम्बित चेतन है, इसलिये उसके हृदय में तो ईश्वर (आदिनारायण) का ही निवास होगा। किन्तु परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा के अन्दर आदिनारायण कहाँ से आ सकते हैं? उसमें तो अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य किसी को विद्यमान होने का अधिकार ही नहीं है।

आत्मा जब तक जीव के ऊपर विद्यमान होकर संसार की लीला को देखने में मग्न होती है, तब तक जीव भाव में खोये रहने से वह अपनी अन्तर्दृष्टि को खोल नहीं पाती तथा अपने धाम हृदय में अखण्ड रूप से विराजमान अक्षरातीत को भी नहीं देख पाती। इसे ही नींद, फरामोशी, या भुलवनी की लीला कहते हैं। किन्तु तारतम वाणी के प्रकाश में धनी के विरह-प्रेम का मार्ग अपनाकर वह माया से परे हो जाती है तथा अपने

प्राणवल्लभ का साक्षात् दर्शन कर लेती है। अन्यथा उसमें और धाम धनी में पल भर का भी वियोग न तो कभी हुआ है और न कभी हो सकेगा?

आप खसम अजूं गोप है, आगे होत प्रकास।

उदया सूर छिपे नहीं, गयो तिमर सब नास॥४५॥

यद्यपि इस समय प्रियतम मेरे धाम हृदय में गुह्य रूप से (छिपे रहकर) लीला कर रहे हैं, किन्तु आने वाले समय में वे स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष हो जायेंगे। जब रात्रि के अन्धेरे में सूर्य उग जाता है, तो भला वह छिपकर अधिक समय तक कैसे रह सकता है, कदापि नहीं ? प्रियतम के प्रकट हो जाने पर तो अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश होना अवश्यम्भावी है।

प्रकरण ॥९॥ चौपाई ॥२०४॥

राग श्री

इस प्रकरण में तारतम ज्ञान की महत्ता को दर्शाया गया है।

सत असत पटंतरो, जैसे दिन और रात।

सत सूरज सब देखहीं, जब प्रगट भयो प्रभात॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि सत्य और झूठ में दिन तथा रात्रि के समान अन्तर है। जब निज बुद्धि के ज्ञान से अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश होकर ज्ञान का सवेरा हो जायेगा, तो सभी को उस सत्य के सूर्य परब्रह्म की पहचान हो जायेगी।

जोलों पिउ परदे मिने, विस्व विगूती तब।

सो परदा अब खोलिया, एक रस होसी अब॥२॥

जब तक संसार को प्रियतम अक्षरातीत की पहचान नहीं थी, तब तक सभी लोग अज्ञानता के अन्धकार में भटक रहे थे। अब स्वयं धाम धनी ने तारतम ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानता के उस आवरण को हटा दिया है। अब सारा संसार एकरस हो जायेगा, अर्थात् सबको एक सच्चिदानन्द परब्रह्म अक्षरातीत की पहचान हो जायेगी।

जोलों जाहिर ना हुते, तब इत उपज्या क्रोध।

जब प्रगटे तब मिट गया, सब दुनियां को ब्रोध॥३॥

जब तक अक्षरातीत संसार में प्रकट नहीं हुये थे, तब तक आपसी खींचतान का साम्राज्य छाया हुआ था। उनके प्रकट होने पर सारी दुनिया का पारस्परिक विरोध समाप्त हो गया है।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाई का कथन अतिशयोक्ति

अलंकार की भाषा में व्यक्त किया गया है। वैचारिक मत-भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न पन्थों के अनुयायियों में क्रोध और विरोध की ज्वाला धधकती रहती है। तारतम ज्ञान के प्रकाश में जब सबको एक परम सत्य का बोध हो जाता है, तो वे पारस्परिक विरोध एवं क्रोध की भावना का परित्याग कर देते हैं और इस मानसिकता से बँध जाते हैं कि हम परमधाम से आये हैं। इसलिये हमें आपस में प्रेम का ही व्यवहार करना चाहिये, भले ही हम अब तक लड़ते ही क्यों न रहे हों। जहाँ पर तारतम ज्ञान का प्रकाश नहीं फैला है, वहाँ पर भिन्न-भिन्न मत-पन्थों में आज भी घृणा और संघर्ष की स्थिति बनी हुयी है।

ए प्रकास खसम का, सो कैसे कर ढंपाए।

छल बल वल जो उलटे, सो देवे सब उड़ाए॥४॥

तारतम ज्ञान का प्रकाश स्वयं श्री राज जी का है, इसलिये इसे किसी भी प्रकार से ढाँपा नहीं जा सकता। इस छल रूपी माया की आकर्षण शक्ति का बल इतना अधिक है कि यह जीव को विषय-भोगों की तरफ उल्टी दिशा में मोड़ देता है। तारतम ज्ञान का प्रकाश माया के उस बल को पूर्णतः नष्ट कर देता है।

दुनियां टेढ़ी मूल की, सो पेड़ से निकालूं वल।

पिया प्रकास जो खिन में, सीधा करूं मंडल॥५॥

यह सारा संसार प्रारम्भ से ही टेढ़ा है अर्थात् इस संसार की उत्पत्ति मोहतत्व से हुयी है, जिसके कारण जीव की स्वाभाविक प्रवृत्ति मायावी विषयों में फँसने की होती है। तारतम ज्ञान के प्रकाश में माया की इस शक्ति को मैं जड़ से नष्ट कर देना चाहती हूँ। मैं अपने प्राणवल्लभ की

तारतम वाणी की छत्रछाया में एक क्षण में सारे संसार को सच्चे मार्ग पर चलने की प्रेरणा देना चाहती हूँ।

सत जो ढांप्या ना रहे, उड़ाय दियो अंधेर।

नूर पिया पसरे बिना, क्यों मिटे दुनियां फेर॥६॥

तारतम ज्ञान पूर्ण सत्य है। इसको ढाँप कर (छिपाकर) नहीं रखा जा सकता। यह धाम धनी के हृदय से प्रकट होने वाला अखण्ड ज्ञान है। जब तक इसका प्रकाश चारों ओर नहीं फैलता है, तब तक संसार के लोगों का आवागमन का चक्र समाप्त नहीं हो सकता।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाई का यही सन्देश है कि तारतम वाणी की उपस्थिति में भागवत आदि ग्रन्थों की महिमा गाना अनुचित है।

अब अंधेर कछू ना रहया, जाहेर हुआ उजास।

तबक चौदे खसम का, प्रगट भया प्रकास॥७॥

अब चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में प्रियतम के तारतम ज्ञान का उजाला फैल रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप अब आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में थोड़ी सी भी अज्ञानता का अन्धकार नहीं रहने पायेगा।

जोलों तिमर ना उड़े, तोलों सृष्ट न होवे एक।

तिमर तीनों लोक का, उड़ाए दिया उठ देख॥८॥

जब तक अज्ञानता का अन्धकार नष्ट नहीं होगा, तब तक संसार के लोग सच्चे मार्ग से एक परब्रह्म की आराधना नहीं कर सकेंगे। मेरी आत्मा! अब तू सावधान होकर देख कि प्रियतम प्राणनाथ ने तीनों लोकों की अज्ञानता का अन्धकार नष्ट कर दिया है।

भावार्थ- इस चौपाई के कथन से यह संशय उत्पन्न होता है कि वर्तमान समय में जब सुन्दरसाथ की संख्या एक करोड़ से भी कम है, तो अरबों की जनसंख्या वाली इस पृथ्वी से परे अन्य लोकों (स्वर्ग, वैकुण्ठ) की अज्ञानता कैसे मिटी हुई कही गयी है?

इसका समाधान यह है कि उपरोक्त चौपाई में यह नहीं कहा गया है कि सभी लोगों ने इस ज्ञान को स्वीकार कर लिया है, बल्कि यह बताया गया है कि आध्यात्मिक ज्ञान की ऐसी कोई भी गुत्थी नहीं है, जिसे तारतम ज्ञान के प्रकाश में सुलझाया न जा सके। पुराण संहिता के अध्याय ८-१० में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश्वर, तथा सदाशिव की आध्यात्मिक ज्ञान के सम्बन्ध में चर्चा है, जिसका अवलोकन करने पर यही सिद्ध होता है कि ये पाँचों देवता जिस सत्य का पूर्ण अनुभव नहीं कर पाये,

उसका साक्षात्कार तारतम वाणी के प्रकाश में अनायास ही हो जाता है।

सम्पूर्ण जगत के एकरस होने का तात्पर्य यह है कि संसार के सभी मत-पन्थों के लोग भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों, मजारों, आदि की पूजा को छोड़कर अनन्य परा प्रेम लक्षणा भक्ति के द्वारा एक सच्चिदानन्द परब्रह्म की ही आराधना करें, अन्य किसी की नहीं।

ए प्रकास है अति बड़ा, सो राखत हों अजुं गोप।

जिन कोई ना सहे सके, ताथें हलके करुं उद्योत॥९॥

तारतम वाणी का प्रकाश इतना अधिक गरिमामयी है कि मुझे इसे अभी छिपाकर रखना पड़ रहा है। मैं इसे धीरे-धीरे ही प्रकाश में ला रही हूँ, जिससे इसे ग्रहण करने में

किसी को कठिनाई न हो।

भावार्थ- अध्यात्म के उच्च स्तरीय भावों को एकसाथ ग्रहण कर पाना सामान्य जन के लिये सम्भव नहीं होता। इसलिये उसे धीरे-धीरे ही बताना उचित होता है।

ए जो सब्द खसम के, जिन तुम समझो और।

आद करके अबलों, किन कहया ना पिया ठौर॥१०॥

हे साथ जी! तारतम वाणी के शब्द प्रियतम अक्षरातीत के द्वारा ही कहे गये हैं। इन्हें आप किसी और का कहा हुआ न मान लीजिए। इस संसार में प्रारम्भ से लेकर आज दिन तक किसी ने भी यह नहीं बताया है कि परब्रह्म कहाँ है?

भावार्थ- हृद (स्थूल लोक तथा निराकार) से परे का ज्ञान न होने के कारण प्रायः सभी ज्ञानीजनों ने इस सृष्टि

के कण-कण में ही परब्रह्म का स्वरूप मान लिया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि यदि परब्रह्म का अखण्ड स्वरूप इस सृष्टि के कण-कण में है, तो वेद ने "आदित्य वर्णः तमसस्परस्तात्" क्यों कहा?

ए अकथ केहेनी खसम की, काहूँ ना कथियल कोए।
जो किनका कथियल कहूँ, तो पिया वतन सुध क्यों होए॥११॥

तारतम वाणी के रूप में प्रियतम प्राणनाथ के द्वारा कहा गया वह अलौकिक ज्ञान विद्यमान है, जिसे इस सृष्टि में आज दिन तक किसी ने भी नहीं कहा है। यदि मैं किसी अन्य के द्वारा कहे गये, अर्थात् वर्तमान समय में उपलब्ध, धर्मग्रन्थों से किसी को प्रबोधित करना चाहूँ, तो उसे अखण्ड परमधाम की पहचान कैसे हो सकती है?

भावार्थ- वेद, उपनिषद, पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, तथा कुरआन में बेहद और परमधाम का सांकेतिक वर्णन अवश्य है, किन्तु उसे तारतम ज्ञान के प्रकाश में ही जाना जा सकता है। तारतम ज्ञान से रहित बड़े-बड़े विद्वान भी परब्रह्म के धाम एवं स्वरूप के सम्बन्ध में यथार्थ निर्णय नहीं कर पाते हैं।

केतेक ठौरों सोहागनी, तिन सब ठौरों उजास।

पर जब इत थें जोत पसरी, तब ओ ले उठसी प्रकास॥१२॥

इस संसार में कुछ ही स्थानों पर परमधाम की आत्मायें आयी हुई हैं। उन सब स्थानों में उनके द्वारा ज्ञान का प्रकाश अवश्य फैलेगा। जब मेरे धाम हृदय से अवतरित ब्रह्मवाणी का प्रकाश फैलेगा, तो उन स्थानों में विद्यमान आत्मायें इसको आत्मसात् करेंगी और चारों ओर

फैलायेंगी।

कोई दिन राखत हों गुझ, सो भी सैयों के सुख काज।

जब सैयां सबे मिलीं, तब रहे ना पकरयो अवाज॥१३॥

ब्रह्मसृष्टियों के सुख के लिये ही मैंने इस ज्ञान को अभी कुछ दिनों के लिये छिपा कर रखा है। जब सभी आत्मायें जाग्रत हो जायेंगी, तब इसकी सम्मोहित करने वाली ध्वनि को रोका नहीं जा सकता।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में कथित "कोई दिन" का आशय है- छठें दिन की लीला के अन्तिम चरण के कुछ पहले तक। तीसरे चरण में सभी सखियों के जाग्रत होने का उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि श्री महामति जी के तन द्वारा सभी आत्माओं की जागनी नहीं हो पायी। कलश गुजराती का अवतरण सूरत में

वि.सं. १७२८ में हुआ था तथा कलश हिन्दुस्तानी का अवतरण वि.सं. १७३६ में अनूपशहर में हुआ। जब श्री प्राणनाथ जी पन्ना पहुँचे, उस समय उनके साथ ५००० सुन्दरसाथ की संख्या में मात्र ५०० ब्रह्मसृष्टियाँ थीं। "पांच सौ जुलजुलाटहू, संग रसूल के इत" कियामतनामा का कथन यही सिद्ध करता है कि जागनी लीला के अन्तिम चरण में तारतम वाणी का प्रकाश तेजी से फैलेगा और सभी आत्मायें जाग्रत होंगी। आज संसार में भागवत, रामायण, कुरआन, तथा बाईबल आदि का अत्यधिक प्रचार है और तारतम वाणी का कम। इसको छिपाये रखने के निम्नलिखित कारण हैं—

१— केवल ब्रह्मसृष्टियों, ईश्वरीय सृष्टियों, एवं उत्तम जीवों को ही अखण्ड धाम का विशेष आनन्द मिले।

२— जीव सृष्टि की संख्या अधिक हो जाने से उनका

वर्चस्व हो जायेगा। परिणामस्वरूप वे कर्मकाण्ड (शरीयत) को ही बढ़ावा देंगी, क्योंकि उनसे ज्ञान – विज्ञान (हकीकत, मारिफत) की राह पर नहीं चला जाता।

३ – छठे दिन की लीला में अलग – अलग ब्रह्मात्माओं को जागनी की विशेष शोभा देनी है और उनके प्रेम की परीक्षा लेनी है।

४ – उन्हें माया का अधिक से अधिक खेल दिखाकर उनकी हँसी करनी है।

यही कारण है कि धाम धनी के द्वारा माया का खेल बढ़ाया गया है तथा तारतम वाणी का प्रकाश फैलने से रोका गया है।

क्यों रहे प्रकास पकरयो, एह जोत अति जोर।

जब सब उजाला इत आईया, तब गई रैन भयो भोर॥१४॥

तारतम वाणी की ज्योति बहुत ही प्रचण्ड है। कोई भी इसके प्रकाश को फैलने से रोक नहीं सकता। जब मेरे धाम हृदय में सभी धर्मग्रन्थों (वेद-कतेब) के सार तत्त्व के साथ परमधाम का भी ज्ञान तारतम वाणी के रूप में अवतरित हो गया है, तो यही कहा जा सकता है कि अब स्वप्न की बुद्धि से उत्पन्न ग्रन्थों से परमधाम का मार्ग ढूँढने की आवश्यकता नहीं है, अपितु अज्ञानता की रात्रि बीत गयी है और प्रातःकाल (सवेरा) हो गया है।

मैं अबला अरधांग हों, पिउ की प्यारी नार।

सब जगाऊं सोहागनी, तो मुझे होए करार॥१५॥

मैं श्री राज जी की प्रिया हूँ, अर्धांगिनी हूँ, प्राणेश्वरी हूँ।

मुझे वास्तविक आनन्द तभी मिलेगा, जब मैं अन्य सभी आत्माओं को जगा लूँ।

भावार्थ- छठे दिन की लीला में भिन्न-भिन्न परमहंसों के द्वारा जो भी जागनी होगी, वह श्री महामति जी की छत्रछाया में ही होगी क्योंकि धाम धनी ने महामति जी को अपनी शोभा के साथ जागनी की सारी शोभा दे रखी है। यह कथन इसी कलश ग्रन्थ २३/६८ से सिद्ध होता है—

सुख देऊ सुख लेऊ, सुखें जगाऊं साथ।

इन्द्रावती को उपमा, मैं दई मेरे हाथ॥

सैयों को वतन देखावने, उलसत मेरे अंग।

करने बात खसम की, मावत नहीं उमंग॥१६॥

ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम की पहचान कराने में मुझे बहुत

अधिक प्रसन्नता का अनुभव होता है। जब मुझे अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की चर्चा करनी होती है, तो मेरे अन्दर बहुत अधिक उत्साह होता है।

नए नए रंग सोहागनी, आवत हैं सिरदार।

खेल जो होसी जागनी, नाहीं इन सुख को पार॥१७॥

परमधाम की प्रमुख ब्रह्मसृष्टियाँ नये-नये घटनाक्रमों से होकर धाम धनी के चरणों में आ रही हैं। अब जो जागनी लीला होने वाली है, उसमें इतना अधिक सुख होगा कि कोई उसकी सीमा ही नहीं बता सकता।

भावार्थ- ठड्डानगर में चिन्तामणि जी तथा लालदास जी, मस्कत बन्दर तथा अब्बासी बन्दर में महाव जी भाई और भैरव सेठ की जागनी विभिन्न घटनाक्रमों में हुई। पद्मावतीपुरी धाम में १० वर्षों के लिए होने वाली जागनी

लीला में परमधाम के सुखों की वर्षा हुई। उपरोक्त चौपाई में उसी की ओर संकेत है।

जो पिउ प्यारी आवत, ताको गुझ राखों उजास।

बाट देखों और सैन की, सब मिल होसी विलास॥१८॥

इस समय मेरे पास जो धाम धनी की अंगनायें आ रही हैं, उनसे अभी परमधाम का गुह्य ज्ञान (खिल्वत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार) छिपाये रखूँगी। अभी मैं अन्य सखियों (शाकुण्डल आदि) की बाट देख रही हूँ। जब वे मेरे पास आ जायेंगी, तो सबके साथ परमधाम की आनन्दमयी लीला होगी।

ए उजास इन भांत का, जो कबूं निकसी किरन।

तो पसरसी एक पल में, चारों तरफों सब धरन॥१९॥

परमधाम के अनुपम ज्ञान का प्रकाश ऐसा है कि यदि उसकी एक किरण भी मेरे हृदय से संसार में प्रकट हो गयी, तो एक ही पल में सम्पूर्ण धरती पर चारों ओर फैल जायेगी।

भावार्थ- लगभग सभी मतों में परमधाम की किसी न किसी रूप में कल्पना अवश्य है, किन्तु तारतम ज्ञान के अभाव में किसी को उसकी स्पष्ट पहचान नहीं है। जब परमधाम के ज्ञान का संसार में प्रचार किया जायेगा, तो संसार के लोग उसे बहुत तेजी से ग्रहण करेंगे। इसे ही आलंकारिक भाषा में एक पल में सारे संसार में फैल जाना कहते हैं। दूसरे शब्दों में, परमधाम का ज्ञान नारायण (विष्णु) को मिलते ही इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणियों को पल भर में प्राप्त हो जायेगा।

बात बड़ी इन खसम की, सो क्यों कर ढापूं अब।

सुख लेने को या समें, पीछे दुनियां मिलसी सब॥२०॥

प्रियतम अक्षरातीत की महिमा अपार है। इसे अब मैं कैसे छिपने दूँ? इसे तो तारतम वाणी के द्वारा संसार में फैलाना ही होगा। अपनी आत्मा को जाग्रत कर परमधाम का सुख लेने का यही उचित समय है। बाद में (योगमाया के ब्रह्माण्ड में) तो सारा संसार ही इसे ग्रहण कर लेगा।

ए प्रकास जो पिउ का, टाले अंदर का फेर।

याही सब्द के सोर से, उड़ जासी सब अंधेर॥२१॥

श्रीमुखवाणी के ज्ञान का प्रकाश मन के सभी संशयों को नष्ट कर देता है। इस ब्रह्मवाणी के अत्यधिक प्रचार से आध्यात्मिक क्षेत्र में फैला हुआ अज्ञान रूपी सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो जायेगा।

और बेर अब कछू नहीं, गयो तिमर सब नास।

होसी सब में आनंद, चौदे तबक प्रकास॥२२॥

तारतम वाणी के प्रकाश में अज्ञानता का अन्धकार नष्ट हो गया है, इसलिये जागनी लीला के विस्तार में अब जरा भी देर नहीं है। यह तो निश्चित है कि चौदह लोकों वाले इस ब्रह्माण्ड में तारतम ज्ञान का प्रकाश फैलेगा तथा सबको परमधाम के आनन्द का रसास्वादन करने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त होगा।

भावार्थ- पृथ्वी लोक के अन्दर ज्ञान का प्रकाश फैलने की घटना को चौदह लोकों से जोड़ने की बात अतिशयोक्ति अलंकार में कही गयी है। १४ लोकों का एक भाग होने के कारण भी इस तरह की बात कहना स्वाभाविक ही है। मात्र सातवें दिन की लीला में ही सम्पूर्ण बेहद मण्डल में तारतम ज्ञान का प्रकाश फैलेगा।

प्रकरण ॥१०॥ चौपाई ॥२२६॥

सोहागनियों के लछन

इस प्रकरण में यह दर्शाया गया है कि ब्रह्मसृष्टियों की पहचान क्या है।

पार वतन जो सोहागनी, ताकी नेक कहूं पेहेचान।

जो कदी भूली वतन, तो भी नजर तहां निदान॥१॥

निराकार-बेहद से परे परमधाम की जो आत्मायें हैं, उनकी मैं थोड़ी सी पहचान बताती हूँ। कदाचित् वह परमधाम को भूल गयी होती हैं, तो भी उनकी अन्तर्दृष्टि परमधाम की ओर ही केन्द्रित होती है।

भावार्थ- आत्मा जब जीव पर बैठकर खेल को देख रही होती है, तो जीव भाव को ग्रहण कर वह अपने मूल स्वरूप और मूल घर को भूल जाती है। वह अन्य जीवों की देखा-देखी देवी-देवताओं की भले ही पूजा करने लगती हो तथा स्वर्ग, वैकुण्ठ, या निराकार को अपना घर मानने लगती हो, परन्तु उसके हृदय से यह पुकार आती रहती है कि न तो यह तुम्हारा घर है और न ये तुम्हारे प्रियतम हैं।

आसिक प्यारी पिउ की, कोई प्रेम कहो विरहिन।

ताए कोई दरदन कहो, ए लछन सोहागिन॥२॥

ब्रह्मसृष्टियाँ प्रियतम अक्षरातीत की प्यारी अंगनायें होती हैं। ये धाम धनी से प्रेम करती हैं। इन्हें प्रेमी या विरहिणी भी कहते हैं। इनके हृदय में हमेशा ही प्रियतम के प्रेम का

मीठा दर्द (मधुर पीड़ा) बना रहता है। परमधाम की ब्रह्मात्माओं के ये मुख्य लक्षण हैं।

रूह खसम की क्यों रहे, आप अपने अंग बिन।

पर पकरी पिया ने अंतर, नातो रहे ना तन॥३॥

अक्षरातीत की अंगनायें उनकी अंगरूपा हैं, इसलिये वे अपने प्राणवल्लभ के बिना कैसे रह सकती हैं? प्रियतम ने आन्तरिक रूप से उन्हें सम्भाला होता है, अन्यथा धनी की पहचान हो जाने पर वे उनके विरह में अपना तन ही छोड़ देतीं।

ऊपर काहूँ ना देखावहीं, जो दम ना ले सके खिन।

सो प्यारी जाने या पिया, या विध अनेक लछन॥४॥

ये आत्मायें पल भर के लिये भी प्रियतम का विरह सहन

नहीं कर पाती हैं और अपने तन को छोड़ देने की इच्छा करती हैं, किन्तु बाह्य रूप से कभी भी अपने विरह-प्रेम का प्रदर्शन नहीं करतीं। उनके विरह-प्रेम को या तो स्वयं वे ही जानती हैं या उनके प्राणनाथ। अन्य किसी तीसरे व्यक्ति को उनके प्रेम की जरा भी जानकारी नहीं होती। इस प्रकार ब्रह्मात्माओं के अनेक लक्षण होते हैं।

आकीन ना छूटे सोहागनी, जो परे अनेक विघन।

प्यारी पिउ के कारने, जीव को ना करे जतन॥५॥

इस मायावी जगत में भले ही कितने भी कष्ट क्यों न आ जायें, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों का अपने धाम धनी पर अटूट विश्वास बना ही रहता है। अपने प्रियतम के लिये ब्रह्मात्मायें अपने जीव के तन को त्यागने या किसी भी प्रकार का कष्ट सहने में कोई भी संकोच नहीं करती हैं।

रेहेवे निरगुन होए के, और आहार भी निरगुन।

साफ दिल सोहागनी, कबहूँ ना दुखावे किन॥६॥

परमधाम की आत्मायें मोहित करने वाले लौकिक विषय सुखों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध) के भोग से सर्वथा रहित होती हैं और उनका आहार भी अत्यन्त सात्विक होता है। उनका हृदय अत्यन्त निर्मल होता है तथा वे मन, वाणी, एवं कर्म से किसी भी हृदय को दुःखी नहीं करती हैं।

भावार्थ- त्रिगुणातीत प्रेम मार्ग का अनुसरण करने के लिए सात्विक स्वभाव का होना अनिवार्य है। इसके लिये भोजन भी सात्विक होना चाहिये क्योंकि "आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः" अर्थात् आहार के शुद्ध होने पर ही बुद्धि शुद्ध होती है। बुद्धि के अनुसार ही चित्त के संस्कार (सात्विक, राजस, एवं तामस) उभरते हैं और उन्हीं के

निर्देश पर अन्न अपना कार्य करता है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि बिना आहार शुद्धि के अध्यात्म के पवित्र मार्ग पर नहीं चला जा सकता। राजसिक और तामसिक आहार का सेवन मनुष्य की बुद्धि को मलिन करके अपने अनुकूल बना लेता है, जिससे जीव का उत्तरोत्तर पतन होने लगता है। गीता अ. १७ श्लोक ८, ९, १० में सात्विक, राजसी, एवं तामसी भोजन का वर्णन किया गया है—

आयु, सत्व, बल, आरोग्य, सुख, तथा रसास्वादन की शक्ति बढ़ाने वाले, रस युक्त, चिकने, स्थिरता प्रदान करने वाले, हृदय शक्तिवर्धक आहार सात्विक लोगों को प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे, अत्यधिक नमकीन, बहुत गरम, तीक्ष्ण, रूखे, और जलन पैदा करने वाले आहार रजोगुणी लोगों का प्रिय होते हैं। ये आहार दुःख, शोक,

तथा रोग को देने वाले होते हैं। जो सारहीन, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी, जूठा, और अपवित्र भोजन है, वह तामसिक स्वभाव वालों को प्रिय लगता है। मात्रा से अधिक सात्विक भोजन भी राजसिक और तामसिक हो जाता है।

ओ खोजे अपने आप को, और खोजे अपनो घर।

और खोजे अपने खसम को, और खोजे दिन आखिर॥७॥

वह चिन्तन, स्वाध्याय, तथा प्रेममयी साधना के द्वारा अपने निज स्वरूप, अपने मूल घर, एवं अपने प्राणवल्लभ की खोज में लगी ही रहती है। उसे इस बात की भी खोज रहती है कि वह मनोहर घड़ी कब आयेगी जब इस संसार का समापन (प्रलय) होगा तथा इसे छोड़कर वह अपने अखण्ड घर (परमधाम) जायेगी?

खोज सोहागिन ना थके, जोलों पार के पारै पार।

नित खोजे चरनी चढ़े, नए नए करे विचार॥८॥

ब्रह्मसृष्टि जब तक निराकार के परे बेहद, अक्षर, तथा उससे भी परे अपने प्रियतम अक्षरातीत की खोज नहीं कर लेती, तब तक वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति में लगी ही रहती है और कभी थकती भी नहीं है। वह नित्य ही नये-नये विचारों के द्वारा चिन्तन करती है तथा खोज की एक-एक सीढ़ी चढ़कर आगे बढ़ती ही जाती है।

खोज खोज और खोजहीं, आद के आद अनाद।

पल पल सब्द प्रकास हीं, श्रवणों एही स्वाद॥९॥

परमधाम की आत्मायें इस सृष्टि तथा इसको बनाने वाले आदिनारायण, और इनसे परे बेहद, अक्षर, एवं अक्षरातीत की खोज में निरन्तर लगी रहती हैं। उनके

हृदय में सत्य ज्ञान का पल-पल प्रकाश होता है और वे अपने कानों से सत्य ज्ञान को सुनकर आनन्दित होती हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के दूसरे चरण में "आदि के आद" का तात्पर्य इस सृष्टि और आदिनारायण से है, अक्षरब्रह्म से नहीं, क्योंकि वे अनादि तत्त्व हैं।

सोहागिन तोलों खोज हीं, जोलों पाइए पिउ वतन।

पिउ वतन पाए बिना, विरहा न जाए निसदिन॥१०॥

परमधाम की आत्मा तब तक खोज में लगी रहती है, जब तक उसे अपने प्रियतम तथा परमधाम का साक्षात्कार नहीं हो जाता। जब तक वह अपने प्राणवल्लभ और मूल घर का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर लेती है, तब तक उसके अन्दर विरह का प्रभाव निरन्तर बना ही

रहता है।

ओतो आगे अंदर उजली, खिन खिन होत उजास।

देह भरोसा ना करे, पिया मिलन की आस॥११॥

परात्म की सुरता (दृष्टि) होने के कारण आत्मा पहले से ही आन्तरिक रूप से निर्मल होती है। प्रियतम के विरह में डूबे रहने से उसके हृदय से माया का अन्धकार पल-पल हटता जाता है और ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है। उसे अपने प्राणवल्लभ से मिलने की इतनी तीव्र चाहत होती है कि वह अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति में अपने शरीर के जर्जर होने आदि की भी चिन्ता नहीं करती।

विचार विचार विचारहीं, बेधे सकल संधान।

रोम रोम ताए भेदहीं, सब सब्द के बान॥१२॥

ब्रह्मज्ञान के शब्द रूपी बाणों के सम्बन्ध में जब वह बार-बार विचार करती है, तो वे उसके सभी अंगों की सन्धियों में प्रवेश करके विरह की पीड़ा देते हैं। शब्द रूपी बाण उसके शरीर के रोम-रोम को बींध देते हैं, अर्थात् वह ब्रह्मज्ञान के प्रत्येक अंश को अपने अन्दर आत्मसात् कर लेती है।

पार वतन के सब्द, अंग में जो निकसे फूट।

गलित गात सब भीगल, पिया सब्दें होए टूक टूक॥१३॥

जब वह बेहद से परे परमधाम और धाम धनी के विषय में कोई भी शब्द सुनती है, तो अपने प्राणेश्वर पर न्यौछावर होने के लिये तत्पर हो जाती है। प्रियतम के शब्द उसके अंग-अंग से फूटकर निकलने लगते हैं। वह भाव विह्वल होकर गलितगात हो जाती है और प्रेम के

आँसुओं से वस्त्राभूषणों सहित उसके शरीर के सभी अंग भीग जाते हैं।

खिन खेले खिन में हंसे, खिन में गावे गीत।

खिन रोवे सुध ना रहे, ए सोहागिन की रीत॥१४॥

परमधाम की ब्रह्मात्माओं की यही पहचान है कि वह एक क्षण में खेलने लगती हैं, तो दूसरे क्षण में हँसने लगती हैं और प्रियतम के प्रेम भरे गीत गाने लगती हैं। किन्तु अगले ही क्षण ऐसा भी देखने में आता है कि वह इतना रोती हैं कि उन्हें अपनी जरा भी सुधि नहीं रहती।

भावार्थ— प्रेम की गहन भावदशा में संसार, लोक परम्परा, मर्यादा, एवं अपनी सुख-सुविधा का नाममात्र भी ध्यान नहीं रहता। उनका हँसना-रोना या गाना स्वाभाविक होता है। उन्हें यह पता ही नहीं चलता कि वे

क्या कर रही हैं?

पिउ बातें खेलें हंसे, गीत पिया के गाए।

रोवें उरझे पिउ की, बातनसों मुरछाए॥१५॥

भावदशा में इतनी डूब जाती हैं कि प्रियतम की बातें सुनकर कभी खेलने लगती हैं और कभी उनके प्रेम भरे गीत गाकर हँसने लगती हैं। कभी प्रियतम के धाम, स्वरूप, एवं लीला सम्बन्धी बातें सुनकर रोने लग जाती हैं, तो कभी भाव विह्वल होकर मूर्च्छित भी हो जाती हैं।

विशेष- ये लक्षण ब्रह्मात्माओं में उनके स्वाभाविक विरह-प्रेम से प्रकट होते हैं। इन लक्षणों का अभिनय करने मात्र से कोई व्यक्ति ब्रह्मसृष्टि नहीं बन सकता।

सोहागिन विरहा ना सहे, जब जाहेर हुए पिउ।

सोहागिन अंग जो पिउ की, पिउ सोहागिन अंग जिउ॥१६॥

तारतम वाणी के प्रकाश में जब धाम धनी की पहचान हो जाती है, तो ब्रह्मसृष्टियाँ उनका विरह सहन नहीं कर पाती हैं, क्योंकि वे प्रियतम की अंगरूपा हैं और प्रियतम ही उनके जीवन के आधार हैं।

जोलों पिउ सुध ना हुती, सोहागिन अंग में पिउ।

जब पिया जाहेर हुए, तब ले खड़ी अंग जिउ॥१७॥

जब प्रियतम की सुधि भी नहीं थी, तब भी प्रियतम सुहागिन (श्री इन्द्रावती जी) के अन्दर ही थे। जब प्रियतम की पहचान हो गयी, तब वह भी अपने जीव के साथ उनसे मिलने के लिये तत्पर हो गयी।

भावार्थ- वि.सं. १७१२ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी

के अन्तर्धान के पश्चात् तत्क्षण युगल स्वरूप श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान हो गये थे, किन्तु इस बात का उन्हें बोध नहीं था। वि.सं. १७१५ में उन्हें हब्शे में इसकी वास्तविकता का पता चला। परम सत्य (मारिफत) की दृष्टि से यदि देखा जाये, तो धाम धनी प्रत्येक आत्मा के धाम हृदय में अखण्ड रूप से सर्वदा ही विराजमान रहते हैं, किन्तु माया के आवरण के कारण वह उनकी पहचान नहीं कर पाती है। जब श्यामा जी प्रियतम की खोज में थी, तब भी वे उनके अन्दर ही विराजमान थे, किन्तु उन्हें बोध नहीं था। लीला रूप में अवश्य श्री राज जी वि.सं. १६७८ में उनके धाम हृदय में विराजमान हुए, किन्तु मारिफत की दृष्टि से उनके अन्दर भी पहले से विद्यमान थे। "अर्स तुम्हारा मेरा दिल है, इत आए करो आराम" (सागर ८/१) तथा "हक

नजीक सेहेरग से, आड़ो पट न द्वार" (सिन्धी) के कथन यही सिद्ध करते हैं।

यह कहना अत्यन्त हास्यास्पद है कि श्री राज जी परमधाम से श्यामा जी को दर्शन देने के लिये आते थे और दर्शन देकर पुनः परमधाम चले जाते थे। यदि ऐसा है तो "हम को खेल दिखावन काज, हमसों आगे आए श्री राज" (प्रकाश हिन्दुस्तानी १८/६) तथा "पाओ पल साथ की जुदागी ना सहो" का क्या अर्थ करेंगे? वे इस खेल में दर्शन देने से पूर्व कहाँ पर रह रहे थे? इतना अवश्य है कि जिस आत्मा (श्यामा जी, इन्द्रावती जी) को विशेष शोभा देनी होती है, धाम धनी उन्हें बाह्य रूप से प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनके अन्दर लीला रूप में विराजमान होते हैं और यह बात प्रकट हो जाती है, अन्यथा उनकी शाश्वत विद्यमानता तो सभी आत्माओं के

अन्दर होती ही है किन्तु माया के प्रभाव से वे स्वयं को अपने प्रियतम से दूर मानती हैं। इसका मूल कारण यह है कि वे नींद के प्रभाव में होती हैं और स्वयं को न देखकर जीव भाव में अपने जीव की लीला को ही देख रही होती हैं।

जो होए सैयां सोहागनी, सो निरखो अपने निसान।

वचन कहे मैं जाहेर, सोहागनियों पेहेचान॥१८॥

मैंने ब्रह्मसृष्टियों की पहचान के सभी लक्षणों का स्पष्ट वर्णन कर दिया है। सुन्दरसाथ में जो भी ब्रह्मसृष्टि हों, वे इन लक्षणों से अपनी तुलना करके आत्मचिन्तन करें कि क्या मेरे अन्दर भी परमधाम का अँकुर है या नहीं?

भावार्थ— उपरोक्त कथन अपनी आत्म-जाग्रति के लिये चिन्तन की ओर अग्रसर करता है, अन्यथा प्रत्येक

सुन्दरसाथ को चाहिये कि वह स्वयं को ब्रह्मसृष्टि ही माने तथा उसके अनुसार ही आचरण करने का प्रयास करे। जब ब्रह्मसृष्टि का जीव भी सत्स्वरूप की पहली बहिश्त मुक्ति स्थान में जाता है और प्रेममयी चितवनि का आधार लेकर कोरा जीव भी वहीं जाता है, तो अपने समर्पण, विरह, और प्रेम के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति करने में अपने ध्यान को केन्द्रित करना चाहिये, न कि इस निराशा के भँवर में फँसना चाहिए कि मैं तो जीव हूँ और मुझे परमधाम की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब धाम धनी स्वयं कहते हैं—

जो किन जीवे संग किया, ताको करुं ना मेलो भंग।

सो रंगे भेलूं वासना, वासना सत को अंग॥

कलस हिन्दुस्तानी २३/६४

बोहोत निसानी और हैं, प्रेम सोहागिन गुझ।

जब सैयां जाहिर हुई, तब होसी सबों सुझ॥१९॥

प्रियतम के गुह्य प्रेम में डूबी रहने वाली सुहागिन ब्रह्मसृष्टियों की और भी पहचान हैं। जब ब्रह्मात्मायें अपनी लीला (आचरण) से संसार में उजागार हो जायेंगी, तब सभी लोगों को उनकी स्पष्ट पहचान हो जायेगी।

तुम हो सैयां सोहागनी, ए समझ लीजो दिल बूझ।

जब सैयां भेली भई, तब होसी बड़ा गूझ॥२०॥

हे साथ जी! आप अपने हृदय में इस बात की दृढ़ता कर लीजिए कि आप निश्चित रूप से परमधाम की आत्मा हैं। जब (पद्मावती पुरी धाम में) बहुसंख्यक सखियाँ एकत्रित होंगी, तो उस समय परमधाम की गुह्य आनन्दमयी लीला का रसास्वादन होगा।

ए सब्द जो कहती हों, सो कारन सब सैयन।

सोहागिन ढांपी ना रहे, सुनते एह वचन॥२१॥

मैंने इस प्रकार की सारी बातें ब्रह्मसृष्टियों को जाग्रत करने के लिये ही कही हैं। मेरे इन वचनों को सुनकर ब्रह्मात्मायें छिपी नहीं रह सकतीं। वे अवश्य ही धाम धनी के चरणों में आयेंगी।

ए सब्द सुन सोहागनी, रहे ना सके एक पल।

तामें मूल अंकूर को, रहे ना पकड़यो बल॥२२॥

मैंने अपने उपरोक्त कथन में सुहागनियों के लक्षणों को दर्शाया है, जिन्हें सुनकर ब्रह्मसृष्टियाँ एक पल के लिये भी संसार में रहना नहीं चाहेंगी। इनमें परमधाम का मूल अंकूर है अर्थात् परमधाम में इनकी परात्म है, जिसके कारण धनी से मिलने के लिये इनमें इतना अधिक प्रेम

का बल होगा कि उसे रोका नहीं जा सकता।

जब खसम की सुध सुनी, तब रहे ना सोहागिन।

ख्वाबी दम भी ना रहे, तो क्यों रहे सैयां चेतन॥२३॥

जब श्रीमुखवाणी के प्रकाश में परमधाम की आत्माओं को अपने धाम धनी की पहचान हो जाती है, तो वे किसी भी स्थिति में माया में फँसी हुई नहीं रह सकतीं। अक्षरातीत की पहचान होने पर जब स्वप्न के जीव भी संसार (माया) को छोड़ देते हैं, तो भला सदा जागरूक रहने वाली आत्मायें मायावी प्रपञ्चों में कैसे फँसी रह सकती हैं?

मैं तुमको चेतन करूँ, एही कसौटी तुम।

या विध सब सैयन का, तसीहा लेवें खसम॥२४॥

हे साथ जी! मैं आपको माया के प्रति सावधान कर रही हूँ। आपके लिये यह परीक्षा (कसौटी) की घड़ी है कि आप अपने धाम धनी के प्रति अपने अटूट प्रेम एवं विश्वास को दर्शायें। प्रियतम अक्षरातीत इस मायावी जगत में आपके प्रेम एवं विश्वास की परीक्षा ले रहे हैं।

भावार्थ— यद्यपि धाम धनी सर्वज्ञ हैं और उनसे कुछ भी छिपा नहीं रहता, किन्तु उपरोक्त चौपाई में धनी द्वारा ब्रह्मसृष्टियों की परीक्षा लेने का आशय प्रेम एवं विश्वास के क्षेत्र में उन्हें अपने हृदय की वास्तविकता को दर्शाना है।

जो हुकम सिर लेय के, उठी ना अंग मरोर।

पिया सैयां सब देखहीं, तुम इस्क का जोर॥२५॥

जो धाम धनी के आदेश को शिरोधार्य करके मायावी नींद को छोड़ने में अपने आलस्य का परित्याग नहीं

करेगी और जाग्रत नहीं होगी, उसकी हँसी होगी। हे साथ जी! आपके प्रेम की शक्ति को श्री राज जी एवं अन्य सुन्दरसाथ (एक-दूसरे के प्रति) हँसी की भावना के साथ देख रहे हैं।

जो सुनके दौड़ी नहीं, तो हांसी है तिन पर।

जैसा इस्क जिन पे, सो अब होसी जाहिर।।२६।।

जो प्रियतम अक्षरातीत की वाणी को सुनकर अपने प्राणवल्लभ को पाने के लिये प्रेम में दौड़ नहीं लगायेगी, उसकी बहुत अधिक हँसी होगी। अब तो यह बात प्रकट हो जायेगी कि किस सुन्दरसाथ के हृदय में अपने प्राणनाथ के लिये कितना प्रेम है?

जो इस्क ले मिलसी, सो लेसी सुख अपार।

दरद बिना दुख होएसी, सो जानों निरधार॥२७॥

हे साथ जी! आप इस तथ्य (बात) को अच्छी तरह से जान लीजिये कि जो भी ब्रह्मात्मा धनी का प्रेम लेकर उन्हें अपने धाम हृदय में बसायेगी, वह अपने प्राणेश्वर का अपार सुख लेगी। जिसके हृदय में प्रियतम को पाने के लिये विरह की पीड़ा ही नहीं होगी, उसे माया में दुःख भोगना पड़ेगा।

जो किने गफलत करी, जागी नहीं दिल दे।

सो इत लोक अलोक का, कछु न लाहा ले॥२८॥

जो ब्रह्मसृष्टि माया की अज्ञानता में भटकती रही और प्रियतम को अपना हृदय देकर अर्थात् उनसे भरपूर प्रेम करके जाग्रत नहीं हुई, उसे न तो इस संसार में जागनी

लीला का लाभ मिलेगा और न परमधाम में जाग्रत होने पर हँसी से बचकर सम्मानित (प्रेम दृष्टि से) होने का लाभ मिलेगा।

लाहा तो ना लेवहीं, पर सामी हांसी होए।

अब ए हांसी सोहागनी, जिन कराओ कोए॥२९॥

ऐसी आत्माओं को परमधाम में किसी भी प्रकार का लाभ तो नहीं मिलेगा, किन्तु सबके सामने माया में भूले रहने की हँसी होगी। इसलिये हे साथ जी! आप परमधाम की ब्रह्मसृष्टि हैं। अब आप इस खेल में ऐसा कुछ भी न कीजिए कि परमधाम में आपकी हँसी हो।

जिन उपजे सैयन को, इन हांसी का भी दुख।

ए दुख बुरा सोहागनी, जो याद आवे मिने सुख॥३०॥

मैं यही चाहती हूँ कि ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम में हँसी का दुःख न झेलना पड़े। सखियों के लिये परमधाम के अखण्ड सुख में अपनी मायावी भूलों की याद दिलाने वाली हँसी बहुत ही दुःखदायी होगी, क्योंकि वह परमधाम में सबको ज्ञात हो जायेगी।

द्रष्टव्य- परमधाम में हँसी का दुःख लौकिक दुःख की तरह नहीं होगा, अपितु लज्जा का दुःख होगा। स्वलीला अद्वैत परमधाम में लौकिक दुःख का अस्तित्व रह ही नहीं सकता।

ए दुख तो नेहेचे बुरा, मेरी सैयोंपे सहयो न जाए।

जो कदी हांसी ना करे, पर जिन हिरदे चढ़ आए॥३१॥

निश्चित रूप से परमधाम में हँसी का दुःख बहुत ही बुरा लगेगा। मेरी आत्मायें तो उसे सहन ही नहीं कर पायेंगी।

यदि यह मान भी लिया जाये कि श्री राज जी हमारी भूलों पर हँसी नहीं करेंगे, किन्तु इस संसार में हमसे जो भूलें हुई हैं वे हमें तो याद आयेंगी ही। अपनी भूलों की वह स्मृति ही हमारे लिये पीड़ादायक होगी।

विशेष— जिस प्रकार परमधाम के नूरमयी तनों का इस नश्वर जगत में आना सम्भव नहीं है, किन्तु धाम धनी स्वयं अपने आवेश स्वरूप से आये हैं तथा अपनी अंगनाओं को सुरता रूप में लाये हैं, ठीक उसी प्रकार आनन्द के अनन्त सागर परमधाम में भी इस संसार का दुःख नहीं जाना चाहिये था। किन्तु अनहोनी घटना के रूप में अपने अपराधों (गुनाहों, भूलों) की स्मृति वहाँ बनी रहेगी, जिसके परिणाम स्वरूप सबके बीच लज्जा का दुःख तो झेलना ही पड़ेगा।

जिन जुबां मैं दुख कहूं, सोए करूं सत टूक।

पर ए दुख जिन तुमें लागहीं, तो मैं करत हों कूक॥३२॥

हे साथ जी! यदि मेरी जिह्वा से आपके लिये दुःख शब्द का भी उच्चारण हो जाये, तो उसे मैं १०० टुकड़े कर देना चाहूँगी। किन्तु कोयल की बोली की तरह मधुर तारतम वाणी से मैं तुम्हें सावचेत कर रही हूँ कि तुमसे इस खेल में ऐसी कोई भूल होने ही नहीं पाये कि तुम्हें परमधाम में हँसी के कारण लज्जा का दुःख उठाना पड़े।

जो दुख मेरी सैन्य को, तब सुख कैसा मोहे।

हम तुम एक वतन के, अपनी रूह नहीं दोए॥३३॥

मेरे सुन्दरसाथ जी! यदि आपको किसी भी कारण से दुःख होता है, तो भला मैं कैसे सुखी रह सकती हूँ। हम और आप एक ही परमधाम के रहने वाले हैं। हम एक ही

धनी के अंग हैं और हमारी आत्मा में किसी भी प्रकार का भेद (द्वैत) नहीं है।

प्रकरण ॥११॥ चौपाई ॥२५९॥

इस प्रकरण में सुन्दरसाथ को आत्म-जाग्रति के लिये प्रेरित किया गया है।

भी कहूं मेरी सैयन को, जो हैं मूल अंकूर।

सो निज वतनी सोहागनी, पिया अंग निज नूर॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि मैं यह बात अपनी उन सखियों से कह रही हूँ जिनके मूल तन परमधाम में हैं। वे परमधाम की ही रहने वाली हैं और प्रियतम की अंग स्वरूपा हैं, प्राणस्वरूपा हैं।

भावार्थ- "नूर" का तात्पर्य प्राण, आनन्द, कान्ति, तेज, ज्ञान, सौन्दर्य, आदि से है। अक्षरातीत का स्वरूप नूरमयी है। उनके स्वरूप में जो भी अनन्त गुण होते हैं, वे सभी गुण नूर के अर्थ में भी प्रयुक्त होंगे। इस प्रकार नूर के अर्थ को शब्दों की परिधि में नहीं रखा जा सकता है।

पार पुरुख पिया एक है, दूसरा नहीं कोए।

और नार सब माया, यामें भी विध दोए॥२॥

बेहद से परे स्वलीला अद्वैत परमधाम में मात्र एक ही पुरुष सच्चिदानन्द अक्षरातीत हैं। उनके अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई भी नहीं है। इस कालमाया के ब्रह्माण्ड में केवल माया ही माया का साम्राज्य है, जो अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत के स्वाप्निक रूप आदिनारायण की अर्धांगिनी के रूप में है। इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त दो अन्य सृष्टियाँ भी हैं।

भावार्थ- "स्वरूप एक हैं लीला दोए" (परिक्रमा ३/८) के कथनानुसार अक्षर तथा अक्षरातीत को दो स्वरूप नहीं माना जा सकता। श्यामा जी, सखियाँ, तथा महालक्ष्मी भी श्री राज जी के ही अंगरूप हैं। इस प्रकार लीला रूप में पाँच स्वरूपों के होते हुए भी मात्र एक ही

स्वरूप अक्षरातीत का माना जायेगा।

जो रूह असलू ईस्वरी, दूजी रूह सब जहान।

पर रूह न्यारी सोहागनी, सो आगे कहूंगी पेहेचान॥३॥

पहली सृष्टि ईश्वरीय है, जो सत्य है। दूसरी सृष्टि संसार के समस्त जीवों की है, जो स्वापनिक है। ब्रह्मात्मायें इन दोनों से भिन्न हैं। इनकी पहचान मैं आगे बताऊँगी।

सैयां सुख निज वतनी, ईस्वरी को सुख और।

दुनी भी सुख होसी सदा, आगे कहूंगी तीनों ठौर॥४॥

धाम धनी की कृपा रूपी छत्रछाया में ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम के प्रेम का सुख प्राप्त होता है, तो ईश्वरीय सृष्टि को ज्ञान दृष्टि से पहचान (सुधि) का सुख होता है। जीव सृष्टि को बेहद मण्डल के मुक्ति स्थानों (बहिश्तों) का

सुख प्राप्त होगा। आगे मैं इन तीनों सृष्टियों के मूल घर के सम्बन्ध में बताऊँगी।

ए लछन सैयां अंकूरी, जो होसी इन घर।

ए वचन वतनी सुनके, आवत हैं तत्पर॥५॥

जो आत्मायें परमधाम की रहने वाली हैं, उनके लक्षण ये हैं कि वे तारतम वाणी के वचनों को सुनकर शीघ्रतापूर्वक धाम धनी के चरणों में आयेंगी।

अटक रहया साथ आधा, जिनो खेल देखन का प्यार।

ए किया मूल इन खातिर, जो हैं तामसियां नार॥६॥

व्रज में आधे सुन्दरसाथ (तामसी सखियों) की खेल देखने की इच्छा पूरी नहीं हो सकी थी क्योंकि "प्रेम पियासों ना करें अन्तर, तो ए दुख देखे क्यों कर"।

उनकी इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही यह जागनी का ब्रह्माण्ड बनाया गया है।

भूल गइयां खेल में, जो सैयां हैं समरथ।

प्रकास पिया का मुझ पे, कहे समझाऊं अर्थ॥७॥

अनुपम सामर्थ्य वाली ब्रह्मसृष्टियाँ भी इस संसार में आकर स्वयं को तथा धाम धनी को भूल गयी हैं। मेरे पास प्रियतम का दिया हुआ तारतम वाणी का ज्ञान है, जिसका आशय समझाकर मैं इन्हें जाग्रत करूँगी।

सबन को भेली करूँ, दृढ़ कर देऊं मन।

खेल देखाऊं खोल के, जिन विध ए उतपन॥८॥

मुझे तारतम वाणी के प्रकाश में सभी ब्रह्मसृष्टियों को एकत्रित करना है और उनके मन में धाम धनी तथा

परमधाम के प्रति दृढ़ता स्थापित करनी है। यह मायावी जगत क्यों और किस प्रकार उत्पन्न हुआ है? इस रहस्य को भी मैं स्पष्ट रूप से सबको बताऊँगी।

ए खेल है जोरावर, बड़ो सो रचियो छल।

ए तब जाहेर होएसी, जब काढ़ देखाऊं बल॥९॥

माया का यह खेल बहुत ही शक्तिशाली है। इसकी रचना में चारों ओर छल ही छल का साम्राज्य है। जब मैं श्रीमुखवाणी के प्रकाश में सबके हृदय से माया की शक्ति को हटा दूँगी, तभी ब्रह्मवाणी का प्रकाश चारों ओर फैल सकेगा।

भावार्थ— तारतम वाणी से माया का विष समाप्त हो जाता है। इसलिये प्रकास हिन्दुस्तानी ३१/१३ में कहा गया है—

तारतम रस वानी कर, पिलाइये जाको।

जेहेर चढया होए जिमी का, सुख होवे ताको॥

हृदय में तारतम ज्ञान के प्रवेश करते ही माया का अन्धकार हटने लगता है और धाम धनी तथा उनकी वाणी के प्रति अटूट निष्ठा तथा विश्वास पैदा होता है। इस स्थिति में ही ज्ञान का प्रकाश फैल सकता है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि मलिन हृदय में निर्मलता भी तारतम वाणी से ही आती है तथा संसार में तारतम वाणी को फैलाने के लिये लोगों के हृदय का शुद्ध होना भी आवश्यक है। तभी वे इसे आत्मसात् कर सकेंगे।

तुम नहीं इन छल के, छल को जोर अमल।

सांची को झूठी लगी, ऐसो छल को बल॥१०॥

हे साथ जी! आप इस मायावी जगत के नहीं हैं। इस

संसार में विषय सुखों की ही प्रबलता है। इस माया की ऐसी शक्ति है कि सच्ची ब्रह्मसृष्टियों को भी इसने अपने जाल में उलझा लिया है।

भावार्थ- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध— ये माया के विषय सुख हैं। इन्हें ही माया का नशा कहा गया है। जो भी इनके बन्धन में फँस जाता है, उसका निकल पाना बहुत कठिन हो जाता है।

तुम आइयां छल देखने, भिल गैयां माहें छल।

छल को छल न लागहीं, ओ लेहेरी ओ जल॥११॥

हे साथ जी! आप माया का खेल मात्र देखने के लिये आये थे, किन्तु इस समय पूरी तरह से माया में घुल-मिल गये हैं। माया के जीवों से आप अपनी तुलना न करें कि वे भी तो माया में लिप्त हैं। वे तो मोह सागर से लहरों

के रूप में उत्पन्न हुए हैं। उनके ऊपर माया अपना क्या प्रभाव डालेगी?

भावार्थ- काले वस्त्र को काले रंग से रंगने पर कुछ भी पता नहीं चलता क्योंकि दोनों का रंग एक ही होता है , किन्तु श्वेत वस्त्र पर यदि काले रंग का एक छींटा भी पड़ जाये तो सबकी दृष्टि उसी पर जाती है कि यह वस्त्र काला हो गया है। यही स्थिति जीव सृष्टि तथा ब्रह्मसृष्टि के माया में लिप्त होने के सन्दर्भ में है। जीव सृष्टि का बड़े से बड़ा योगी निराकार को पार नहीं कर पाता , जबकि ब्रह्मसृष्टि उसी निराकार से बने हुए मायावी खेल को देखने के लिये आयी है। वह तो निराकार-बेहद से परे परमधाम की रहने वाली है।

ए झूठी तुमको लग रही, तुम रहे झूठी लाग।

ए झूठी अब उड़ जाएसी, दे जासी झूठा दाग॥१२॥

इस स्वप्नवत् जगत् के मिथ्या प्रपञ्चों ने आपको पकड़ रखा है और आपने इस संसार को। तारतम वाणी के प्रकाश एवं धनी के प्रेम में यह मायावी प्रपञ्च तो आपके हृदय से निकल जायेगा, किन्तु आपके ऊपर यह कलंक अवश्य बना रहेगा कि आप भी इसमें लिप्त हो गये थे।

हांसी होसी अति बड़ी, जिन मोहे देओ दोस।

कमी कहे मैं ना करूं, पर तुमें छल हुआ सिरपोस॥१३॥

आपकी इस भूल की परमधाम में बहुत अधिक हँसी होगी। आपको समझाने में मैंने किसी भी प्रकार की कमी नहीं की है। इसलिये मुझे आप दोषी न बनाना कि आपने हमें सावचेत ही नहीं किया था। मैं तो यही देख रही हूँ

कि माया का जल आपके सिर के ऊपर से बह रहा है,
अर्थात् मोह सागर में आप पूरी तरह से डूब गये हैं।

मांग लिया खसम पैं, ए छल तुम देखन।

जो कदी भूलियां छल में, तो फेर न आवे ए दिन॥१४॥

आपने प्रियतम अक्षरातीत से माया का खेल देखने की इच्छा की थी, किन्तु इस समय भी यदि आप मायावी प्रपञ्चों में ही भूले रहते हैं, तो पुनः आपको जाग्रत होने का अवसर नहीं मिलेगा।

तुम मुख नीचा होएसी, आगूं सैयां सबन।

ए हांसी सत ठौर की, कोई सैयां कराओ जिन॥१५॥

हे साथ जी! यदि आप माया की नींद को छोड़कर जाग्रत नहीं हुए, तो परमधाम में जाग्रत होने पर सब

सुन्दरसाथ के समक्ष आपका सिर लज्जा से झुक जायेगा। मैं यही चाहती हूँ कि कोई भी सुन्दरसाथ माया में लिप्त होने की ऐसी भूल न करे कि उसकी परमधाम में हँसी हो।

भावार्थ- इन चौपाइयों को पढ़कर उन सुन्दरसाथ को आत्म-मन्थन करना चाहिये, जो आलस्य एवं मोह के वशीभूत होकर यही कहते रहते हैं कि अभी चितवनि करने की क्या जल्दी है? बुढ़ापे में कर लेंगे। अभी तो संसार का सुख लेने का समय है।

दुख ले चलसी इत थें, नहीं आवन दूजी बेर।

तिन क्यों मुख ऊंचा होएसी, जो पिउसों बैठी मुख फेर॥१६॥

यदि आप इसी प्रकार माया में लिप्त रहे, तो यहाँ से चलते समय आपको हँसी का दुःख लेकर चलना पड़ेगा।

आपको इस खेल में पुनः दूसरी बार आने का भी अवसर नहीं मिलेगा कि आप अपनी भूलों को सुधार सकें। इस समय जो सुन्दरसाथ प्रियतम अक्षरातीत से मुख मोड़कर बैठे हैं अर्थात् माया में लिप्त हैं, परमधाम में जाग्रत होने पर उनका मुख ऊँचा कैसे हो सकता है?

तुम सुध पिउ ना आपकी, ना सुध अपनो घर।

नाहीं सुध इन छल की, सो कर देऊं सब जाहेर॥१७॥

इस मायावी संसार में आप इतने भटक गये हैं कि इस समय न तो आपको अपनी पहचान है और न अपने धनी या निज घर की पहचान है। आप इस मायावी जगत की वास्तविकता को भी यथार्थ रूप से नहीं जानते हैं, अन्यथा आप क्षणिक सुखों के मोह में प्रियतम से इस प्रकार मुख नहीं फेरते। अब मैं तारतम वाणी के प्रकाश में

सब कुछ स्पष्ट कर देती हूँ।

मैं देखाऊँ तिन विध, ज्यों होए पेहेचान छल।

जब तुम छल पेहेचानिया, तब चले न याको बल॥१८॥

मैं ज्ञान दृष्टि से आपको इस प्रकार संसार दिखाऊँगी कि आपको इस सारहीन मिथ्या जगत की वास्तविक पहचान हो जाये। जब आप इसकी यथार्थता से परिचित हो जायेंगे, तो आपके ऊपर इसका वर्चस्व (दबदबा) नहीं रहेगा।

भावार्थ— इस प्रकरण के बाद प्रकरण १३-१७ तक में इस संसार का पूरा चित्रण दिया गया है कि संसार के लोग किस प्रकार अज्ञानता के अन्धकार में भटक रहे हैं तथा उन्हें निराकार से परे जाने का कोई भी मार्ग नहीं मिल रहा है।

अब देखो या छल को, जो देखन आइयां एह।

प्रकास करुं इन भांत का, ज्यों रहेवे नहीं संदेह॥१९॥

हे साथ जी! अब आप श्रीमुखवाणी के उजाले में इस मायावी प्रपञ्च को देखिये, क्योंकि आप इसे देखने के लिये ही आये हैं। मैं आपके हृदय में इस प्रकार सत्य ज्ञान का प्रकाश कर दूँगी कि आपके मन में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहेगा।

भावार्थ— मनुष्य की आयु सीमित होती है। इतनी अल्पायु में यह सम्भव नहीं होता कि वह संसार के सभी मत-पन्थों का स्वयं अनुयायी बनकर उनकी समीक्षा कर सके तथा सांसारिक विषयों को भोगकर उनकी निःसारता का अनुभव कर सके। ऐसी स्थिति में तारतम्य ज्ञान की दृष्टि से वे दिव्य चक्षु प्राप्त हो जाते हैं, जिनसे अति अल्प समय में भी उस सत्य को जाना जा सकता

है जिसे हजारों-लाखों जन्मों में भी सामान्यतः जानना सम्भव नहीं होता। आगे के पाँच प्रकरणों में यही बात दर्शायी गयी है।

अन्धेर सब उड़ाए के, सब छल करुं जाहेर।

खोलूं कमाड़ कल कुलफ, अन्तर माँहें बाहेर।।२०।।

अब मैं आगे के प्रकरणों में निहित ज्ञान के द्वारा आपके सभी संशयों को दूर कर दूँगी तथा सम्पूर्ण मायावी छल को आपके सम्मुख प्रकट कर दूँगी। मैं तारतम ज्ञान की कुञ्जी से निराकार रूपी दरवाजे में लगे ताले (मोह, अज्ञान) को खोल दूँगी, जिससे आपको इस संसार (माँहे) की, इससे परे बेहद मण्डल (बाहर) की, तथा उससे भी परे स्वलीला अद्वैत परमधाम (अन्तर) की स्पष्ट पहचान हो जायेगी।

प्रकरण ॥१२॥ चौपाई ॥२७९॥

खेल के मोहोरों (घटकों) का प्रकरण

जिस प्रकार अनेक प्रकार के मोहरों से शतरंज का खेल खेला जाता है, उसी प्रकार इस माया के खेल में अग्रगण्य घटकों को मोहरा कहते हैं। इनका वर्णन इस प्रकरण में किया गया है।

अब निरखो नीके कर, ए जो देखन आइयां तुम।

मांग्या खेल हिरस का, सो देखलावें खसम॥१॥

हे साथ जी! आप माया के जिस खेल को देखने के लिये आये हैं, उसे अपनी विवेक दृष्टि से अच्छी प्रकार से समझिए (देखिए)। आपने धाम धनी से तृष्णा से भरे जिस मायावी खेल को देखने की इच्छा की थी, प्रियतम उसे ही आपको दिखा रहे हैं।

भोम भली भरतखंड की, जहां आई निध नेहेचल।

और सारी जिमी खारी, खारे जल मोह जल॥२॥

भारतवर्ष की यह धरती बहुत ही पवित्र है , जहाँ परमधाम की अखण्ड ब्रह्मवाणी अवतरित हुई है। इसके अतिरिक्त संसार के अन्य सभी देशों की धरती मोह – अहंकार के विकारों से ग्रसित होकर खारे जल के समान निरर्थक है और अध्यात्म पथ के लिये उपयुक्त नहीं है।

भावार्थ- जिस प्रकार समुद्र का खारा जल न तो पीने के काम आता है और न नहाने या सिंचाई आदि के काम, उसी प्रकार भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य देशों में भौतिक ऐश्वर्य एवं बाह्य सौन्दर्य आदि का बोलबाला तो अवश्य है, किन्तु सच्ची आध्यात्मिकता से वे कोसों दूर हैं। इन देशों में धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड तो मिल सकता है, किन्तु किसी समाधिस्थ योगी का दर्शन

मिलना असम्भव सा है। गोमाँस का प्रतिदिन भक्षण एवं शराब का सेवन ही जिनकी प्रवृत्ति है, उनसे गहन आध्यात्मिक चिन्तन की अपेक्षा कैसे की जा सकती है?

इत बोए बिरिख होत है, ताको फल पावे सब कोए।

बीज जैसा फल तैसा, किया जो अपना सोए॥३॥

यह पृथ्वी लोक कर्म भूमि है। जिस प्रकार कोई पौधा लगाने पर वह वृक्ष बन जाता है तथा उसके फल को सभी लोग प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार प्रकृति के सुख को भोगने की वासना रूपी बीज से जीव जन्म ग्रहण करता है। पुनः शुभ-अशुभ कर्मों के फलस्वरूप सुख और दुःख का भोग करता है। इस प्रकार जैसा बीज (वासना) होता है, वैसा ही कर्म, और वैसा ही फल सबको भोगना पड़ता है।

इनमें जो ठौर अव्वल, जाको नाम नौतन।

जहां आए उदय हुई, नेहेचल बात वतन॥४॥

इस भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ स्थान नवतनपुरी है , जहाँ सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारविन्द से अखण्ड परमधाम के अनुपम ज्ञान का अवतरण हुआ।

एह खेल तुम मांगिया, सो किया तुम खातिर।

ए विध सब देखाए के, पीछे कहूं वतन आखिर॥५॥

आपने धाम धनी से माया का खेल देखने की इच्छा की थी, जिस के परिणाम स्वरूप यह मायावी ब्रह्माण्ड बना। आपको इस मिथ्या संसार की सारी वास्तविकता को बताकर अन्ततोगत्वा मैं परमधाम के विषय में बताऊँगी।

मोहोरे सब जुदे जुदे, जुदी जुदी मुख बान।

खेले मन के भाव तें, सब आप अपनी तान॥६॥

लोक व्यवहार रूपी इस खेल में भौतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र के अलग-अलग मोहरें (घटक, अग्रगण्य) हैं। इनमें प्रत्येक के मुख से अलग-अलग प्रकार की बातें निकलती हैं। सभी अपने-अपने मन के भावों के अनुसार क्रीड़ा करते हैं, अर्थात् लोक व्यवहार को क्रियान्वित करते हैं। सबकी अपनी-अपनी दार्शनिकता (जीवन पद्धति) होती है।

स्वांग काछें जुदे जुदे, जुदे जुदे रूप रंग।

चलें आप चित चाहते, और रहे जो भेले संग॥७॥

इस संसार में अलग-अलग रूप-रंग वाले मनुष्य रहते हैं, जो अलग-अलग रीति-रिवाजों के पालन रूपी

नाटक का अभिनय किया करते हैं। वे अपने समाज या मत-पन्थ के अनुयायियों के साथ अपने हृदय के भावों के अनुसार सामाजिक एवं धार्मिक व्यवहार क्रियान्वित करते हैं।

भावार्थ- कुछ लोग नाटे होते हैं, तो कुछ लम्बे। कुछ दुबले-पतले होते हैं और कुछ गोल-मटोल। इसी प्रकार काले, गोरे, श्वेत, भूरे, एवं पीले आदि अनेक रंगों के मनुष्य होते हैं। अलग-अलग भाषाओं तथा रीति-रिवाजों से मनुष्य बँधा होता है।

अनेक सेहेर बाजार चौहटे, चौक चौवटे अनेक।

अनेक कसबी कसब करते, हाट पीठ वसेक॥८॥

इस संसार में अनेक नगर बसे हुए हैं, जिनमें चारों ओर दुकानें सजी हुई हैं, बहुत से बाजार जगमगाते रहते हैं।

इन नगरों में ऐसे भी स्थान होते हैं , जहाँ से चारों दिशाओं में मार्ग जाते हैं और वहाँ पर चौकोर चबूतरे (चौराहे) बने होते हैं। इनमें बहुत से कारीगर (शिल्पी) अपनी शिल्प कला का व्यवसाय करते हैं। यहाँ छोटे-छोटे बाजार एवं सुन्दर-सुन्दर शिक्षा केन्द्र भी होते हैं।

भावार्थ- वह चौकोर बाजार जिसमें चारों ओर दुकानें सजी रहती हैं, चौहट्टा कहलाता है। चौकोर चबूतरे को चौबटा कहते हैं। जिस चौकोर स्थान से चारों दिशाओं में मार्ग जाते हैं, उसे चौक (चौराहा) कहा जाता है। बाजार का छोटा रूप हाट कहलाता है। बहुत छोटे से नगरों (उपनगरों या बड़े गाँवों) में हाट लगा करते हैं। उपरोक्त चौपाई का आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार होगा- संसार में अनेक तीर्थ स्थान हैं, जिनमें अनेक सम्प्रदायों, मत-पन्थों के बड़े-बड़े मन्दिर, आश्रम, मस्जिद, चर्च, आदि

बने होते हैं। ये स्थान धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन चारों पदार्थों को देने का दावा करते हैं। इसलिये यहाँ लोगों की बड़ी भीड़ लगी रहती है। इनमें साधु, महन्त, पण्डे, पुजारी, मौलवी, और पादरी आदि धार्मिक शिक्षा देते हैं तथा पूजा-पाठ करते हैं। दर्शनार्थी एवं धर्म प्रेमी लोगों का हमेशा ही इन स्थानों में आवागमन बना रहता है।

भेख सारे बनाए के, करें होहोकार।

कोई मिने आहार खाए, कोई खाए अहंकार॥९॥

सभी मत-पन्थों के अनुयायी तरह-तरह की वेश-भूषा धारण करते हैं तथा अपने आध्यात्मिक ज्ञान की श्रेष्ठता का डँका पीटते हैं (कोलाहल करते हैं)। इनमें कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो अपनी उच्च स्तर की साधना को

दर्शाने के लिये अति अल्पाहार करते हैं। तो कुछ लोग अहंकार को जीतने के नाम पर अत्यधिक विनम्र होने का दिखावा करते हैं।

भावार्थ- अहंकार को जीतने वाला प्रेम में डूबकर निराकार को पार कर लेता है और बेहद या परमधाम के आनन्द का रसभागी होता है। इसके लिये गहन स्तर की चैतन्य समाधि में डूबना पड़ता है। केवल वाणी की विनम्रता या व्यवहारिक विनम्रता अहंकार जीतने का प्रतीक नहीं है। यह तो बाह्य रूप से अहंकार जीतने का केवल प्राथमिक स्तर है। ऐसे लोगों के हृदय में अहंकार की जड़ें अदृश्य रूप से बहुत गहराई तक विद्यमान होती हैं, जो मात्र परब्रह्म के प्रेम एवं उनकी कृपा दृष्टि से ही समाप्त हो सकती हैं।

बिध बिध के भेख काछे, सारे जान प्रवीन।

वरन चारों खेलें चित दे, नाहीं न कोई मतहीन॥१०॥

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की वेश-भूषा धारण करने वाले ये लोग स्वयं को बहुत ही पारंगत ज्ञानी माना करते हैं। चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र) के लोगों का चित्त पूरी तरह से मायावी प्रपञ्चों में फँसा होता है, किन्तु उनमें से कोई भी स्वयं को कम बुद्धि का नहीं मानता।

पढ़े चारों विद्या चौदे, हुए वरन विस्तार।

आप चंगी सब दुनियां, खेलत हैं नर नार॥११॥

चारों वर्णों के लोग चौदह विद्याओं का अध्ययन करने पर भी अनेक जातियों में बँट गये। इस संसार के सभी स्त्री-पुरुष भौतिक सुखों के भोग में ही प्रसन्नता का

अनुभव कर रहे हैं।

भावार्थ- वर्तमान समय में पौराणिक हिन्दू समाज में १२०० जातियाँ हैं। जब से कर्म का आधार छोड़कर जन्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था निर्धारित की जाने लगी, तभी से भिन्न-भिन्न जातियों की उत्पत्ति होनी प्रारम्भ हो गयी। इस प्रकार वर्ण और जाति में अन्तर है। वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार पर है, तो जाति व्यवस्था जन्म के आधार पर।

चौदह विद्यायें इस प्रकार हैं – ४ वेद, ४ उपवेद (अथर्ववेद धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और आयुर्वेद), छः अंग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, और व्याकरण)।

वरन सारे पसरे, लोभें लिए करें उपाय।

बिना अगनी पर जले, अंग काम क्रोध न माय॥१२॥

सभी वर्ण जातियों में परिवर्तित हो गये हैं। लोग लाभ के वशीभूत होकर मात्र अर्थ (धन) के लिये ही तरह-तरह के उपाय किया करते हैं। उनके हृदय में काम और क्रोध इतना अधिक भरा हुआ है कि बिना अग्नि के ही उनके श्रद्धा और विश्वास रूपी पंख जल जाते हैं।

नाहीं जासों पेहेचान कबहूँ, तासों करे सनमंध।

सगे सहोदरे मिलके, ले देवें मन के बंध॥१३॥

जिसके विषय में पहले से कुछ भी पता नहीं होता है, उसके साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इस कार्य में सगे-सम्बन्धी तथा भाई-बन्धु मिलकर उसे विवाह के रूप में मन के बन्धनों में बाँध देते हैं।

सनमंध करते आप में, उछरंग अंग न माए।

केसर कसूंबे पेहेर के, सेहेर में फेरे खाए॥१४॥

जब विवाहोत्सव होता है, तो इतने प्रसन्न होते हैं कि उनके हृदय में अपार उमंग भर जाती है। केसरिया अथवा गहरे लाल रंग के वस्त्र पहनकर प्रसन्नतापूर्वक नगर में घूमते रहते हैं।

सिनगार करके तुरी चढ़े, कोई करे छाया छत्र।

कोई आगे नाटारंभ करे, कोई बजावे बाजंत्र॥१५॥

विवाह करने वाला वर (दुलहा) अपना श्रृंगार करके घोड़े पर बैठता है। उसके ऊपर छाया करने के लिये कोई छत्र लेकर चलता है। उसके आगे-आगे भी कुछ लोग तरह-तरह के वाद्य बजाते हुए चलते हैं, तो कुछ लोग तरह-तरह की नाट्य लीला (स्वांग) करते हुए

चलते हैं।

कोई बांध सीढ़ी आवे सामी, करे पोक पुकार।

विरह वेदना अंग न माए, पीटे मांहें बाजार॥१६॥

इसके विपरीत दूसरा दृश्य इसके विपरीत होता है, जिसमें सामने से लोग किसी मरे हुए व्यक्ति की अर्थी लेकर आ रहे होते हैं। वे करुण स्वर में रो रहे होते हैं। उनके हृदय में मृतक के वियोग से अपार दुःख भरा होता है और वे नगर की सड़कों पर छाती पीट-पीटकर अपना दुःख व्यक्त कर रहे होते हैं।

भावार्थ- संसार का यही कटु सत्य है कि कहीं शहनाई बजती है तो कहीं मातम होता है, किन्तु इसके रहस्य को कोई विरला ही समझ पाता है।

गाड़ें जालें हाथ अपने, रूदन करें जलधार।

सनमंधी सब मिलके, टलवलें नर नार॥१७॥

मुस्लिम, क्रिश्चियन, आदि मरे हुए व्यक्ति के शरीर को अपने ही हाथों से धरती से गाड़ देते हैं तथा हिन्दू लोग आग में जला देते हैं। सभी उसके वियोग में इतना रोते हैं कि उनकी आँखों से आसुओं की धारा बहती है। उसके सभी सगे-सम्बन्धी, स्त्री-पुरुष मिलकर मृत्यु का शोक मनाते हैं।

जनम होवे काहू के, काहू के होवे मरन।

कोई हिरदे हंसे हरखे, कोई सोक रूदन॥१८॥

इस मायावी संसार में यही देखने में आता है कि कहीं पर किसी का जन्म होता है, तो किसी की मृत्यु होती है। कोई अपने हृदय में इतनी प्रसन्नता का अनुभव करता है

कि हँसता रहता है और कोई ऐसा भी होता है कि वह शोक के कारण सदा रोता ही रहता है।

धन खरचें खाएँ गफलतें, आपे बुजरक होए।

कीरत अपनी कराए के, खेल या बिध होए॥१९॥

यह माया का ऐसा विचित्र खेल है कि इसमें कुछ व्यक्ति तो समाज में स्वयं को बड़ा दिखाने के लिये विवाह आदि उत्सवों में पानी की तरह पैसा बहाते हैं। इस प्रकार की नादानी वे अज्ञानता के वशीभूत होने के कारण ही करते हैं। सम्भवतः वे ऐसा सोचते हैं कि धन का अपव्यय करके वे समाज में अपना यश फैला लेंगे।

भावार्थ— वस्तुतः हमारे द्वारा उपार्जित धन पर वास्तविक अधिकार केवल परमात्मा का ही है। हमें धन को अपना न मानकर परमात्मा एवं राष्ट्र का मानना

चाहिये और उसे मानवता के कल्याण में ही खर्च करना चाहिये, न कि अपने वैभव प्रदर्शन में। विवाह में तड़क-भड़क पर धन खर्च करना गरीबों के घावों पर नमक छिड़कना है।

कोई किरपी कोई दाता, कोई मंगन केहेलाए।

किसी के अवगुन बोले, किसी के गुन गाए॥२०॥

संसार में कोई कृपण (कंजूस) है, तो कोई दानी है, और कोई भीख माँगने वाला भी है। कहीं पर किसी के अवगुणों (दोषों) की निन्दा होती है, तो किसी के गुणों की महिमा गायी जाती है।

कोई मिने बेहेवारिए, कोई राने राज।

कोई मिने रांक रलझले, रोते फिरें अकाज॥२१॥

संसार के विशाल मानव समूह में कोई व्यवहार कुशल है, तो कोई राणा और कोई राजा भी है। कोई बहुत दुःखी एवं गरीब भी हैं, जो रोते हुए निष्प्रयोजन घूमते रहते हैं।

कोई पोंढ़े पलंग हेम के, कोई ऊपर ढोले वाए।

बात करते जी जी करे, ए खेल यों सोभाए॥२२॥

कोई सोने के पलंग पर सोता है, तो कोई उसके ऊपर पँखे से हवा झलता है और उससे बातें करते समय उसकी प्रशंसा में अनावश्यक रूप से प्रत्येक बात में "हाँ जी-हाँ जी" करता रहता है। इस प्रकार इस खेल की विचित्रता है।

कोई बैठे सुखपाल में, कोई दौड़े उचाए।

जलेब आगे जोर चले, ए खेल यों खेलाए॥२३॥

यह माया का खेल ऐसा है, जिसमें कोई तो पालकी में आराम से बैठा होता है और कुछ लोग उसे उठाकर दौड़ते हुए (तीव्र गति से) चलते हैं। इनके आगे-आगे सेना अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए चला करती है।

कोई बैठे तखतरवा, आगे तुरी गज पाएदल।

अति बड़े बाजंत्र बाजे, जाने राज नेहेचल॥२४॥

कोई महाराजा के रूप में बड़े रथ पर बैठा होता है। उसके आगे पैदल एवं हाथी-घोड़े पर सवार सैनिक चला करते हैं। साथ में बड़े-बड़े बाजे बजा करते हैं। ये ऐसा दर्शाते हैं कि जैसे इनका राज्य कभी नष्ट होगा ही नहीं।

साम सामी करे सैन्या, भारथ होवे लोह अंग।

लज्या बांधे होवें टुकड़े, कहावें सूर अभंग॥२५॥

कभी-कभी दो राजा आमने-सामने सेना सजाकर, लोहे के कवच धारण कर, अस्त्रों-शस्त्रों से लड़ा करते हैं। वे स्वयं को महान वीर कहते हैं और इसी लज्जा में अस्त्रों-शस्त्रों से कटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

कोई मिने होय कायर, छोड़ लज्या भाग जाए।

कोई मारे कोई पकड़े, कोई गए आप बचाए॥२६॥

इनमें जो कायर होता है, वह वीर कहलाने की लज्जा को छोड़ देता है तथा युद्ध से भाग जाता है। युद्ध में कोई किसी को मार डालता है, तो कोई बन्दी के रूप में पकड़ा जाता है। कोई ऐसा भी योद्धा होता है, जो अपनी रक्षा कर लेता है।

कोई जीते कोई हारे, काहू हरख काहू सोक।

जो तरफ सारी जीत आवे, ताए कहें पृथीपत लोक॥२७॥

युद्ध के क्षेत्र में कोई जीतता है, तो कोई हारता है। कोई अपनी विजय से हर्षित होता है, तो कोई अपनी हार से दुःखी होता है। जो चारों दिशाओं में विजय प्राप्त कर लेता है, उसे लोग चक्रवर्ती सम्राट या पृथ्वीपति कहते हैं।

कोई करे ले कैद में, बांधत उलटे बंध।

मारते अरवाह काढ़ें, ए खेल या सनंध॥२८॥

यह मायावी खेल इस प्रकार का है कि कोई किसी को कैद कर लेता है तथा उसके हाथों को उल्टी दिशा में बाँधकर तलवार से मार देता है और उसके प्राण ले लेता है।

जीते हरखे पौरसे, सूरतन अंग न माए।

हारे सारे सोक पावें, सो करें मुख त्राहे त्राहे॥२९॥

जो अपनी वीरता एवं पुरुषार्थ से विजयी होते हैं, वे इतने प्रसन्न होते हैं कि उनका हृदय उसे सम्भाल नहीं पाता। हार जाने वाले इतने दुःखी हो जाते हैं कि अपने मुख से "रक्षा कीजिए-रक्षा कीजिए" की पुकार लगाते हैं।

कई फिरत हैं रोगिए, कई लूले टूटे अपंग।

कई मिने आंधले, यों होत खेलमें रंग॥३०॥

इस खेल में इस प्रकार का दृश्य दिखायी दे रहा है कि कई लोग रोगी होकर स्वास्थ्य की कामना से चारों ओर घूमते फिरते हैं। कई लोग लूले, लँगड़े, और टूटे अंगों वाले हैं। कुछ लोग दोनों आँखों से अन्धे भी हैं।

कई उदर कारने, फिरत होत फजीत।

कई पवाड़े करें कोटल, ए होत खेल या रीत॥३१॥

माया का यह खेल इस प्रकार चल रहा है कि कई लोग तो अपने उदर-पोषण (पेट भरने) के लिये परेशान होकर चारों ओर घूमते रहते हैं और कई कुटिल बुद्धि वाले लोग तरह-तरह के विवाद खड़े करते रहते हैं।

प्रकरण ॥१३॥ चौपाई ॥३१०॥

खेल में खेल

अक्षर ब्रह्म ने अपने मन अव्याकृत के द्वारा सृष्टि रूपी यह "खेल" बनाया है। इसका नियन्त्रक आदिनारायण है, जिसकी चेतना के सांकल्पिक प्रतिबिम्ब रूपी जीवों ने मिलकर इस खेल में अलग-अलग भूमिकाओं का निर्वहन किया है। इसे ही "खेल में खेल" कहते हैं। इस प्रकरण में जीव सृष्टि की आध्यात्मिक क्षेत्र में विशेष भूमिकाओं को चित्रित किया गया है।

अब दिखाऊं इन विध, जासों समझ सब होए।

भेले हैं सत असत, सो जुदे कर देऊं दोए॥१॥

हे साथ जी! अब मैं आपको इस संसार की वास्तविकता इस प्रकार दिखाऊँगी कि आपको सब कुछ समझ में आ जाये। यहाँ के ज्ञानीजनों की दृष्टि में माया

और ब्रह्म एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं (मिले हुए हैं)। मैं तारतम वाणी के प्रकाश में उन दोनों को अलग-अलग करके बताती हूँ।

भावार्थ- यद्यपि कुछ सम्प्रदाय ऐसे भी हैं जो माया से परे ही ब्रह्म का स्वरूप बताते हैं, किन्तु वे यह स्पष्ट नहीं कर पाते कि माया का विस्तार कहाँ तक और किस प्रकार है। चारों वेदों के पुरुष सूक्त के मन्त्रों में चतुष्पाद विभूति का वर्णन है, जिसमें यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार चौथे पाद (अव्याकृत) से माया का प्रकटीकरण होता है, और इस चतुष्पाद विभूति में ब्रह्म की अखण्ड लीला है जिसके परे परमधाम है। किन्तु तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण इस रहस्य को कोई भी समझ नहीं पाता है।

इन खेलमें जो खेल है, सो केहेत न आवे पार।

इन भेखोंमें भेख सोभहीं, सो कहूं नेक विचार॥२॥

सृष्टि के इस खेल में जीवों के द्वारा जो खेल खेला जा रहा है, उसका पूर्ण रूप से वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। इस सृष्टि में अनेक प्रकार के रूप-रंग और वेश-भूषा वाले मनुष्य तो हैं ही, परन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में एक ही स्थान में रहने वाले लोग जो भाषा एवं रंग-रूप में समान होते हैं, सम्प्रदाय भेद से अनेक प्रकार की वेश-भूषा धारण कर लेते हैं और अपनी उपासना पद्धति भी अलग-अलग बना लेते हैं। इसके सम्बन्ध में मैं अपने कुछ विचार बता रही हूँ।

भावार्थ- एक ही काशी नगरी या किसी भी स्थान में अनेक पन्थों के महात्मा रहते हैं, जिनकी वेश-भूषा, उपासना पद्धति, एवं दार्शनिक सिद्धान्त सम्प्रदाय के

अनुसार निश्चित किये जाते हैं। उपरोक्त चौपाई में इसी तथ्य को दर्शाया गया है।

कई दयोहरे अपासरे, कई मुनारे मसीत।

तलाव कुआ कुंड बावरी, मांहे विसामां कई रीत॥३॥

संसार में जगह-जगह पर हिन्दुओं और जैनियों के बहुत से मन्दिर हैं, तथा मीनारों से सुशोभित मस्जिदें भी हैं। परोपकार की भावना से लोगों ने स्थान-स्थान पर तालाबों, कुओं, कुण्डों, तथा बावड़ियों (सीढ़ीदार कुँओं) का निर्माण कराया है। इसके अतिरिक्त यात्रियों के निवास के लिये अनेक प्रकार की धर्मशालाएँ भी बनी हुई हैं।

कई भेख जो साध कहावें, कई पंडित पुरान।

कई भेख जो जालिम, कई मूरख अजान॥४॥

साधू-महात्माओं की अनेक प्रकार की वेश-भूषा है। इसी प्रकार अत्याचारी डकैतों की भी अनेकों वेश-भूषा हैं। पण्डितजन जहाँ-तहाँ पुराणों की कथा करते दिखायी देते हैं, वही अनेकों मूर्ख और अज्ञानी लोग निरर्थक घूमा करते हैं।

कई अंन नीर सबीले, कई करें दया दान।

कई तरपन तीरथ, कई करे नित अस्नान॥५॥

कुछ लोग सबकी सुविधा के लिये भोजन हेतु अन्न क्षेत्र खोलते हैं, तो कुछ लोग जल के प्याऊ खुलवाते हैं। बहुत से लोग दूसरों के प्रति दया की भावना से दान करते हैं। कई लोग तीर्थों में जाकर तर्पण करते हैं, तो

स्वयं को शुद्ध करने की भावना से बहुत से व्यक्ति प्रतिदिन स्नान करते हैं।

भावार्थ- जीवित माता-पिता एवं भद्र जन ही पितर (पालन करने वाले) हैं। मरे हुए का तो पुनर्जन्म हो जाता है। इस प्रकार जीवित पूज्य जनों की श्रद्धापूर्वक सेवा ही श्राद्ध करना है तथा अपनी सेवा से उन्हें तृप्त करना तर्पण करना है। मरे हुए व्यक्तियों का श्राद्ध और तर्पण करना वेद-शास्त्र के पूर्णतया विरुद्ध है।

कई कहावें दरसनी, धरें जुदे जुदे भेख।

सुध आप ना पार की, हिरदे अंधेरी विसेख॥६॥

कुछ लोग दर्शन शास्त्र के ज्ञाता कहलाते हैं। वे अलग-अलग प्रकार की वेश-भूषा धारण करते हैं। उनके हृदय में अज्ञानता का अन्धकार भरा होता है। न तो उन्हें

अपनी पहचान होती है और न निराकार के पार की।

भावार्थ- छः दर्शनों में सृष्टि के छः कारणों की व्याख्या है। दर्शनों के सूक्ष्म रहस्यों को जानने के लिये समाधिस्थ प्रज्ञा की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में दर्शनों के विद्वान मात्र शब्द-जाल और वाद-विवाद में उलझे रहते हैं। मूल वेदों के ज्ञान, तारतम, एवं योग से दूर होने के कारण वे वास्तविक सत्य को जानने से वंचित रह जाते हैं। उपरोक्त चौपाई में दर्शन के विद्वानों को अज्ञान में लिप्त कहने का यही आशय है।

कई लूचे कई मूंडे, कई बढ़ावें केस।

कई काले कई उजले, कई धरें भगुए भेस॥७॥

जैन मत के अनुयायी अपने बालों को नुचवा देते हैं। सन्यासी अपने शिर के बालों को मुड़वा देते हैं तथा

वैष्णव मत के वैरागी या ब्रह्मचारी अपने सिर के बालों को बहुत अधिक लम्बा कर लेते हैं। तान्त्रिक लोग काले वस्त्र पहनते हैं, तो सन्तमत (कबीर, दादू आदि) के अनुयायी श्वेत वस्त्र पहनते हैं। इसी प्रकार सन्यास मत के अनुयायी भगवा वस्त्रों को धारण करते हैं।

कई नेक छेदें कई न छेदें, कई बोहोत फारें कान।

कई माला तिलक धोती, कई धरें बैठे ध्यान॥८॥

कुछ पन्थों के अनुयायी महात्मा अपने कानों को थोड़ा सा छेदते हैं, तो कुछ ऐसे भी होते हैं जो बिल्कुल भी नहीं छेदते। कुछ ऐसे (नाथ) पन्थ वाले महात्मा होते हैं, जो अपने कानों को बहुत अधिक फाड़ (छेद) देते हैं। वैष्णव पन्थ के महात्मा माला, तिलक, एवं धोती का विशेष प्रयोग करते हैं। इनके विपरीत योगियों का समूह

ऐसा भी होता है, जो केवल ध्यान में ही रुचि लेता है।

कई जिंदे मलंग मुल्ला, कई बांग दे मन धीर।

कई जावें पाक होए, कई मीर पीर फकीर॥९॥

कुछ लोग जीते जी ही सांसारिक सुखों का परित्याग कर देने वाले मलंग हैं, तो कुछ मुल्ला के रूप में मस्जिद में नमाज की अजान देकर अपने मन को शान्त करने का प्रयास करते हैं। कुछ लोग मीर, पीर, या फकीर बनकर स्वयं को पवित्र बनने का दावा करते हैं।

भावार्थ— मीर, पीर, एवं फकीर के सम्बन्ध में सन्त वाणी का कथन है—

हद लखे सो मीर, बेहद लखे सो पीर।

हद बेहद दोनों लखे, ताको नाम फकीर॥

उपरोक्त चौपाई के प्रथम चरण में "जिंदे" का तात्पर्य

जीवित रहते ही से है। इसे फकीरों का कोई वर्ग नहीं समझना चाहिए।

कई लंगरी बोदले, कई आलम पढ़े इलम।

कई ओलिए बेकैद सोफी, पर छोड़े नहीं जुलम॥१०॥

मुसलमानों के धार्मिक स्थानों में भोजन बनाने की सेवा करने वाले कुछ लॉंगरी हैं। कुरआन-हदीसों का ज्ञान ग्रहण कर कई लोग बोदरे या आलिम हैं। एक खुदा की इबादत में रहने वाले कई औलिये हैं। शरीयत छोड़कर तरीकत की राह पर चलने वाले बेकैदी हैं तथा खुदा से दोस्ती का दावा करने वाले कई सोफी भी हैं। इतना होने पर भी ये माया में आसक्त होकर कुछ अपने आत्म – स्वरूप पर अत्याचार करना नहीं छोड़ते।

कई सती शीलवन्ती, कई आरजा अरधांग।

जती बरती पोसांगरी, ए अति सोभावे स्वांग॥११॥

कई स्त्रियाँ सती, शीलवन्ती कहलाती हैं, तो कई आर्या, अर्धांगिनी कहलाती हैं। इसी प्रकार पुरुषों में कुछ यति हैं, तो कुछ व्रतों का पालन करने वाले व्रती हैं, और कुछ कठोर तप करने वाले जैन महात्मा हैं। ये अपने आचरण एवं तप से बहुत प्रसिद्ध होते हैं।

भावार्थ- एकमात्र अपने पति से ही प्रेम करने वाली स्त्री सती कहलाती है। माधुर्य गुण वाली स्त्री शीलवन्ती कहलाती है। श्रेष्ठ गुण, कर्म, और स्वभाव वाली स्त्री आर्या कहलाती है। विषयों का त्याग करके तपोमय जीवन बिताने वाले योगी को यति कहते हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि महाव्रतों का पालन करने वाले व्रती कहे जाते हैं।

कई जुगते जोगी जंगम, कई जुगते सन्यास।

कई जुगते देह दमे, पर छूटे नहीं जमफांस॥१२॥

कई लोग सदा चलते रहने वाले योगी के आचरण का विधिवत् पालन करते हैं, तो कई सन्यास के नियमों का कठोरतापूर्वक पालन करते हैं। कई समाधि की प्राप्ति के लिये शरीर को अति कष्टसाध्य साधनाओं से गुजारते हैं, फिर भी मृत्यु के बन्धन से ये मुक्त नहीं हो पाते हैं।

भावार्थ— कुछ योगी एक स्थान पर एक या तीन रात्रि से अधिक नहीं ठहरते। इन्हें जंगम (विचरणशील) योगी कहते हैं। ब्रह्म के साक्षात्कार से ही जन्म-मृत्यु के बन्धन से छुटकारा मिलता है, हठयोग की कष्टसाध्य साधनाओं से नहीं।

कई सिवी कई वैष्णवी, कई साखी समरथ।

लिए जो सारे गुमाने, सब खेलें छल अनरथ॥१३॥

कुछ शैव हैं, तो कुछ वैष्णव हैं। कुछ लोग साखियों की रचना करने में प्रवीण हैं। इस प्रकार सभी लोग अहंकार में मग्न होकर माया के निरर्थक खेल में मग्न हैं।

कई श्रीपात ब्रह्मचारी, कई वेदिए वेदान्त।

कई गए पुस्तक पढ़ते, परमहंस सिद्धान्त॥१४॥

कई पूज्यपाद ब्रह्मचारी के रूप में प्रसिद्ध हैं, तो कई वेद-वेदान्त के ज्ञाता माने जाते हैं। परमहंसों के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थों को पढ़ते-पढ़ते बहुत से लोग इस संसार से चले गये, किन्तु कोई भी (ब्रह्ममुनियों के अतिरिक्त) वास्तविक परमहंस नहीं बन सका।

कई अवतार तीर्थकर, कई देव दानव बड़े बल।

बुजरक नाम धराइया, पर छोड़े न काहू छल॥१५॥

संसार में भगवान विष्णु के २४ अवतार एवं २४ तीर्थकर हो चुके हैं। बहुत शक्ति रखने वाले अनेक देवता और दानव भी हो चुके हैं। इन अवतारों, तीर्थकरों, तथा देव पुरुषों का नाम महान व्यक्तित्व के रूप में लिया जाता है, किन्तु माया के छल से इनमें कोई भी अलग नहीं हो सका अर्थात् ये भी निराकार से परे नहीं जा सके।

कई होदी बोदी पादरी, कई चंडिका चामंड।

बिना हिसाबें खेलहीं, जाहेर छल पाखंड॥१६॥

कोई जैन महात्मा हैं, तो कोई बौद्ध। किसी ने पादरी का भी भेष धारण का रखा है। कुछ लोग चामुण्ड राक्षस का वध करने वाली काली जी (चण्डी) के भक्त हैं। स्पष्ट रूप

से ये लोग माया के आडम्बरों में इतना अधिक फँसे हुए हैं कि उसकी कोई सीमा ही नहीं है।

भावार्थ- जैन मत अनादि परमात्मा की सत्ता को नहीं मानता है। बौद्ध मत में तो न आत्मा का अस्तित्व है और न परमात्मा का। इसी प्रकार, पादरी लोग भी मद्य-माँस एवं भौतिकता से स्वयं को दूर नहीं कर पाते। काली देवी के भक्त तामसिक कार्यों (माँस, शराब आदि) में लिप्त रहते हैं। ये सच्चिदानन्द परब्रह्म की प्रेम लक्षणा भक्ति से कोसों दूर रहते हैं। इसलिये इन्हें उपरोक्त चौपाई में विशेष रूप से माया में लिप्त कहा गया है।

कई डिम्भ करामात, कई जंत्र मंत्र मसान।

कई जड़ी मूली औखदी, कई गुटका धात रसान॥१७॥

कुछ लोग आडम्बरपूर्ण चमत्कारिक क्रियाओं के प्रदर्शन

में लगे रहते हैं, तो कुछ लोग मानव-खोपड़ी लेकर श्मशान में तरह-तरह के मन्त्रों से तान्त्रिक क्रियाओं (यन्त्रों) की सिद्धि करते हैं। कुछ साधू वन में मिलने वाली जड़ी-बूटियों को औषधि के रूप में प्रयोग करके चमत्कारिक उपचार का प्रयास करते हैं। कुछ लोग तरह-तरह की धातुओं (स्वर्ण, चाँदी, लौह आदि) से भस्मों (रसों) की गोलियाँ (औषधियाँ) बनाने में ही स्वयं को धन्य-धन्य मानते हैं।

भावार्थ- वाम मार्गी तान्त्रिक मत वेद-विरुद्ध ऐसा मत है, जिसमें मद्य, माँस, मछली, तथा भोग विलास से ही मुक्ति की प्राप्ति मानी जाती है। यह मत शाक्त सम्प्रदाय का विकृत रूप है। श्मशान में मृतक मनुष्य के शिर (मसान) को लोग तान्त्रिक लेकर मन्त्रों का जप किया करते हैं। वे एक कागज पर किसी भी देवी-देवता का

नाम तथा विशेष प्रकार की आकृति (त्रिभुज, अष्टभुज, चतुर्भुज आदि) बनाकर उसमें कुछ विशेष अंक लिखते हैं। इसे वे मन्त्र कहा करते हैं। किसी निश्चित तिथि को मन्त्रों के जप द्वारा यन्त्र की सिद्धि करते हैं।

कई जुगतें सिध साधक, कई व्रत धारी मुन।

कई मठ वाले पिंड पालें, कई फिरें होए नगिन॥१८॥

कोई साधक अवस्था में युक्तिपूर्वक साधना करके सिद्ध बनने के प्रयास में लगा रहता है, तो कोई तपस्या के कठोर व्रतों का पालन करके मुनि कहलाना चाहता है। मठों में रहने वाले साधु प्रायः ज्ञान-वैराग्य से उदासीन होकर शरीर-पोषण में ही अधिक रुचि लेते हैं। कुछ अपने को पूर्ण त्यागी सिद्ध करने के लिये अवधूत वेश में नग्न होकर ही घूमा करते हैं।

कई खट चक्र नाड़ी पवन, कई अजपा अनहद।

कई त्रिवेणी त्रिकुटी, जोती सोहं राते सब्द॥१९॥

कुछ लोग छः चक्रों, नाड़ियों के शोधन, प्राणायाम, अजपा शब्दों तथा अनहद की मधुर ध्वनियों को सुनने की साधना करते हैं। कुछ लोग इड़ा, पिंगला, एवं सुष्मना के मिलन स्थान में धारणा करके ज्योति के दर्शन और सोऽहम् आदि शब्दों को सुनने के अनुभव में लगे रहते हैं।

भावार्थ— मानव शरीर में आठ चक्र होते हैं, किन्तु साधना में विशेषकर छः चक्रों का प्रयोग होने से यहाँ छः ही चक्रों का वर्णन है। इड़ा, पिंगला, तथा सुष्मना नाड़ियाँ ललाट के भाग में जिस बिन्दु पर मिलती हैं, उसे त्रिकुटी या त्रिवेणी कहते हैं। जो शब्द बिना जपे ध्यान में सुनायी पड़े, उसे अजपा जप कहते हैं। सुरति-शब्द योग

के अनुसार पाँचों ब्रह्माण्डी शब्द (निरञ्जन, ओऽम्, सोऽहम्, शक्ति, तथा ररं) ध्यान में निरन्तर गूँजते रहते हैं, इसलिये इन्हें अजपा जप कहते हैं क्योंकि बिना वाणी से जपे ही ये ध्यान में सुनायी पड़ते हैं। किन्तु इन पाँचों में विशेषकर ओऽम् और सोऽहम् शब्द का ही अजपा शब्द के रूप में प्रचलन है।

कई संत जो महंत, कई देखीते दिगम्बर।

पर छल ना छोड़े काहू को, कई कापड़ी कलंदर॥२०॥

कई सन्त आश्रमों में महन्त बनकर वैभवशाली एवं प्रतिष्ठित जीवन जीते हैं। इनके विपरीत कुछ महात्मा (दिगम्बर जैनी या दिगम्बरी अखाड़े के) पूर्णतया नग्न ही रहते हैं। उनकी कमर में लंगोट तक नहीं होती। कुछ मुस्लिम फकीर ऐसे होते हैं, जो संसार से विरक्त रहते हैं

और काले कपड़े पहनते हैं। किन्तु माया का छल इन्हें भी नहीं छोड़ता है।

भावार्थ- कलन्दर सूफी फकीरों का ऐसा वर्ग है, जो काले वस्त्र धारण करता है। ये काली गुदड़ी रखते हैं, जिसमें अपनी सारी सामग्री रखा करते हैं। काले कपड़ों का प्रयोग करने से इन्हें कापड़ी कहते हैं।

कई आचारी अप्रसी, कई करें कीरतन।

यों खेलें जुदे जुदे, सब परे बस मन॥२१॥

कई लोग शुद्धता के कठोर नियमों (छूत-छात) का पालन करने वाले हैं। कई कीर्तन-भजन में गहरी रुचि रखने वाले हैं। किन्तु ये सभी लोग मन के वशीभूत हैं तथा माया के बन्धनों में बँधकर तरह-तरह के खेल कर रहे हैं।

कई कीरतन करें बैठे, कई जाग जगन।

कई कथें ब्रह्मग्यान, कई तपें पंच अग्नि॥२२॥

कुछ लोग शान्तिपूर्वक बैठे-बैठे परमात्मा का कीर्तन करने में संलग्न हैं , तो कई ऐसे भी हैं जो पूरी रात जागकर अपने आराध्य को याद करने में ही अपना गौरव मानते हैं। कई ब्रह्मज्ञान की चर्चा करते हैं और कई तो गर्मी में पाँच स्थानों पर आग जलाकर उनके मध्य में बैठने को ही सबसे बड़ा तप मानते हैं।

भावार्थ- परमात्मा की स्तुति संगीत के मधुर स्वरों से करना ठीक है, किन्तु इसी को मोक्ष का साधन मान लेना तथा ध्वनि विस्तारक यन्त्र लगाकर दूसरों का ध्यान भंग करना उचित नहीं। यदि आग तापना ही तप है , तो चूल्हा जलाने वाले सभी तपस्वी बन जायें। वस्तुतः तप का अभिप्राय है- "ऋतः तपः दमः तपः सत्यं तपः

स्वाध्याय तपः" अर्थात् यथार्थ सत्य को मानना, इन्द्रियों को विषयों में न जाने देना, मन-वाणी एवं कर्म से सत्य का आचरण करना, धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करना, तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना ही वास्तविक तप है।

कई इन्द्री करें निग्रह, मन ल्याए कष्ट मोह।

कई उर्ध ठाड़ेस्वरी, कई बैठे खुद होए॥२३॥

कई लोग इन्द्रियों को उनके विषयों से रोकने का प्रयास तो करते हैं, किन्तु मोह के बन्धन में होने से ऐसा करने पर उनके मन को बहुत ही कष्ट का अनुभव होता है। कई लोग अपने हाथों को ऊपर करके खड़े होकर तप करते हैं। आधुनिक वेदान्ती तो स्वयं को ब्रह्मस्वरूप मानकर बाह्य रूप से शान्त होकर बैठे रहते हैं।

भावार्थ— किसी भी आर्ष ग्रन्थ में खड़े होकर तथा

अपनी भुजाओं को ऊपर करके तप करने का कोई भी विधान नहीं है। वस्तुतः यह तामसिक कर्म है। पौराणिक लोगों ने तप की उल्टी व्याख्या की है। योगदर्शन में कहा गया है कि "स्थिरं सुखम् आसनम्" अर्थात् जिससे स्थिरतापूर्वक सुख से बैठा जा सके, वही आसन है। केवल वेदान्त के सूत्रों को पढ़ने मात्र से ही कोई ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सकता है, अपितु ध्यान-समाधि का आश्रय लेकर प्रियतम का साक्षात् करने पर ही कोई सच्चे अर्थों में ब्रह्मज्ञानी कहला सकता है।

कई फिरें देस देसांतर, कई करें काओस।

कई कपाली अघोरी, कई लेवें ठंड पाओस॥२४॥

कई महात्मा देश-देशान्तर में घूमते रहते हैं। कई शीत ऋतु की भयानक ठण्डक में भी ओस में साधना करते हैं,

तो कई दिन-रात शीतल जल में खड़े रहकर आराधना करते हैं। कई कापालिक तान्त्रिक हैं, तो कई अघोरी हैं।

भावार्थ- कापालिक अपने हाथ में मृतक मनुष्य का सिर (कपाल) लिये रहते हैं तथा श्मशान में रहकर तान्त्रिक साधना करते हैं। ये मद्य-माँस का सेवन करते हैं। अघोरी भी श्मशान आदि भयानक स्थानों में साधना करते हैं। इनके लिये भक्ष्य-अभक्ष्य का कोई नियम नहीं होता। ये सर्वभक्षी होते हैं।

कई पवन दूध आहारी, कई ले बैठत हैं नेम।

कई कैद ना करे कछुए, ए सब छल के चेन॥२५॥

कुछ लोग मात्र वायु का ही आहार करते हैं, तो कुछ केवल दूध ही पीते हैं। कुछ लोग साधना के कठोर नियमों का पालन करते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो

किसी भी नियम से नहीं बँधते हैं। इस प्रकार तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण इतनी ऊँची तपस्या करने वाले भी माया के छल के शिकार हो जाते हैं।

कई फल फूल पत्र भखी, कई आहार अलप।

कई करें काल की साधना, जिया चाहें कल्प॥२६॥

कुछ साधक फल, फूल, तथा पत्ते खाकर ही अपना गुजारा करते हैं, तो कुछ अति अल्पाहार करते हैं। कुछ लोग अपनी उम्र को बढ़ाने के लिये साधना करते हैं। उनकी एक कल्प तक जीवित रहने की इच्छा होती है।

भावार्थ— एक कल्प में ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष होते हैं। जब योगी पञ्चभूतों पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो वह एक कल्प तक अपने तन को रख सकता है। उसका शरीर योगाग्निमय हो जाता है। इसका सांकेतिक वर्णन

श्वेता. उपनिषद में किया गया है।

कई धारा गुफा झापां, कई जो गालें तन।

कई सूके बिना खाए, कई करे पिंड पतन॥२७॥

कुछ साधक नदियों की धारा के पास, तो कुछ गुफाओं में साधना करते हैं। वे पर्वत की चोटी से छलांग लगा देते हैं या बर्फ में अपने शरीर को गला देते हैं। कई भोजन न करके अपने शरीर को सुखा देते हैं और कई अन्य क्रियाओं से अपने शरीर को समाप्त कर देते हैं।

यों वैराग जो साधना, करें जुदे जुदे उपचार।

यों चले सब पंथ पैड़े, यों खेले सब संसार॥२८॥

इस प्रकार वैराग्य एवं साधना के मार्ग का अनुसरण करते हुए अलग-अलग पद्धतियों से लोग अपने भवरोग

का उपचार करने का प्रयास करते हैं। सभी मत-पन्थों की राह इसी के ऊपर केन्द्रित होती है। इस प्रकार सारा संसार शरीर, मन, तथा बुद्धि के द्वारा होने वाली साधना पर ही निर्भर रहता है। कोई भी आत्मिक दृष्टि से चलने का मार्ग नहीं अपना पाता।

खेलें सब देखा देखी, ज्यों चले चींटी हार।

यों जो अंधे गफलती, बांधे जाएँ कतार॥२९॥

जिस प्रकार चींटियाँ एक-दूसरे के पीछे आँख मूँदकर चला करती हैं जिससे उनकी पंक्तिबद्धता दिखायी पड़ती है, उसी प्रकार अज्ञानता और संशय में डूबे हुए लोग एक-दूसरे की देखा-देखी राह अपनाते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि ये भी सम्प्रदायों की पंक्ति लगाकर चलने के लिये विवश हो जाते हैं।

भावार्थ- तारतम ज्ञान मे रहित होने पर संशय नहीं मिटते और परमधाम का लक्ष्य न होने से आत्मिक दृष्टि का मार्ग भी नहीं मिलता। परिणाम स्वरूप निराकार को कोई भी पार नहीं कर पाता है। आगे की चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

कोई ना चीन्हें आप को, ना चीन्हें अपनो घर।

जिमी पैड़ा ना सूझे काहूँ, जात चले इन पर॥३०॥

इस संसार में तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण किसी को भी न तो अपनी पहचान है और न अपने मूल घर की। किसी को भी यह समझ में नहीं आता है कि यह संसार कैसा है और इससे परे जाने का मार्ग क्या है? वे आँख मूँदकर वैकुण्ठ-निराकार के ही मार्ग पर चलते जा रहे हैं।

बाजीगर न्यारा रहया, ए खेलत कबूतर।

तो कबूतर जो खेल के, सो क्यों पावें बाजीगर॥३१॥

इस खेल का नियन्त्रक (बाजीगर) अक्षर ब्रह्म का मन है। सभी जीव इस खेल के कबूतर हैं, अर्थात् उनके स्वाप्निक मन के सांकल्पिक प्रतिबिम्ब रूप हैं। ऐसी अवस्था में यह कैसे सम्भव है कि स्वप्न के जीव निराकार से परे उस अक्षर ब्रह्म या उनके मन स्वरूप अव्याकृत को पा सकें।

अब देखो ले माएने, खेल बिना हिसाब।

आप अकलें देखिए, ए रच्यो खसमें ख्वाब॥३२॥

हे साथ जी! अब आप उपरोक्त चौपाई के आशय पर विचार कीजिए। माया की यह सृष्टि तो अनन्त विस्तार वाली है। आप इसे जाग्रत बुद्धि के प्रकाश में देखें, तो

यह स्पष्ट होगा कि धाम धनी के आदेश से यह स्वप्नमयी जगत बनाया गया है।

धरे नाम खसम के, जुदे जुदे आप अनेक।

अनेक रंगे संगे ढंगे, बिध बिध खेलें विवेक॥३३॥

संसार में अलग-अलग पन्थों के अनुयायियों ने अलग-अलग भाषाओं में प्रियतम परब्रह्म के अनेक भिन्न-भिन्न नाम रखे हैं। वे परब्रह्म की सान्निध्यता को प्राप्त करने के लिये उनकी अनेक प्रकार से महिमा गाते हैं तथा अनेक पद्धतियों से उनकी उपासना भी करते हैं। इस प्रकार वे अपने विवेक के अनुसार अनेक प्रकार से आध्यात्मिक क्षेत्र में विचरण करते हैं।

खसम एक सबन का, नाहीं न दूसरा कोए।

एह विचार तो करे, जो आप सांचे होए॥३४॥

परम सत्य तो यह है कि सारी सृष्टि का परमात्मा एकमात्र अक्षरातीत ही है। किन्तु इस प्रकार का उच्च विचार तो उनके अन्दर तभी आता जब वे स्वाप्निक नहीं होते।

भावार्थ- यद्यपि वैदिक काल में प्रायः सभी लोग एक ही ब्रह्म की उपासना करते थे, किन्तु अक्षरातीत का ज्ञान उन्हें भी नहीं था। तमोगुण की वृद्धि के साथ-साथ अज्ञान की भी वृद्धि होती गयी। मूर्तिपूजक हिन्दू तो एक-अद्वैत ब्रह्म से अलग हजारों देवी-देवताओं तथा पत्थरों, वृक्षों, भूत, प्रेतों की पूजा करते ही हैं, मुस्लिम एवं क्रिश्चियन की भी निष्ठा कलंकित है। मुस्लिम लोग भी पीरों एवं फकीरों की मजारों पर शीश झुकाते हैं, तो

क्रिश्चयन भी परमात्मा एवं अपने मध्य में जीसस को पूज्य मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि स्वाप्निक जीवों में परब्रह्म के प्रति एकनिष्ठ प्रेम नहीं होता। उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण का यही आशय है।

खेल खेलें अनेक रब्दे, मिनों मिने करें क्रोध।

जैसे मछ गलागल, छोड़े न कोई ब्रोध॥३५॥

संसार में लोग धर्म के नाम पर माया का खेल खेल रहे हैं। वे सैद्धान्तिक विषयों पर मतभेद, स्वार्थ, या अहंकार के कारण आपस में क्रोधपूर्वक वैसे ही लड़ते हैं, जैसे बड़ी मछलियाँ आपस में एक-दूसरे (छोटे) को निगल जाता करती हैं, जिसके परिणाम स्वरूप उनमें हमेशा ही विरोध बना रहता है।

प्रकरण ॥१४॥ चौपाई ॥३४५॥

पंथ पैडों की खेंचा खेच

साम्प्रदायिक सिद्धान्तों में विरोधाभास

इस प्रकरण में यह बात दर्शायी गयी है कि किस प्रकार सभी मत-पन्थों के दार्शनिक सिद्धान्तों में विरोध है। तारतम ज्ञान का प्रकाश न होने से वे वास्तविक सत्य का निर्णय करने में असमर्थ हैं।

कोई कहे दान बड़ा, कोई केहेवे ग्यान।

कोई कहे विग्यान बड़ा, यों लरें सब उनमान॥१॥

कोई कहता है कि दान बड़ा है और कोई कहता है कि ज्ञान। किसी का यह भी कहना है कि विज्ञान इससे भी महान है। इस प्रकार सभी विद्वान अपने अनुमान के ज्ञान के आधार पर विवाद करते हैं।

भावार्थ— धन के दान की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है, किन्तु

ज्ञान का दान ज्ञान से भी श्रेष्ठ है क्योंकि यदि ज्ञान का दान करने (प्रसार करने की) की प्रवृत्ति न हो तो ज्ञान का लोप हो जायेगा। विज्ञान (मारिफत) से ही ज्ञान प्रकट होता है, इसलिये वह महान है।

कोई केहेवे करम बड़ा, कोई केहेवे काल।

कोई कहे साधन बड़ा, यों लरें सब पंपाल॥२॥

कोई कहता है कि कर्म बड़ा है, किन्तु कोई कहता है कि काल बड़ा है। कोई साधना को बड़ा कहता है। इस प्रकार सभी व्यर्थ में लड़ा करते हैं।

भावार्थ— "मोह अग्यान भरमना, करम काल और सुंन" के कथन के आधार पर कर्म और काल एकार्थवाची हैं। यदि व्यवहारिक रूप में देखा जाये, तो कोई भी कर्म काल (अवधि) के बिना नहीं हो सकता। निष्काम कर्म

मोक्ष की प्राप्ति कराकर काल के बन्धन से छुड़ा सकता है। इसी प्रकार योग साधना के द्वारा निर्बीज समाधि की प्राप्ति करके कर्म और काल के बन्धन से छूटा जा सकता है, किन्तु योग साधना में भी प्रारम्भिक अवस्था में कर्म (आसन, प्राणायाम, धारणा आदि) एवं अवधि का योग होता है। इस प्रकार ये तीनों एक-दूसरे के पूरक हैं। योग समाधि के द्वारा प्राप्त होने वाली निर्बीज समाधि की अवस्था त्रिगुणातीत होने से सर्वोपरि कही जा सकती है।

कोई कहे बड़ा तीरथ, कोई कहे बड़ा तप।

कोई कहे शील बड़ा, कोई केहेवे सत॥३॥

कोई तीर्थ को श्रेष्ठ कहता है, तो कोई तप को। किसी के मतानुसार शील सर्वोपरि है, तो कोई सत्य को ही सर्वश्रेष्ठ मानता है।

भावार्थ- "नहि सत्यात् परो धर्मः" के कथनानुसार सत्य से परे कुछ भी नहीं है। अथर्ववेद के कथन "सत्येन उत्ताभिता भूमिः" के आधार पर यही कह सकते हैं कि सत्य से ही पृथ्वी टिकी है। वही सत्य तीर्थ एवं तप के अन्तर्गत आता है। सत्य का पालन, स्वाध्याय, ध्यान आदि तीर्थ हैं, क्योंकि इनसे भवसागर से तरा जाता है। इसी प्रकार "ऋतं तपः दमः तपः सत्यं तपः स्वाध्याय तपः" भी तप को तीर्थ के समानान्तर घोषित करते हैं। ये सभी गुण शील में समाहित हो जाते हैं।

जिस प्रकार, किसी व्यक्ति के दोनों नेत्रों या दोनों कानों में यह निर्णय करना कठिन है कि बाँया नेत्र श्रेष्ठ है या दाहिना, बाँया कान श्रेष्ठ है अथवा दाहिना? तो इसका उत्तर यही है कि दोनों की महत्ता अपने-अपने स्तर पर समान है। उसी प्रकार इस प्रकरण के अधिकतर प्रसंगों

में यही स्थिति है।

कोई कहे विचार बड़ा, कोई कहे बड़ा व्रत।

कोई कहे मत बड़ी, या विध कई जुगत॥४॥

कुछ लोग विचार को बड़ा कहते हैं, तो कुछ व्रत को। किसी के मतानुसार सिद्धान्त बड़ा है। इस प्रकार लोग अनेक प्रकार की राहों पर चलते हैं।

भावार्थ- विचारों के आधार पर ही व्रत का पालन होता है, किन्तु विचार के मूल बीज के रूप में सिद्धान्त ही निहित होता है, क्योंकि जिसका जैसा सिद्धान्त होता है वैसा ही वह विचार करता है। उदाहरणार्थ- एक पौराणिक व्यक्ति अपने सिद्धान्तों के अनुसार ही विचार करता है और उससे विपरीत विचारधारा वाला वैदिक विद्वान अपने सिद्धान्तों के अनुसार विचार करता है।

किन्तु यह भी तथ्य है कि श्रेष्ठ विचार ही (स्वमत अनुसार) सिद्धान्त के रूप में परिभाषित होते हैं।

कोई कहे बड़ी करनी, कोई कहे मुगत।

कोई कहे भाव बड़ा, कोई कहे भगत॥५॥

किसी का कथन है कि आचरण ही श्रेष्ठ है, तो कोई मुक्ति को श्रेष्ठ मानता है। कोई भाव को बड़ा कहता है, तो कोई भक्ति को।

भावार्थ- श्रेष्ठ आचरण (ज्ञान, वैराग्य, ध्यान आदि) के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इसी प्रकार बिना भाव के भक्ति भी नहीं हो सकती। इस प्रकार आचरण एवं भाव को कारण या बीज माना जा सकता है, और मुक्ति तथा भक्ति को उसका कार्य रूप फल या वृक्ष माना जा सकता है। किन्तु यह भी ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि

जिस बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है, वही वृक्ष पूर्व के बीज जैसे सैकड़ों-हजारों बीजों को उत्पन्न करने का कारण बनता है। यदि आम के छोटे से पौधे को जड़ से ही उखाड़ दिया जाये, तो वह बड़ा होकर नये बीज उत्पन्न नहीं कर सकेगा। ऐसी स्थिति में वह कारण प्रतीत होने लगता है। इसी प्रकार मुक्ति की कामना से ही श्रेष्ठाचरण किया जाता है तथा भक्ति में लगने पर ही शुद्ध भाव परिपक्व होता है। ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

कोई कहे कीरतन बड़ा, कोई कहे श्रवन।

कोई कहे बड़ी वंदनी, कोई कहे अरचन॥६॥

कोई कहता है कि कीर्तन करना श्रेष्ठ है, तो कोई कहता है कि श्रवण करना। किसी के मतानुसार वन्दना करना

श्रेष्ठ है, तो कोई अर्चना (पूजा) को सर्वोपरि मानता है।

भावार्थ- कीर्तन, श्रवण, वन्दन, एवं अर्चन सभी नवधा भक्ति के अंग हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि कीर्तन किया जाये और उसे कोई सुनने वाला ही न हो, तो उसकी प्रासंगिकता ही क्या है? यदि यह कहा जाये कि वह आत्म-कल्याणार्थ है, तो कीर्तन करने वाले ने भी तो पहले कभी श्रवण किया ही होगा, तभी उसके अन्दर कीर्तन करने का भाव जाग्रत हुआ है। वन्दन से रहित अर्चन निष्प्रयोजन है। वन्दन का भाव अर्चन को वैसे ही सार्थक बनाता है, जैसे प्राण शरीर को। किन्तु यदि शरीर न रहे तो प्राण की क्रिया कैसे होगी और यदि प्राण ही न रहे तो शरीर भी निर्जीव हो जायेगा।

कोई कहे ध्यान बड़ा, कोई कहे धारन।

कोई कहे सेवा बड़ी, कोई कहे अरपन॥७॥

कोई ध्यान को बड़ा कहता है, तो कोई धारणा को। किसी का कथन है कि सेवा बड़ी है, तो कोई आत्म-समर्पण को ही सर्वोपरि मानता है।

भावार्थ- सृष्टि में किसी भी पदार्थ के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। किसी सुन्दर महल के शिखर को देखकर उसकी नींव की महत्ता को समाप्त नहीं किया जा सकता। वस्तुतः संसार की प्रवृत्ति ही परिणाम को देखने की होती है। वह लक्ष्य-प्राप्ति के साधन को उतनी महत्ता नहीं देता जितना लक्ष्य को।

निःसन्देह ध्यान ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाला है, किन्तु धारणा के बिना उसका अस्तित्व ही कैसे हो सकता है? धारणा का परिपक्व रूप ही तो ध्यान है। सेवा

धर्म बहुत बड़ा है, किन्तु स्वयं को समर्पित किये बिना करी गयी सेवा वास्तविक सेवा नहीं हो सकती।

कोई कहे संगत बड़ी, कोई कहे बड़ा दास।

कोई कहे विवेक बड़ा, कोई कहे विस्वास॥८॥

किसी का कहना है कि सत्संगति सबसे बड़ी है, तो कोई दास भावना (सेवा के लिये) को सर्वोपरि मानता है। कोई विवेक को श्रेष्ठ मानता है, तो कोई विश्वास को।

भावार्थ- "सत्संगतिः कथय किम् न करोति पुंसाम्" अर्थात् सत्संगति मनुष्यों का कौन सा काम सिद्ध नहीं करती। इस कथन से यह सिद्ध है कि सत्संगति की महिमा बहुत अधिक है, सम्भवतः दास भावना से भी अधिक। सच्चे हृदय की दासत्व भावना से की गयी सेवा निश्चित रूप से किसी महान व्यक्तित्व को प्रसन्न कर

सकती है, किन्तु सत्संगति जीवन में निर्णायक मोड़ ला देती है।

विवेक दृष्टि से किया गया विश्वास ही आध्यात्मिक जीवन को सफल बनाता है। अविवेक से किया गया विश्वास अन्धविश्वास के रूप में परिवर्तित हो जाता है, जो पतन का कारण बनता है। इस प्रकार विवेक की श्रेष्ठता परिलक्षित होती है।

कोई कहे स्वांत बड़ी, कोई कहे तामस।

कोई कहेवे पन बड़ा, यों खेलें परे परबस॥९॥

कोई कहता है कि शान्ति सबसे बड़ी है, तो कोई तामस को सबसे बड़ा मानता है। किसी के मतानुसार प्रण करना सबसे बड़ा है। इस प्रकार संसार के लोग माया के अधीन होकर भवसागर में भटकते रहते हैं।

भावार्थ- प्रकाश, क्रिया, एवं स्थिति- सत्व, रज, तथा तमस् के गुण हैं। सतोगुण में ही शान्ति है, किन्तु तमस गुण के न रहने पर अस्तित्व पर ही प्रश्न खड़ा हो जाता है। निःसन्देह तमस का त्याग करके ही अध्यात्म के चरम पर पहुँचा जा सकता है, किन्तु सृष्टि में इसके अस्तित्व को नकारा भी नहीं जा सकता है।

कोई कहे सदा सिव बड़ा, कोई कहे आद नारायन।

कोई कहे आदें आद माता, यों लरें तानों तान॥१०॥

कोई कहता है कि सदाशिव बड़े हैं, तो कोई आदिनारायण को बड़ा कहता है। कोई आदिशक्ति (महामाया) को बड़ा मानता है। इस प्रकार आपस में अपनी ही बात को सत्य सिद्ध करने के लिये सभी मतों के अनुयायी विवाद करते हैं।

भावार्थ- शैवों के इष्ट सदाशिव हैं, वैष्णवों के आराध्य आदिनारायण हैं, तथा शाक्तों की इष्ट आदिशक्ति हैं। इस प्रकार सभी पक्षपातपूर्ण तरीकों से अपने ही उपास्य को बड़ा कहते हैं, जो उचित नहीं है। उपरोक्त चौपाई में आदिनारायण को ही सर्वोपरि मानना पड़ेगा क्योंकि वे ही सृष्टि के प्रथम पुरुष हैं। सदाशिव एवं आदिशक्ति की उत्पत्ति उनके बाद ही होती है।

कोई कहे आत्म बड़ी, कोई कहे परआत्म।

कोई कहे अहंकार बड़ा, जो आद का उत्पन॥११॥

किसी का कथन है कि आत्मा सर्वोपरि है, तो कोई परात्म को सर्वश्रेष्ठ मानता है। कोई सृष्टि के प्रारम्भ में ही उत्पन्न होने वाले अहंकार को सर्वोपरि बताता है।

भावार्थ- लौकिक कार्य के लिये अहंकार का होना

अनिवार्य है, क्योंकि इसके बिना जीव (आत्मा) से कोई भी कार्य नहीं हो सकता, किन्तु यदि आत्मा का ही अस्तित्व न हो तो मात्र अहंकार क्या कर लेगा? अहंकार जड़ है, उसमें चेतना जीव के द्वारा ही आती है। इसी प्रकार, समष्टि रूप में आदिनारायण के द्वारा ही महत्तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है।

कोई कहे सकल व्यापी, देखी तां सब ब्रह्म।

कोई कहे ए न लहया, यों लरें भूले भरम॥१२॥

किसी का कथन है कि ब्रह्म सर्वव्यापक है। वह आत्मिक दृष्टि से कण-कण में दृष्टिगोचर हो सकता है। किसी का मत है कि इस संसार में उसे पाया ही नहीं जा सकता। इस प्रकार संसार के लोग भ्रम के शिकार होकर आपस में लड़ते ही रहते हैं।

कोई कहे सुन्य बड़ी, कोई कहे निरञ्जन।

कोई कहे निरगुन बड़ा, यों लरें वेद वचन॥१३॥

कोई शून्य को बड़ा कहता है, तो कोई निरञ्जन को, और कोई निर्गुण को। इस प्रकार धर्मग्रन्थों के वचनों को लेकर संसार के लोग विवाद करते हैं।

भावार्थ- निरञ्जन का अर्थ होता है- हाथ, पैर आदि अवयवों से रहित। इसी प्रकार निर्गुण का तात्पर्य है - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध से रहित। महत्तत्त्व तथा अहंकार को भी निरञ्जन या निर्गुण तो कह सकते हैं, किन्तु शून्य नहीं, यद्यपि ये शून्य जैसे ही प्रतीत होते हैं। मोहतत्त्व को ही शून्य कहते हैं, उसे ही निरञ्जन या निर्गुण भी कहते हैं। इसी प्रकार माया के गुणों से रहित ब्रह्म को भी निर्गुण कहा जाता है। एक ही शब्द अलग-अलग प्रसंगों में अलग-अलग नामों में प्रयुक्त होता है ,

जिससे विवाद की उत्पत्ति होती है।

कोई कहे आकार बड़ा, कोई कहे निराकार।

कोई केहेवे तेज बड़ा, यों लरें लिए विकार॥१४॥

कोई परमात्मा को साकार मानना उचित समझता है, तो किसी के लिये परमात्मा केवल निराकार है। किसी के मतानुसार वह तेज स्वरूप है। इस प्रकार लोग अज्ञानता का विकार लेकर लड़ते रहते हैं।

कोई कहे पारब्रह्म बड़ा, कोई कहे पुरसोत्तम।

यों वेद के वाद अंधकारे, करें लड़ाई धरम॥१५॥

किसी की दृष्टि में परब्रह्म सर्वोपरि है, तो किसी के मत में पुरुषोत्तम। इस प्रकार धर्मग्रन्थों के आशयों को न समझने के कारण जो सिद्धान्त निरूपित किये जाते हैं,

उनमें अज्ञानता का अन्धकार भरा होता है, जिससे धर्म के नाम पर विवाद खड़ा होता है।

भावार्थ- तारतम ज्ञान की दृष्टि से क्षर-अक्षर से परे उत्तम पुरुष ही सच्चिदानन्द अक्षरातीत परब्रह्म हैं। इस प्रकार परब्रह्म और पुरुषोत्तम एकार्थवाची सिद्ध होते हैं। किन्तु पौराणिक मान्यता में श्री राम चन्द्र जी को मर्यादा पुरुषोत्तम और श्री कृष्ण जी को लीला पुरुषोत्तम कहकर विवाद किया जाता है। तारतम ज्ञान के अभाव में इस प्रकार के मतभेदों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

जाहिर झूठा खेलहीं, हिरदे अति अंधेर।

कहें हम सांचे और झूठे, यों फिरें उलटे फेर॥१६॥

ये सांसारिक लोग प्रत्यक्ष रूप से झूठे मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। इनके अन्दर बहुत अधिक अज्ञानता का

अन्धकार छाया रहता है। ये कहते हैं कि केवल हम ही सच्चे हैं। हमारे अतिरिक्त अन्य सभी झूठे हैं। इस प्रकार जन्म-मरण के चक्र में भटकते रहते हैं।

पंथ सारों की एह मजल, अनेक विध वैराट।

ए जो विगत खेल की, सब रच्यो छल को ठाट॥१७॥

इस संसार में अनेक भ्रमपूर्ण सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले मत-पन्थों की यही स्थिति है। संसार का यह सम्पूर्ण वैभव माया द्वारा रचा गया है। यही इस संसार की वास्तविकता है।

कोई हेम गले अगनी जले, कोई भैरव करवत ले।

खसम को पावे नहीं, जो तिल तिल काटे देह॥१८॥

भले ही कोई बर्फ में गल जाये, अपने शरीर को आग में

जला डाले, पर्वत से छलांग लगा ले, अथवा अपने शरीर को आरे से चिरवाकर बहुत छोटे-छोटे टुकड़े करा ले, फिर भी तारतम ज्ञान के प्रकाश एवं प्रियतम की कृपा के बिना कोई भी अक्षरातीत का साक्षात्कार नहीं कर सकता है।

भेख जुदे जुदे खेल हीं, जाने खेल अखंड।

ए देत देखाई सब फना, मूल बिना ब्रह्मांड॥१९॥

सभी मत-पन्थों के अनुयायी अपनी अलग-अलग वेश-भूषा को धारण कर संसार के सुखों में मग्न हैं। वे ऐसा मान बैठे हैं जैसे कि यह संसार ऐसे ही चलता रहेगा, यह कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है, जबकि सच्चाई यह है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्वप्नवत् है। इसका कोई मूल आधार नहीं है। संसार के रूप में जो

कुछ भी दिखायी पड़ रहा है, वह नश्वर है।

भावार्थ- त्रैतवाद के अनुयायी इस संसार को अनादि कारण प्रकृति से उत्पन्न हुआ मानते हैं। अथर्ववेद में स्पष्ट लिखा है कि "माया ह जज्ञे मायया" अर्थात् अनादि कारण प्रकृति, जिसे किसी भी स्थूल प्रमाण एवं शब्द प्रमाण से नहीं जाना जा सकता, वह भी ब्रह्म की अनादि चैतन्य माया से प्रकट हुई है। ऐसी स्थिति में इस संसार को बिना मूल का अर्थात् स्वाप्निक प्रकृति से उत्पन्न हुआ मानना पड़ेगा।

खसम एक सबन का, नाहीं न दूसरा कोए।

ए विचार तो करे, जो आप सांचे होए॥२०॥

यह निर्विवाद सत्य है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का परमात्मा एक ही है— अक्षरातीत। उसके अतिरिक्त अन्य किसी को

भी परमात्मा कहलाने की शोभा नहीं है। किन्तु इस प्रकार का विचार तो उनके मन में तभी आ सकता था, यदि वे मोह से उत्पन्न नहीं हुए होते (स्वाप्तिक नहीं होते)।

खेलें सब बेसुध में, कोई बोल काढ़े विसाल।

उतपन सारी मोह की, सो होए जाए पंपाल॥२१॥

सृष्टि के सभी प्राणी अज्ञानता की नींद में भटक रहे हैं। इनमें कोई-कोई सौभाग्यवश आध्यात्मिक तत्व ज्ञान की बहुत ऊँची बातें भी कर देता है, किन्तु इनकी उत्पत्ति मोह से हुई है, इसलिये इनका कहा हुआ वचन निरर्थक हो जाता है, क्योंकि ये उसे प्रत्यक्ष अनुभव में नहीं ला पाते।

भावार्थ— संसार के विद्वान परब्रह्म की महिमा से

सम्बन्धित बहुत श्रेष्ठ बातें कह देते हैं , किन्तु तारतम्य ज्ञान से रहित होने के कारण वे परब्रह्म के धाम,स्वरूप, एवं लीला के सम्बन्ध में न तो कुछ जान पाते हैं और न ही साक्षात्कार कर पाते हैं।

बिना दिवालें लिखिए, अनेक चित्रामन।

सो क्यों पावे खुद को, जाको मूल मोह सुन॥२२॥

जिस प्रकार बिना किसी दीवार के हवा में अनेकों प्रकार के कितने भी चित्र क्यों न बना लिये जायें किन्तु उनका अस्तित्व नहीं होता है क्योंकि उनका कोई आधार (दीवार, कागज आदि) नहीं होता, उसी प्रकार संसार के सभी जीव मोहतत्व (निराकार) से उत्पन्न हुए हैं , इसलिये न तो ये अपने स्वरूप की वास्तविकता को जान पाते हैं और न परब्रह्म को जान पाते हैं।

अनेक किव इत उपजे, वैराट सचराचर।

ए छल मोहोरे छल को, खेलत हैं सत कर॥२३॥

इस चराचर जगत में धर्मग्रन्थों की रचना करने वाले अनेक कवि रूपी विद्वान हुए हैं, किन्तु तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण ये परिवर्तनशील नश्वर संसार को ही अखण्ड मानकर अपना ज्ञान फैलाते हैं।

प्रकरण ॥१५॥ चौपाई ॥३६८॥

वैराट का कोहेड़ा

कोहड़े का अर्थ होता है कुहरा या कुहासा (धुन्ध), जिसमें दिन में भी निकट की कोई वस्तु दिखायी नहीं पड़ती। विराट के कोहरे का आशय है— इस संसार की अज्ञानता के बन्धन। वे किस प्रकार के हैं? इस प्रकरण में संक्षिप्त रूप से वही दर्शाये गये हैं।

वैराट का फेर उलटा, मूल है आकास।

डारें पसरी पाताल में, यों कहे वेद प्रकास॥१॥

इस ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष की रचना उलटी है। कठोपनिषद् तथा गीता १५/१,२ में इसके ऊपर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। इन ग्रन्थों में यह बताया गया है कि किस प्रकार से विराट रूपी वृक्ष की जड़े आकाश में हैं तथा इसकी डालियाँ पाताल में फैली हुई हैं।

भावार्थ- कलस हिन्दुस्तानी २/२१ की व्याख्या में इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। उपरोक्त चौपाई में वेद का आशय केवल चारों वेदों से नहीं , अपितु वैदिक ग्रन्थों से है।

फल डारें अगोचर, आड़ी अंतराए पाताल।

वैराट वेद दोऊ कोहेड़ा, गूंथी सो छल की जाल॥२॥

इस ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष के फल एवं इसकी डालियाँ दिखायी नहीं देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे पाताल में छिप गयी हों। ब्रह्माण्ड और वेद दोनों ही धुन्ध के समान है। इनके रूप में माया का जाल गुँथा हुई प्रतीत होता है।

विध दोऊ देखिए, एक नाभ दूजा मुख।

गूँथी जालें दोऊ जुगतें, मान लिए दुख सुख॥३॥

इन दोनों की वास्तविकता देखिये। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति नारायण के नाभिकमल से हुई है तथा वेद की उत्पत्ति उनके मुख से हुई है। इन दोनों ने मिलकर बहुत ही युक्तिपूर्वक अन्धकार की ऐसी जाली गुँथी है, जिसमें फँसकर जीव कर्म बन्धन में फँसा रहता है तथा सुख और दुःख को भोगना ही अपनी नियति (भाग्य) मान लेता है।

भावार्थ— शरीर में स्थित नाभि सम्पूर्ण शरीर का केन्द्र होती है। जिस प्रकार मुख, हाथ, चरण आदि अंगों के सम्बोधन में कमल शब्द का प्रयोग किया जाता है, जैसे— मुखकमल, हस्तकमल, चरणकमल, उसी प्रकार नाभि के साथ भी कमल शब्द का प्रयोग किया गया है। इसे

स्थूल कमल कदापि नहीं मानना चाहिये।

भाव यह है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत के स्वाप्निक स्वरूप आदिनारायण के निर्देशन (केन्द्रीकरण) में हुई, अर्थात् आदिनारायण ही सृष्टि के केन्द्र में हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णित है कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति सरलतापूर्वक श्वास लेता है, उसी प्रकार ब्रह्म के स्वाप्निक (सांकल्पिक) रूप आदिनारायण ने अति सरलतापूर्वक वेदों का अथाह ज्ञान भी सृष्टि में प्रकट कर दिया।

कोहेड़े दोऊ दो भांत के, एक वैराट दूजा वेद।

जीव जालों जाली बांधे, कोई जाने न छल भेद॥४॥

विराट (ब्रह्माण्ड) और वेद— ये दोनों ही दो प्रकार के कोहरे के समान हैं। जीव इनके बन्धन में बँध जाता है।

इस प्रकार माया के इस छलपूर्ण भेद को कोई भी समझ नहीं पाता है।

भावार्थ- इस विराट (सृष्टि) में जो अविद्या रूपी धुन्ध है, जिसके कारण मानव की अन्तर्दृष्टि खुल नहीं पाती है, उसका परिचय इस प्रकरण में दिया गया है। योग दर्शन के अनुसार अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, अनात्मा को आत्मा, तथा दुःख को सुख मानना ही अविद्या है। अपौरुषेय वेदों के ज्ञान को भी धुन्ध क्यों कहा गया है, इसका विवरण अगले प्रकरण "वेद का कोहेड़ा" में दिया गया है।

देखलावने तुम को, कोहेड़े किए ए।

बताए देऊं आंकड़ी, छल बल की है जेह॥५॥

हे साथ जी! आपको दिखाने के लिये ही माया के ये

दोनों कोहरे बनाये गये हैं। ये दोनों माया के ही छल की शक्ति के स्वरूप हैं। अब मैं इस गुत्थी (रहस्य) को स्पष्ट करती हूँ।

आंकड़ी एक इन भांत की, बांधी जोर सों ले।

आतम झूठी देखहीं, सांची देखें देह॥६॥

अब मैं उस रहस्य को उजागर करती हूँ जिसके बन्धन में सारा संसार बँधा हुआ है। संसार के लोगों को आत्मा झूठी दिखायी देती है तथा शरीर ही सत्य दिखायी देता है।

भावार्थ— स्थूल शरीर आँखों से दिखायी देता है, इसलिये यह सत्य प्रतीत होता है, किन्तु आत्मा सूक्ष्म होने से दिखायी नहीं देती। फलतः उसके अस्तित्व पर ही प्रश्न खड़ा कर दिया जाता है। यह एक प्रकार की

अविद्या (धुन्ध, कोहरा) है।

करें सगाई देह सों, नहीं आत्मसों पेहेचान।

सनमंध पाले इनसों, ए लई सबों मान॥७॥

संसार के लोगों को आत्मतत्त्व की पहचान नहीं होती है। वे अपना सारा ध्यान शरीर के ऊपर ही केन्द्रित किये रहते हैं। सभी ऐसा मान लेते हैं कि हमें अपने इस शरीर से ही सारा सम्बन्ध रखना है।

भावार्थ— शरीर धर्म का साधन है, साध्य नहीं। साध्य मात्र आत्मा है, जिसको जानने के लिये ही साधन रूप में शरीर का उपयोग किया जाता है। इस दृष्टि से इसका पोषण एवं संरक्षण तो ठीक है, किन्तु अनावश्यक मोह कदापि उचित नहीं। जब तक शरीर के प्रति आसक्ति बनी रहेगी, तब तक समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती

है।

नहवाए चरचे अरगजे, प्रीतें जिमावें पाक।

सनेह करके सेवहीं, पर नजर बांधी खाक॥८॥

लोग शरीर को सुगन्धित तेल से मालिश करके स्नान कराते हैं तथा प्रेमपूर्वक भोजन कराते हैं। बहुत स्नेह से उसकी सेवा भी करते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि अपने नश्वर तन से हटकर अन्य (आत्मा) की ओर नहीं जाती।

जीव गया जब अंग थें, तब अंग हाथों जालें।

सेवा जो करते सनेह सों, सो सनमंध ऐसा पालें॥९॥

जो सगे-सम्बन्धी इतने प्रेम से शरीर की सेवा किया करते थे, वे ही जीव के शरीर छोड़ देने के पश्चात् उसे अपने हाथों से जलाकर राख कर देते हैं। उनका शरीर से

मात्र इतना ही सम्बन्ध होता है।

हाथ पांऊं मुख नेत्र नासिका, सब सोई अंग के अंग।

तिन छूत लगाई घर को, प्यार था जिन संग॥१०॥

शरीर के हाथ, पैर, मुख, नेत्र, नासिका आदि जिन अंगों से पहले सबको बहुत प्रेम रहा करता था, मृत्यु के पश्चात् भी वे अंग यद्यपि वैसे ही रहते हैं, किन्तु अब उन्हीं अंगों से सबको छूत लगने लगती है।

अंग सारे प्यारे लगते, खिन एक रहयो न जाए।

चेतन चले पीछे सो अंग, उठ उठ खाने धाए॥११॥

सगे-सम्बन्धियों को शरीर के जो अंग बहुत ही प्रिय लगते थे, जिनको देखे बिना वे एक क्षण भी रह नहीं पाते थे, जीव के निकल जाने के पश्चात् अब वे ही अंग वैरी

की भांति बुरे लगने लगते हैं।

भावार्थ- "खाने को दौड़ना" एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ होता है- शत्रु की तरह बहुत बुरा लगना या वैर भाव से व्यवहार करना।

सनमंधी जब चल गया, अंग वैर उपज्या ताए।

सो तबहीं जलाए के, लियो सो घर बटाए॥१२॥

जब जीव अपने शरीर का परित्याग कर देता है, तो सगे-सम्बन्धियों को उसके अंगों से वैर उत्पन्न हो जाता है। वे उन अंगों सहित सम्पूर्ण शरीर को जला देते हैं और उसकी सम्पत्ति का बँटवारा कर लेते हैं।

छोड़ सगाई आत्म की, करें सगाई आकार।

वैराट कोहेड़ा या विध, उलटा सो कई प्रकार॥१३॥

अन्धकार में भटकने वाले इस संसार की यही वास्तविकता है कि सगे-सम्बन्धी आत्मा से सम्बन्ध न जोड़कर मात्र शरीर से ही अपना सम्बन्ध रखते हैं। इस प्रकार इस जगत का व्यवहार कई तरह से सत्य के विपरीत है।

कई बिध यों उलटा, वैराट नेत्रों अंध।

चेतन बिना कहे छूत लागे, फेर तासों करे सनमंध॥१४॥

इस संसार के प्राणियों की सामान्यतः बाह्य दृष्टि ही होती है, अन्तर्दृष्टि नहीं, जिसके परिणाम स्वरूप वे मात्र स्थूल शरीर तक ही सीमित हो जाते हैं और अनेक प्रकार से सत्य के विपरीत उल्टी राह अपनाते हैं। शरीर से जीव के निकल जाने पर कहने लगते हैं कि इस शरीर को बाहर निकालो। अब तो यह अछूत हो गया है। यदि

इस शरीर से इतनी ही घृणा थी, तो पहले प्रेम का दिखावा क्यों करते थे?

एक भेख जो विप्र का, दूजा भेख चंडाल।

जाके छुए छूत लागे, ताके संग कौन हवाल॥१५॥

एक कर्मकाण्डी ब्राह्मण का सुन्दर भेष होता है। दूसरी ओर वह चाण्डाल होता है, जिसको छूने मात्र से छूत लग जाती है। ऐसी अवस्था में इस संसार में उस अछूत चाण्डाल के साथ कोई मधुर व्यवहार कैसे कर सकता है?

चंडाल हिरदे निरमल, खेले संग भगवान।

देखलावे नहीं काहू को, गोप राखे नाम॥१६॥

चाण्डाल का शरीर भले ही अपवित्र दिखता है, किन्तु

उसका हृदय निर्मल होता है। वह अपने आराध्य (भगवान, परमात्मा) के साथ प्रेम में मग्न रहता है। वह किसी के भी सामने अपनी भक्ति का प्रदर्शन नहीं करता, बल्कि उसे गोपनीय रखता है।

अंतराए नहीं खिन की, सनेह सांचे रंग।

अहनिस दृष्ट आतम की, नहीं देहसों संग॥१७॥

चाण्डाल अपने कुरूप शरीर से कोई आसक्ति नहीं रखता, अपितु पवित्र हृदय के कारण उसकी आत्मिक दृष्टि दिन-रात खुली होती है। वह अपने आराध्य के सच्चे प्रेम में डूबा होता है और क्षण भर के लिये भी स्वयं को उनसे अलग नहीं पाता।

भावार्थ- इस चौपाई के उपरोक्त कथन का यह आशय कदापि नहीं लेना चाहिये कि सभी चाण्डाल ब्रह्मज्ञानी ही

होते हैं और सभी ब्राह्मण ढोंगी एवं आडम्बरी। अध्यात्म किसी वर्ग विशेष से बँधा नहीं होता है। उसके लिये विश्व के सभी प्राणी समान ही होते हैं। जो भी साक्षात्कार की पात्रता प्राप्त कर लेता है, वह उसे पा लेता है, चाहे वह चाण्डाल हो या ब्राह्मण।

भारतीय संस्कृति का मूल वेदों में है। पौराणिक मान्यता जन्म के आधार पर वर्ण का निर्धारण करती है, जबकि वैदिक मान्यता के अनुसार वर्ण का आधार मात्र कर्म है, जन्म नहीं। एक ब्राह्मण अपने अशुभ कर्म से चाण्डाल बन सकता है और एक चाण्डाल अपने शुभ कर्म से ब्राह्मण। जो चाण्डाल माँस और शराब के सेवन में लगा रहे, वह ब्रह्म का साक्षात्कार तब तक नहीं कर सकता जब तक वह सात्त्विक जीवन पद्धति अपनाकर भक्ति भाव में न लगे। इस प्रकरण में इस प्रकार का कथन उन कर्मकाण्डी

ब्राह्मणों की उस मान्यता की प्रतिक्रिया में है, जो मात्र जन्म से ही ब्राह्मणत्व मानते हैं। ये वास्तविक ब्राह्मण के आचरण से बहुत दूर रहते हुए भी अपने को सर्वश्रेष्ठ समझते हैं तथा चाण्डाल की छाया से भी घृणा करते हैं। वे वेद का यह कथन भूल जाते हैं कि "तत्र कः मोहः कः शोकः यो एकत्वमनुपश्यत्" अर्थात् जो सबमें एक ही चेतन तत्व को देखता है, वह मोह और शोक से रहित हो जाता है।

विप्र भेख बाहेर दृष्टी, खट कर्म पाले वेद।

स्याम खिन सुपने नहीं, जाने नहीं ब्रह्म भेद॥१८॥

जन्मना ब्राह्मण का मात्र भेष ही सुन्दर होता है। उसकी दृष्टि बहिर्मुखी होती है। वह वैदिक मान्यता के अनुसार— वेद पढ़ना तथा पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना, तथा

दान देना और दान लेना— इन छः कर्मों का पालन करता है। शुष्क हृदय होने से उसे स्वप्न में भी परमात्मा के दर्शन नहीं होते और न ही उसे ब्रह्म तत्व के गुह्य रहस्यों का बोध होता है।

उदर कुटम कारने, उत्तमाई देखावे अंग।

व्याकरण वाद विवाद के, अर्थ करें कई रंग॥१९॥

अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिये वह अपनी शारीरिक पवित्रता एवं जन्म आधारित जातिगत श्रेष्ठता का प्रदर्शन करता है। अपनी मिथ्या बात को भी सिद्ध करने के लिये वह व्याकरण का सहारा लेता है तथा धर्मग्रन्थों के कथनों को तोड़-मोड़कर अनेक प्रकार से अर्थ करता है और विवाद उत्पन्न करता है।

अब कहो काके छुए, अंग लागे छोट।

अधम तम विप्र अंगे, चंडाल अंग उद्धोत॥२०॥

अब आप ही बताइये कि इन दोनों में कौन पवित्र है और किसको छूने से छूत लगती है? निश्चित रूप से खोटे कर्म करने से जन्मना ब्राह्मण के अंग-अंग में माया का अन्धकार विद्यमान है तथा चाण्डाल के हृदय में सच्चाई का प्रकाश है।

पेहेचान सबों को देह की, आत्म की नहीं दृष्ट।

वैराट का फेर उलटा, इन बिध सारी सृष्ट॥२१॥

संसार में प्रायः शरीर को ही देखा जाता है। आत्मिक स्वरूप की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। सृष्टि के इस ब्रह्माण्ड की स्थिति सत्य के विपरीत है, जिसमें शरीर की प्रमुखता के समक्ष आत्म तत्त्व नगण्य हो जाता है।

एक देखो ए अचंभा, चाल चले संसार।

जाहेर है ए उलटा, जो देखिए कर विचार॥२२॥

हे साथ जी! आप एक महान आश्चर्य देखिए कि यह संसार किस मार्ग पर चल रहा है? यदि आप विचार करके देखें, तो आपको यह स्पष्ट होगा कि यह संसार प्रत्यक्ष रूप में सत्य (धर्म) के विपरीत आचरण कर रहा है।

सांचे को झूठा कहें, और झूठे को कहें सांच।

सो भी देखाऊं जाहेर, सब रहे झूठे रांच॥२३॥

संसार के लोग सत्य आत्मा को, स्थूल आँखों से न दिखायी देने के कारण, कहते हैं कि वह तो है ही नहीं और अपने नश्वर (झूठे) तन को सत्य कहते हैं। मैं यह बात भी स्पष्ट रूप से कह रही हूँ कि संसार के सभी लोग

झूठी माया के जाल में फँसे हुए हैं।

भावार्थ- शून्यवादी बौद्ध तथा चार्वाक के अनुयायी शरीर से पृथक् चेतन तत्व का अस्तित्व ही नहीं मानते। उनके अनुसार मात्र शून्य ही परम तत्व है।

आकार को निराकार कहें, निराकार को आकार।

आप फिरे सब देखें फिरते, असत यों निरधार॥२४॥

इस संसार के लोग अखण्ड स्वरूप वाले परमात्मा को निराकार कहते हैं तथा लय होकर रूप से रहित हो जाने वाले शरीर को आकार वाला कहते हैं। उपरोक्त कथन करने वाले स्वयं जन्म-मरण रूपी चक्र में भटकते फिरते हैं तथा दूसरे सभी लोगों को भी भटकते हुए देखने के लिये विवश हैं। इस प्रकार यह जगत पूर्णतया मिथ्या (परिवर्तनशील) है।

मूल बिना वैराट खड़ा, यों कहे सब संसार।

तो ख्वाब के जो दम आपे, ताए क्यों कहिए आकार॥२५॥

समस्त संसार के विद्वानों का यही कथन है कि यह ब्रह्माण्ड बिना किसी मूल के स्थित है, अर्थात् यह सब स्वापनिक है। ऐसी स्थिति में जो स्वप्न के जीव हैं, उनके द्वारा धारण किये गये नश्वर तन को भला आकार वाला कैसे कहा जा सकता है?

आकार न कहिए तिनको, काल को जो ग्रास।

काल सो निराकार है, आकार सदा अविनास॥२६॥

जो शरीर काल के अधीन है, उसको साकार कहा ही नहीं जा सकता। मरने वाले शरीर को निराकार ही कहना चाहिये क्योंकि वह पञ्चभूतों से बना होता है और पञ्चभूतों में ही विलीन हो जाता है। इसके विपरीत भिन्न—

भिन्न योनियों के शरीर में जाने वाला चैतन्य स्वरूप सर्वदा एक समान अविनाशी रूप से रहता है। इसलिये उसे ही शुद्ध साकार कहना उचित है।

जिन राचो मृग जल दृष्टे, जाको नाम प्रपंच।

ए छल मायाएँ किया, ऐसे रचे उलटे संच॥२७॥

हे साथ जी! यह सम्पूर्ण प्रपञ्चमयी जगत् मृगतृष्णा के समान स्वप्नवत् मिथ्या (परिवर्तनशील) है। आप इसके लुभावने आकर्षण में न फँसिये। इस अज्ञानमयी अन्धकार की उत्पत्ति माया ने ही की है। इसी मोह रूप अज्ञान से ऐसे असंख्यों लोक बने हैं।

प्रकरण ॥१६॥ चौपाई ॥३९५॥

वेद का कोहेड़ा

वेद का कुहासा

भारतीय संस्कृति में वेदों का सर्वोच्च स्थान है। भगवान श्री कृष्ण ने "ब्रह्मक्षर समुद्भवं" अर्थात् वेद को अविनाशी ब्रह्म से उत्पन्न हुआ कहकर वेदों की महत्ता दर्शायी है। इतना कुछ होने पर भी वेद जन-सामान्य को परमात्मा की पहचान कराने में जिस कारण से सफल नहीं हो सके, उसे ही कुहरा कहा गया है। उसी की पहचान इस प्रकरण में करायी गई है। यह विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इस प्रकरण में वेद का तात्पर्य सभी वैदिक धर्मग्रन्थों से है, केवल मूल संहिता से नहीं।

अब कहूं कोहेड़ा वेद का, जाकी मिहीं गूंथी जाल।

याकी भी नेक केहेके, देऊं सो आंकड़ी टाल॥१॥

अब मैं वैदिक ग्रन्थों के उस कोहरे के सम्बन्ध में बता रही हूँ, जिन्होंने बहुत ही बारीक धागे से अपना जाल बना रखा है। इसके विषय में थोड़ी सी वास्तविकता बताकर कुहासे के रहस्य को स्पष्ट कर देती हूँ।

भावार्थ- वेदों में जो भी ज्ञान है, वह अति सूक्ष्म रूप से बीज रूप में है। उसे जानने के लिये समाधि प्राप्त ऋतम्भरा प्रज्ञा की आवश्यकता होती है। मात्र बुद्धि बल से वेद मन्त्रों का शब्दार्थ तो हो सकता है , किन्तु वास्तविक रहस्य का बोध नहीं हो सकता। यही कारण है कि तमोगुण एवं रजोगुण से ग्रस्त महीधर एवं सायण जैसे आचार्यों ने वेद मन्त्रों का अर्थ विकृत एवं अश्लील कर दिया।

सात्विक बुद्धि वाले विद्वानों के लिये भी यह कठिन हो जाता है कि वे वेद मन्त्रों का अर्थ त्रिविध प्रक्रिया -

अधिभूत, अधिदैव, एवं अध्यात्म- में से किस पक्ष में करें? ऐसी स्थिति में वेद ज्ञान को वास्तविक रूप में आत्मसात् कर पाना सामान्य लोगों के लिये बहुत ही कठिन रहा है। इस कठिनता को ही धुन्ध या कोहरा कहा जाता है। दूसरे शब्दों में इसे ही महीन जाली से उपमा दी गयी है, जिसे पार कर कोई विरला ही बाहर निकल पाता है। इसे पार करने के लिये महान तप, योगाभ्यास, स्वाध्याय, एवं परब्रह्म की कृपा की आवश्यकता होती है।

सत्य वेदार्थ प्राप्त हो जाने पर उस पर किसी भी प्रकार का संशय नहीं किया जा सकता, इसलिये तो किरंतन में कहा गया है—

सत वाणी छे वेद तणी, जो ते कोई जुए विचारी।

किरंतन १२६/९६

कोई दोषमा देजो रे वेद ने, ए तो बोले छे सत।

किरंतन १२६/९७

वैराट आकार ख्वाब का, ब्रह्मा सो तिनकी बुध।

मन नारद फिरे दसों दिसा, वेदें बांध किए बेसुध॥२॥

यह सारा ब्रह्माण्ड स्वप्नमयी है। इसमें स्थित प्राणियों की बुद्धि ही ब्रह्मा है। इनका मन नारद जी की तरह दसों दिशाओं में घूमता रहता है। इस प्रकार वैदिक कर्मकाण्डों के बन्धनों में बँधा हुआ व्यक्ति बेसुध हो जाता है।

भावार्थ— पौराणिक मान्यता के अनुसार यह मानना कदापि उचित नहीं है कि सृष्टि के प्रत्येक प्राणी की बुद्धि के स्वामी ब्रह्मा जी हैं। वस्तुतः ब्रह्मा जी इस पृथ्वी (सौर मण्डल, चौदह लोक) पर उत्पन्न होने वाली सांकल्पिक सृष्टि के प्रथम पुरुषों में से एक हैं, जिन्होंने अन्य चार

ऋषियों (अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा) से वेद ज्ञान प्राप्त कर चतुर्वेदज्ञ होने की शोभा प्राप्त की। जिस प्रकार निरन्तर भ्रमणशील नारद जी की उपमा मन से दी गयी है, उसी प्रकार चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा जी को भी आलंकारिक रूप से बुद्धि कहा गया है। व्यष्टि को समष्टि में व्यापक एवं समष्टि को व्यष्टि में विद्यमान मानना हमारी सांस्कृतिक विरासत रही है। गीता में इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए कहा गया है—

सर्व भूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योग भुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः॥ गीता ६/२९

अर्थात् योग युक्त समदर्शी पुरुष सभी प्राणियों में स्वयं को तथा अपने में सभी प्राणियों को देखता है।

दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि ब्रह्मा जी रजोगुण के प्रतीक हैं। सत्व, रजस, तथा तमस् के

परमाणुओं में क्रमशः प्रकाश, गति, एवं स्थिति का गुण होता है। आदिनारायण के संकल्प से शान्त परमाणुओं में जो गति उत्पन्न होती है, उससे प्रकृति की साम्यावस्था भंग होती है, परिणाम स्वरूप महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। यही महत्तत्त्व सृष्टि का प्रथम पदार्थ है और इसी का अंश सभी प्राणियों में बुद्धि के रूप में है। इसी आधार पर यदि आलंकारिक रूप में ऐसा कहा जाये कि बुद्धि स्वरूप महत्तत्त्व सभी प्राणियों की बुद्धि के रूप में है, तो कोई आश्चर्य नहीं। मन रूपी नारद को भी इसी रूप में देखना उचित होगा।

आज के भौतिकवादी युग में विशाल परिवार का उत्तरदायित्व सम्भालने वाला गृहस्थ सभी प्रकार के यज्ञों, संस्कारों, तथा अन्य कर्मकाण्डों को भी पूर्ण करते हुए ब्रह्मतत्त्व की खोज करने का प्रयास करे, तो वह थक

जायेगा एवं निराश होकर यही कहेगा कि मैं थक चुका हूँ। अब मुझसे आगे कुछ भी नहीं होगा। इसे ही चौपाई के चौथे चरण में आलंकारिक भाषा में बेसुध होना कहा गया है।

लगाए सब रब्दें, व्याकरण वाद अंधकार।

या बुधें बेसुध हुए, विवेक खाली विचार॥३॥

ऋतम्भरा प्रज्ञा से रहित सामान्य बुद्धि वाले विद्वान जब धर्मग्रन्थों का आशय जानने के लिये व्याकरण का आधार लेते हैं, तो निष्पक्षता एवं तप के अभाव तथा तमोगुण की प्रबलता के कारण वाद-विवाद करने लगते हैं और अज्ञानता के अन्धकार में भटक जाते हैं। इस प्रकार उनके विचारों में विवेक-शून्यता हो जाती है।

भावार्थ- त्रिगुणातीत ब्रह्म का उपदेश देने वाले वेदों के

आशय को रजोगुण और तमोगुण के कीचड़ में धँसा हुआ व्यक्ति कैसे जान सकता है? इसके लिये तो समाधि से प्राप्त होने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा ही चाहिये। साम्प्रदायिक संकीर्णता से भरा हुआ व्यक्ति कभी भी वेदार्थ का अधिकारी नहीं हो सकता। यही कारण है कि व्याकरण की ओट में विद्वानों ने जान-बूझकर धर्मग्रन्थों के आशय को इस उद्देश्य से विवादास्पद बना दिया है कि मात्र उनके ही सिद्धान्तों की पुष्टि हो सके।

बंध बांधे या विध, हर वस्तु के बारे नाम।

सो बानी ले बड़ी कीनी, ए सब छल के काम॥४॥

बारह स्वरों के मेल से प्रत्येक शब्द के १२ प्रकार के नाम रखकर इन तथाकथित पौराणिक विद्वानों ने इस प्रकार के बन्धन खड़े कर दिये हैं कि वास्तविक सत्य का

प्रकाश ही नहीं हो सकता। इन्होंने बहुत ही छलपूर्ण तरीके से वेद की ओट में अपने-अपने मिथ्या ग्रन्थों का विस्तार कर लिया है।

भावार्थ- आकाश में शीघ्रता से गमन करने के कारण चन्द्रमा को "गोतम" कहते हैं। पौराणिक विद्वानों ने गोतम का रूप विकृत कर "गौतम" बना दिया तथा एक काल्पनिक कहानी गढ़ ली कि इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर अहिल्या का पातिव्रत्य धर्म नष्ट किया था। इसका शुद्ध वैदिक रूप इस प्रकार है-

इन्द्रागच्छेति। गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जारेति।

तद्यान्येवास्य चरणानि तैरेवैनमेतत् प्रमुमोदयिषति॥

शत. कां. ३/ अ. ३/ ब्रा. ४/ कं १८

जार आ भगम् जार इव भगम्।

आदित्योऽत्र जार उच्यते, रात्रेर्जरयित॥

निरु. अ. ३/खं. १६

अर्थात् उनमें इस रीति से है— सूर्य का नाम इन्द्र, रात्रि का अहिल्या, तथा चन्द्रमा का गोतम है। यहाँ रात्रि और चन्द्रमा का स्त्री-पुरुष के समान रूपकालंकार है। चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि से सब प्राणियों को आनन्द कराता है, और उस रात्रि का जार आदित्य है अर्थात् जिसके उदय होने से रात्रि अन्तर्धान हो जाती है, और जार अर्थात् यह सूर्य ही रात्रि के वर्तमान रूप-श्रृंगार को बिगाड़ने वाला है। इसलिये यह स्त्री-पुरुष का रूपकालंकार बाँधा है कि जैसे स्त्री-पुरुष मिलकर रहते हैं, वैसे ही चन्द्रमा और रात्रि भी साथ-साथ रहते हैं। चन्द्रमा का नाम "गोतम" इसलिये है कि वह अत्यन्त वेग से चलता है और रात्रि को "अहिल्या" इसलिये कहते हैं कि उसमें दिन लय हो जाता है तथा सूर्य रात्रि को निवृत्त कर देता है, इसलिये

वह उसका "जार" कहाता है।

इसी प्रकार वेद में "मास" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ उड़द होता है। मास में "म" के ऊपर एक बिन्दु रख देने से "मांस" बन जाता है। इस प्रकार छलपूर्वक वेद की ओट में उड़द का सेवन हटाकर मांस का सेवन करने का प्रमाण दिया जाता है।

इसी प्रकार "अग्रे कृतम्" का आशय है— पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी को अग्रे अर्थात् आगे (स्वामित्व प्रदान) कर दिया। किन्तु स्वार्थी विद्वानों ने अग्रे को अग्रे कर दिया और यह अर्थ निकाला कि वेद में विधवा स्त्री के द्वारा आग में जलकर सती होने का वर्णन है।

उपरोक्त चौपाई में १२ स्वरों (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः) का वर्णन है। प्रत्येक अक्षर में इनके परिवर्तन से अर्थ में अन्तर आ जाता है। इनके

अतिरिक्त चार स्वर (ऋ, ॠ, लृ, दीर्घ लृ) और हैं। पौराणिक विद्वानों ने अपने दुराग्रह एवं अल्पज्ञता से वैदिक शब्दों में हेर - फेर किया तथा काल्पनिक कहानियों का सृजन कर नये-नये मिथ्या ग्रन्थों की रचना की।

लुगे लुगे के जुदे माने, द्वादस के प्रकार।

उलटाए मूल माने, बांधे अटकलें अपार॥५॥

इस प्रकार अलग-अलग अक्षरों में १२ स्वरों के मेल से १२ प्रकार के अलग-अलग अर्थ निकलते हैं। विद्वानों ने अपने क्षुद्राशय से धर्मग्रन्थों के मूल कथनों को ही उल्टा कर दिया तथा अनुमान से कहानियाँ गढ़कर बहुत अधिक (अपार) पौराणिक साहित्य की रचना कर दी।

भावार्थ- स्वरों के मेल से इस प्रकार अर्थ बदलते हैं-

क् + अ = क = सुख स्वरूप

क् + आ = का = कौन (स्त्रीलिंग)

क् + इ + म् = किम् = क्या, कौन

क् + ई = की = कुत्सित

क् + उ = कु = बड़बड़ाना, पृथ्वी

क् + ऊ = कू = ध्वनि करना, क्रन्दन करना

क् + ए = के = कौन (द्विवचन स्त्रीलिंग)

क् + ऐ = कै = के द्वारा (बहुवचन)

क् + ओ = को = कौन यथा कोऽपि

क् + औ = कौ = कौन (द्विवचन पु.)

क् + अं = कं = किसको

क् + अः = कः = कौन (एकवचन पु.)

क् + ऋ = कृ = प्रहार करना, रचना करना, प्रकाशित

करना

क्+लृ=कृप्=योग्य होना, पूर्ण करना, सफल होना, तैयार होना, अनुकूल होना।

अर्थ को डालने उलटा, अनेक तरफों ताने।

मूढ़ों को समझावने, रहेस बीच में आने॥६॥

संकीर्ण सोच वाले ये विद्वान धर्मग्रन्थों के मूल आशय के विपरीत अपनी मान्यता के अनुसार अर्थ करने के लिये अनेक प्रकार से खींचतान करते हैं। अति मूर्ख लोगों को समझाने के लिये वे बीच में मनोरञ्जक कहानियाँ जोड़ देते हैं।

भावार्थ- सभी पुराणों, उपपुराणों, तथा महाभारत के प्रक्षिप्त भागों में इसी प्रकार वेद -विरुद्ध सिद्धान्तों का जाल बिछाकर मनगढ़न्त कहानियाँ जोड़ी गयी हैं, जिनमें

कहीं-कहीं तो अश्लील प्रसंगों का वर्णन मर्यादा की सीमा लाँघ गया है। भागवत के रचनाकार बोपदेव ने भी यजुर्वेद के व्याख्या ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण और निरुक्त के इस प्रसंग को न समझने के कारण भा. ३/१२/१८-३३ में यह मनगढ़न्त कहानी बना ली कि ब्रह्मा जी अपनी पुत्री सरस्वती के प्रति विकारग्रस्त हो गये थे। शतपथ ब्राह्मण तथा निरुक्त में यह प्रसंग इस प्रकार है-

प्रजापतिं वै सुपर्णो गरुत्मानेष सविता।

शतपथ ब्राह्मण १०/२/२१/४

तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्यः।

निरुक्त ४/२१

अर्थात् प्रजापति और सविता ये शतपथ में सूर्य के नाम हैं। निरुक्त में भी रूपक अलंकार की कथा लिखी है कि पिता के समान पर्जन्य अर्थात् जलरूप जो मेघ है, पृथ्वी

उसकी दुहिता (कन्या) है क्योंकि पृथ्वी की उत्पत्ति जल से ही है। जब वह उस कन्या में दृष्टि द्वारा जल रूप शुक्र को धारण करता है, तब उससे गर्भ रहकर औषधि आदि अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं।

ऐसी कई आकंडियों मिने, बोलें बारे तरफ।

रेहेस रंचक धरें बीचमें, समझाए ना किन हरफ॥७॥

उपरोक्त कथन के समान ही ऐसी कई गुत्थियाँ होती हैं, जिसमें १२ प्रकार से अर्थ बदल जाते हैं। वे बीच-बीच में थोड़ा सा मनोरञ्जक प्रसंग जोड़ देते हैं। इस प्रकार वे किसी को यथार्थ सत्य का बोध नहीं करा पाते।

बारे तरफों बोलत, एक अखर एक मात्र।

ऐसे बांध बतीस स्लोक में, बड़ा छल किया है सास्त्र॥८॥

व्यञ्जन के एक अक्षर में अलग-अलग १२ स्वर लगाने पर अर्थ के १२ भेद हो जाते हैं। इस प्रकार ३२ व्यञ्जनों वाले श्लोक में अर्थ की भिन्नता कितनी हो सकती है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार शास्त्रों (पौराणिक ग्रन्थों) में अर्थ के सम्बन्ध में बहुत ही छल भरा पड़ा है।

भावार्थ- यद्यपि व्यञ्जन ३६ होते हैं, किन्तु गुजरात की परम्परा के अनुसार यहाँ ३२ का ही वर्णन किया गया है। वे ३६ व्यञ्जन इस प्रकार हैं- क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ। ऐसा नहीं मानना चाहिये कि प्रत्येक श्लोक में ३२ ही अक्षर होते हैं। अलग-अलग छन्दों में श्लोकों या मन्त्रों में अक्षरों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है।

भाव यह है कि १२ अथवा १६ स्वर और ३६ (३२) व्यञ्जन मिलकर वर्णमाला के ५२ अक्षर होते हैं। इनमें ही सम्पूर्ण सहित्य की रचना होती है, तथा स्वर एवं व्यञ्जन के अलग-अलग संयोग या प्रसंग के अनुसार अर्थ में परिवर्तन होता रहता है।

उपरोक्त चौपाई में "शास्त्र" शब्द से आशय छः दर्शनों के अतिरिक्त पौराणिक ग्रन्थों से भी है। एक ही वेदान्त दर्शन में द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, त्रैत आदि भिन्न-भिन्न मतों के विद्वानों में अर्थ के सम्बन्ध में बहुत ही मतभेद दिखाई पड़ते हैं।

बारे मात्र एक अखर, अखर स्लोक बतीस।

छल एते आड़े अर्थके, और खोज करें जगदीस॥९॥

किसी भी श्लोक का अर्थ करने में १२ स्वरों एवं ३२

व्यञ्जनों के परस्पर मेल से जिस प्रकार छलपूर्ण तरीके से परिवर्तन होता है, उससे मुक्त हुए बिना संसार के लोग शास्त्रों के अर्थ द्वारा परमात्मा की खोज करने का जो प्रयास करते हैं, वह एक आश्चर्य ही है।

अर्थ आड़े कई छल किए, तिन अर्थों में कई छल।

अखरा अर्थ भी ना होवहीं, किया भाव अर्थ अटकल॥१०॥

एक श्लोक का अर्थ करने में कई छल करने पड़ते हैं। इस प्रकार उस श्लोक के एक-एक शब्द का अर्थ करने में भी अनेक छल करते हैं। कभी-कभी तो ऐसी स्थिति आ जाती है कि श्लोक के एक अक्षर का भी अर्थ करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में अनुमान से ही भावार्थ करना पड़ता है।

भावार्थ- वर्तमान समय में साम्प्रदायिकता की आँधी

चल रही है। प्रत्येक सम्प्रदाय का विद्वान अपने सिद्धान्तों की पुष्टि करने के लिये जान-बूझकर अर्थ में खींच-तान करता है। कहीं-कहीं पक्षपात् और दुराग्रह से भी अर्थ किया जाता है। इसी को छलपूर्ण तरीके से अर्थ करना कहते हैं। संस्कृत में उच्चारण के अनुसार तीन प्रकार के स्वर होते हैं- उदात्त, अनुदात्त, स्वरित। इनके अलग-अलग प्रयोग से मन्त्रों के अर्थ बदल जाते हैं।

उदाहरण के लिए वृत्रासुर ने जब इन्द्र की पराजय के लिए यज्ञ कराया, तो पुरोहितों ने मन्त्र के एक अंश "इन्द्रशत्रुः वर्धस्व" में स्वर भेद कर दिया। यदि अन्तोदात्त लगाया जाता तो इसका अर्थ होता इन्द्र के शत्रु अर्थात् वृत्रासुर का बल बढ़े, लेकिन आद्योदात्त लगाने से इसका अर्थ हुआ कि इन्द्र का बल बढ़े, परिणाम स्वरूप वृत्रासुर मारा गया।

जाको नामै संस्कृत, सो तो संसे ही की कृत।

सो अर्थ दृढ़ क्यों होवही, जो एती तरफ फिरत॥११॥

जिस भाषा का नाम संस्कृत है, वह तो संशय की ही कृति (भाषा) है। जब एक ही श्लोक के इतने अर्थ होते हैं, तो वास्तविक अर्थ का पता कैसे चल सकता है, जिसमें सत्य के लिये दृढ़ता की जाये।

भावार्थ- वस्तुतः संस्कृत का अर्थ होता है "सम्यक् कृतः इति संस्कृतः" अर्थात् श्रेष्ठ वास्तविक कृति। संस्कृत भाषा में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं हैं। ये संक्षिप्त रूप से इस प्रकार हैं-

१. इस पृथ्वी लोक में संस्कृत से प्राचीन भाषा और कोई नहीं है।

२. विश्व की सभी भाषायें वैदिक संस्कृत से ही प्रकट

हुई हैं।

३. भारत की सभी क्षेत्रिय भाषायें पाली भाषा से निकली हैं, जबकि पाली भाषा का उद्भव लौकिक संस्कृत से है और लौकिक संस्कृत वैदिक संस्कृत से प्रकट हुई है।

४. संस्कृत के अतिरिक्त संसार में ऐसी अन्य कोई भी भाषा नहीं है, जिसका व्याकरण मात्र १४ सूत्रों के आधार पर सृजित हुआ हो।

विदित हो कि पाणिनी का अष्टाध्यायी व्याकरण मात्र १४ सूत्रों (शब्द) पर ही आधारित है।

५. अन्य भाषाओं की तरह संस्कृत भाषा को रटने की आवश्यकता नहीं है। अष्टाध्यायी व्याकरण के आधार पर नवीन शब्द की रचना करके उसका अर्थ भी स्वतः निकाला जा सकता है।

६. संस्कृत विश्व की सबसे अधिक वैज्ञानिक भाषा है, जिसमें एक बिन्दु के लिये भी उचित नियम है।

७. वैदिक शब्दकोष निघण्टु में पृथ्वी के एक सौ एक (१०१) पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं। यही स्थिति अन्य शब्दों की भी है। इस प्रकार की शाब्दिक समृद्धि संसार की अन्य किसी भी भाषा में नहीं है।

८. इस पृथ्वी लोक पर सृष्टि की उत्पत्ति को १,९६,०८,५३,११५ वर्ष हो चुके हैं। इतने समय से लेकर आज तक जो भी साहित्य के रूप में ज्ञान-विज्ञान उपलब्ध है, वह संस्कृत में ही है।

९. संस्कृत भारत की आत्मा है। संस्कृत के समाप्त होते ही भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्मिकता का विनाश हो जाएगा।

१०. संस्कृत साहित्य में दर्शन, अध्यात्म, संगीत, एवं

अन्य विद्याओं की जो निधि छिपी है, वह संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं है।

अब प्रश्न यह होता है कि यदि संस्कृत इतनी उत्तम भाषा है, तो अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी ने इसको संशय की भाषा क्यों कहा?

इसके उत्तर में यही कहना उचित होगा कि श्री जी का यह कथन उन रुढ़िवादी, कर्मकाण्डी, और आध्यात्मिक तत्व ज्ञान से दूर रहने वाले विद्याभिमानी पण्डितों के प्रति है, जो संस्कृत को जन भाषा के रूप में नहीं चाहते और अपने वर्ग विशेष की भाषा बनाकर अपने अहं के वृक्ष की छाया में सबको रखना चाहते हैं।

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इस प्रकरण में कहीं भी वेद को झूठा नहीं कहा गया है, अपितु अर्थ करने वाले उन विद्वानों की क्षुद्र मानसिकता को दर्शाया गया है, जो

जान-बूझकर अर्थ करने में छल करते हैं तथा मिथ्या ग्रन्थों की रचना करते हैं। यही लोग असत्य को सत्य और सत्य को असत्य सिद्ध करने में अपनी सारी ऊर्जा लगा देते हैं। ये कूपमण्डूक लोग जान-बूझकर संस्कृत भाषा को इतना कठिन बनाने का प्रयास करते हैं कि वह जन भाषा न बनने पाये।

किसी भी भाषा में संशयात्मकता क्षुद्र मानसिकता से पैदा होती है। जिस हिन्दुस्तानी भाषा को स्वयं श्री जी ने "सबको सुगम जान के कहूंगी हिन्दुस्तान" कहा है और जिस तारतम वाणी को सभी संशयों को नष्ट करने वाली अनमोल निधि के रूप में दर्शाया गया है, उसकी एक सरल चौपाई के अर्थ करने में भी संशय किया जा सकता है। उदाहरणार्थ- "लौकिक नाम दोउ मेट के, करसी नयो ठाट।" (किरंतन ५२/२६) इसका भिन्न-भिन्न

व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थ किया जाता है। एक वर्ग कहता है कि दो लौकिक नाम अर्थात् श्री देवचन्द्र जी एवं श्री कृष्ण जी, दूसरा वर्ग कहता है कि हिन्दू और मुसलमान। तीसरा समूह कहता है कि यहाँ दो नाम का तात्पर्य स्वर्ग एवं नरक से है।

अब प्रश्न यह है कि इन तीनों कथनों में से किसको सत्य माना जाये? यदि तीनों वर्ग यह कहें कि केवल हमारा ही मत सत्य है तथा अन्य दो गलत हैं, तो इस आधार पर तारतम वाणी की हिन्दुस्तानी भाषा भी संशय उत्पन्न करने वाली कही जा सकती है।

सो पढ़े पंडित जुध करें, एक काने को टुकड़े होए।

आपसमें जो लड़ मरें, एक मात्र ना छोड़ें कोए॥१२॥

शब्दों के अर्थ करने में विद्वतगण लोग इस प्रकार झगड़ा

करते हैं कि "अ" की मात्रा के भी टुकड़े कर देते हैं। उनमें से कोई भी एक मात्रा को छोड़ने के लिये तैयार नहीं होता, भले ही उसके लिये अपने प्राण गँवाने क्यों न पड़े।

भावार्थ— व्याकरण के नाम पर निरर्थक विवाद को किस प्रकार हवा दी जाती है, उसका एक उपयुक्त उदाहरण इस प्रकार है—

यजुर्वेद ३२/३ में कहा गया है कि "न तस्य प्रतिमा अस्ति।" इसका अत्यन्त सीधा सा उपयुक्त अर्थ है— उस परमात्मा की कोई उपमा (स्थूल आकृति, तुल्यता) नहीं है। किन्तु इसी मन्त्र से परमात्मा को साकार सिद्ध करने के लिये पौराणिक विद्वान इस प्रकार का छल करते हैं— "नतस्य प्रतिमा अस्ति" अर्थात् नत्+अस्य प्रतिमा। वे इसका अर्थ करते हैं— इस परमात्मा की प्रतिमा है, इसे

प्रणाम है। सामान्य संस्कृत जानने वाला भी यह समझता है कि नमः योगे चतुर्थी। ऐसी अवस्था में "अस्य नत्" कैसे हो सकता है? इसी प्रकार की पक्षपातपूर्ण मानसिकता ने समाज को सत्य से कोसों दूर कर दिया है। यही स्थिति कुरआन में भी देखने को मिलती है—

"मन कुनतो मौला, फाहाजा अली उन मौला।"

अर्थात् जिसका मैं (मुहम्मद) मौला (स्वामी) हूँ, उसका यह अली भी स्वामी है।

"रब्बे का यख्लक मा यशाअ व यख्तारा मा का ना लहम अल खैरतः सुब्हानल्लाह तआला अम्मा यशकसन"

कुरआन पारा: २० रुकू १०

तुम्हारा रब ही पैदा करता है, जिसको चाहता है, नबूबत खिलाफत के लिए चुनता है। याद रहे कि इन्सान को न चुनने का हक है और न वह इसमें खुदा के शरीक

हो सकते हैं।

तारीख. जिकादा: २५ हिजरी १०

मकाम हुज्र तुल विदा

मैदान ए गदीर

ए वाद बानी सिर लेवहीं, सुध बुध जावे सान।

त्रास स्वांत न होवे सुपने, ऐसा व्याकरण ग्यान॥१३॥

व्याकरण की ओट में विवाद खड़े करने वाली इस भाषा को अपनाने वालों की सुधि-बुद्धि समाप्त हो जाती है। संस्कृत भाषा के व्याकरण का ज्ञान इस तरह विवादों में उलझाने वाला है कि इससे सपने में भी शान्ति नहीं आती।

भावार्थ- किसी मन्त्र, सूत्र, या श्लोक का अर्थ करने में विद्वानों के द्वारा जान-बूझकर पक्षपातपूर्ण तरीके से अर्थ

किया जाता है। इसमें व्याकरण के आधार पर सभी अपने कथन को सत्य सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। परिणाम स्वरूप, विवादों में फँसे सभी लोग मानसिक शान्ति से रहित हो जाते हैं।

ए बानी ले बड़ी कीनी, दियो सो छल को मान।

सो खेंचा खेंच ना छूटहीं, लिए क्रोध गुमान॥१४॥

संस्कृत भाषा को देव वाणी कहकर पण्डितजन सम्मानित करते हैं और उसका अध्ययन करके स्वयं को सर्वोपरि मानते हैं। रज और तम से ग्रसित ये विद्वान अपने क्रोध और विधा के अभिमान के कारण लड़ते रहते हैं और इनमें हमेशा ही खींचतान बनी रहती है।

भावार्थ- वास्तविक ज्ञान तो ऋतम्भरा प्रज्ञा (समाधि से प्राप्त होने वाली बुद्धि) से प्राप्त होता है। भक्ति भाव से

रहित रजोगुणी एवं तमोगुणी स्वभाव वाले विद्वान अपने अल्पज्ञान के कारण ही विवाद उत्पन्न करते हैं। गीता १०/३८ में योगेश्वर श्री कृष्ण कहते हैं—

"मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।"

अर्थात् मैं गुह्य ज्ञान जानने वालों में मौन स्वरूप हूँ।

ए छल पंडित पढ़हीं, ताए मान देवें मूढ़।

बड़े होए खोले माएने, एह चली छल रूढ़॥१५॥

पण्डित जन इस छलमयी भाषा को पढ़ते हैं और अति मूर्ख लोग उन्हें श्रद्धावश सम्मानित करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पण्डित वर्ग स्वयं को समाज में सर्वोपरि मानता है। छल भरी यह रीति लम्बे अन्तराल से चल रही है।

भावार्थ— कुछ क्षुद्राशय विद्वान ऐसे होते हैं, जिनकी

यही मानसिकता होती है कि इतनी कठिन रचना की जाये कि हमारे (जन्मना ब्राह्मण वर्ग के) अतिरिक्त अन्य किसी को भी संस्कृत भाषा का ज्ञान न होने पाये। सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय या केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, देहली का पाठ्यक्रम भी इसी मानसिकता के आधार पर तैयार किया गया है।

महाभारत काल से पूर्व सम्पूर्ण देश की जनभाषा संस्कृत ही थी। उस समय किसी के लिये भी संस्कृत कठिन भाषा नहीं थी। अब से लगभग ८०० वर्ष पूर्व राजा भोज ने संस्कृत भाषा का इतना प्रचार किया कि उनके राज्य का प्रत्येक व्यक्ति संस्कृत भाषा में निपुण था।

संस्कृत को कठिन और एक वर्ग विशेष की भाषा बनाये रखने की मान्यता ने इस देश का बहुत ही अहित किया

है। कुछ समय पूर्व पुरी के शंकराचार्य निरंजनदेव तीर्थ ने एक बहुत ही विवादास्पद बयान दिया था कि जन्मना ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी को भी संस्कृत भाषा के अध्ययन करने का अधिकार नहीं है। सम्भवतः उन्होंने यजुर्वेद के २६/२ के उस मन्त्र "यथा इमामं वाचं कल्याणी आवदामि जनेभ्यः, ब्रह्मराजान्या भ्यां शूद्राय च स्वाय च चारणाय च" का अवलोकन नहीं किया होगा। इस विकृत सोच का ही परिणाम है कि आज भी कई पौराणिक संस्कृत विद्यालयों में मात्र जन्मना ब्राह्मणों को ही प्रवेश दिया जाता है। इस प्रकार की क्षुद्र भावना ने ही संस्कृत जैसी श्रेष्ठ, सम्यक् (शुद्ध), एवं देवत्व की ओर ले जाने वाली भाषा का इतना पतन कर दिया कि श्री जी को विवश होकर इसे छलमयी भाषा कहना पड़ा।

सीधी इन भाखा मिने, माएने पाइए जित।

जो सब्द सब समझहीं, सो पकड़ें नही पंडित॥१६॥

हिन्दुस्तानी भाषा बहुत ही सरल और स्पष्ट है, जिसके आशय (अर्थ) को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। जिस भाषा के शब्दों को सभी समझ लेते हैं, उसे पण्डित लोग ग्रहण करना नहीं चाहते।

भावार्थ- किसी भी भाषा को सरल या कठिन (दुरूह) बनाना विद्वानों के ऊपर निर्भर करता है। हिन्दुस्तानी भाषा में भी कबीर जी की उलटवासियों का अर्थ करना बहुत ही कठिन होता है। इसी प्रकार केशवदास जी की रचनायें भी बहुत क्लिष्ट हैं। जबकि शुद्ध वाल्मीकिय रामायण एवं शुद्ध महाभारत के आर्ष श्लोक बहुत ही सरल भाषा में हैं। संस्कृत को सरल एवं सर्वग्राह्य बनाने के लिये वर्तमान समय के विद्वानों को अपनी क्षुद्र

मानासिकता का परित्याग करना होगा।

एक अर्थ न कहें सीधा, ए जाहेर हिंदुस्तान।

अर्थ को डालने उलटा, जाए पढ़ें छल बान॥१७॥

यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि ये तथाकथित विद्वान किसी भी मन्त्र, सूत्र, या श्लोक का स्पष्ट एवं सरल अर्थ नहीं करते। अर्थ में जान-बूझकर विकृति करने के लिये ही ये संस्कृत भाषा का अध्ययन करते हैं।

भावार्थ- स्वयं को विशिष्ट विद्वान सिद्ध करने एवं अपनी मान्यताओं को दूसरों पर थोपने के लिये ही संस्कृत भाषा का दुरुपयोग किया जाता है। इसके लिये संस्कृत भाषा दोषी नहीं है, बल्कि विद्वानों की वह क्षुद्र मानसिकता दोषी है जिसके वशीभूत होकर वे जन-सामान्य की संस्कृत से अनभिज्ञता का लाभ उठाते हैं।

ए खेल जाको सोई जाने, दूजा खेल सारा छल।

ए छल के जीव न छूटे छल थें, जो देखो करते बल॥१८॥

इस मायावी जगत की स्थिति ही निराली है। इसमें सर्वत्र छल ही छल दृष्टिगोचर हो रहा है। इसके रहस्य को तो मात्र वे अक्षर ब्रह्म ही जानते हैं, जिन्होंने इसकी रचना की है। हे साथ जी! देखिये, माया के जीव भले ही कितने प्रयास क्यों न कर लें, किन्तु वे इस प्रपञ्चमयी जगत के बन्धनों से छूटने में समर्थ नहीं हो पाते हैं।

एक उरझन वैराट की, दूजी वेद की उरझन।

ए नेक कही मैं तुमको, पर ए छल है अति घन॥१९॥

मैंने तो आपको इस ब्रह्माण्ड और इसमें ज्ञान का प्रकाश करने वाले वेदों की उलझनों की एक छोटी सी झाँकी ही दिखायी है, जबकि वास्तविकता यह है कि वह बहुत है।

मुख उदर के कोहेडे, रचे मिने सुपन।

ए सुध काहू न परी, मिने झीलें मोह के जन॥२०॥

अक्षर ब्रह्म के मन के स्वप्न में आदिनारायण के मुख से साँसों की भांति वेदों का प्रकटन हुआ तथा उनकी नाभि कमल से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। सृष्टि और वेद के यथार्थ रहस्य को कोई भी जान नहीं पाता। संसार के जीव स्वप्न की बुद्धि वाले हैं। वे इसी मोह सागर में स्नान करते हुए आनन्दित होते रहते हैं।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म के द्वारा सृष्टि रचना का संकल्प ही स्वप्न है, जिसके अनुसार उनके मन स्वरूप अव्याकृत में स्थित सुमंगला पुरुष के द्वारा मोह सागर एवं आदिनारायण की उत्पत्ति होती है। नाभि से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का कथन आलंकारिक है, यथार्थ नहीं। नाभि सम्पूर्ण शरीर का केन्द्र स्थान है। सभी नाड़ियाँ यहीं से

जुड़ी होती हैं। अक्षर ब्रह्म की अनन्त महिमा (ज्ञान, सृष्टि कर्तृत्व, लीला आदि) को दर्शाने की भावना से, अर्थात् केन्द्र में रखकर , इस सृष्टि की रचना की गयी है। इसलिये इसे नाभि कमल से उत्पन्न हुआ कहा गया है। यहाँ जल में उत्पन्न होने वाले पञ्चभूतात्मक स्थूल कमल का भाव नहीं लेना चाहिये। जब पञ्चभूत ही नहीं थे , तो कमल कैसे बन गया?

वैराट वेदों देख के, बूझ करी सेवा एह।

देव जैसी पातरी, ए चलत दुनियां जेह॥२१॥

इस स्वप्नवत् संसार तथा अथाह ज्ञान वाले वेदों को आदिनारायण की रचना मानकर इस जगत के लोगों ने वेदों के प्रति अपनी अपार श्रद्धा रखी। "जैसा देवता वैसा ही पूजन" के आधार पर इस संसार के लोग व्यवहार

करते हैं।

भावार्थ- "जैसा देवता वैसा ही पूजन" एक मुहावरा है। इसका आशय यह है कि इस स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड में स्वप्न की बुद्धि में प्रकट होने वाले वैदिक ज्ञान को स्वप्न की बुद्धि वाले मानव जितना समझ पाते हैं, उतना ही आत्मसात् कर पाते हैं। यद्यपि वेदों में सत्य ज्ञान का भण्डार है, किन्तु उसके वास्तविक अभिप्राय को समझ पाना जन साधारण के लिये बहुत ही कठिन होता है। यही कारण है कि स्वार्थी विद्वानों के द्वारा वेदों की ओट में छलपूर्वक अनेक वेद-विरुद्ध सिद्धान्तों (मृतक श्राद्ध, जड़ पूजा, माँसाहार, जन्मना वर्ण व्यवस्था, बहुदेववाद आदि) का पोषण किया जाता है।

ए जो बोले साधू सास्त्र, जिनकी जैसी मत।

ए मोहोरे उपजे मोहके, तिनको ए सब सत॥२२॥

शास्त्रों के ज्ञान एवं अपनी साधना के अनुभव के आधार पर, सन्तजन अपनी बुद्धि के अनुसार सत्य को जितना समझ पाते हैं, उतना ही व्यक्त करते हैं। मोह सागर से उत्पन्न होने वाले इन जीवों को तो यह सारा जगत ही सत्य एवं अनादि प्रतीत होता है।

तबक चौदे देखे वेदों, निराकार लों वचन।

उनमान आगे केहेके, फेर पड़े मांहें सुन॥२३॥

वेदों का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने चौदह लोकों के त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड तथा निराकार-मण्डल तक का वर्णन किया। इसके परे शब्दातीत अद्वैत मण्डल का कथन करने में वे अपने को असहज अनुभव करने लगे

तथा अनुमान से ज्योति स्वरूप कहकर पुनः शून्य के ही कथन में लग गये।

भावार्थ- जिस प्रकार किसी ग्राम के लोग आमोद-प्रमोद में मग्न होकर बहुत अधिक हँस रहे हों , तो आलंकारिक रूप में यही कहा जाता है कि आज सारा ग्राम हँस रहा है। विशेष तथ्य यह है कि ग्राम के निवासी ही हँस सकते हैं, उस ग्राम के भवन, मार्ग, या सरोवर आदि नहीं। ठीक इसी प्रकार वेदों का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने प्रकृति मण्डल (स्थूल लोक तथा कारण प्रकृति) तक का ज्ञान तो सरलता से प्राप्त कर लिया, किन्तु त्रिगुणातीत एवं शब्दातीत परब्रह्म को न तो यथार्थ रूप से समझ पाये और न व्यक्त कर पाये। वेदों में परब्रह्म के स्वरूप-वर्णन में आये हुए शब्दों "आदित्य वर्ण, भर्गः, शुक्र, चित्र ज्योतिः " आदि को देखकर उन्होंने

अनुमानपूर्वक ज्योति स्वरूप ही मान लिया। यद्यपि वे इतना अवश्य जानते थे कि ब्रह्म का स्वरूप त्रिगुणात्मक सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत आदि के प्रकाश से भिन्न है। ब्रह्म को सर्वज्ञ एवं अविनाशी सिद्ध करने के प्रयास में उन्होंने उसे प्रकृति मण्डल में सर्वत्र व्यापक और सूक्ष्म से सूक्ष्म कहा। परिणाम स्वरूप, उन्हें विवश होकर निराकार कहना पड़ा। जबकि कटु सत्य तो यह है कि चारों वेदों में कहीं भी निराकार शब्द नहीं है। बिना तारतम ज्ञान के ब्रह्म के धाम एवं स्वरूप को यथार्थ रूप से जान पाना सम्भव नहीं है।

ए देखो तुम जाहेर, पांचों उपजे तत्व।

ए मोह मिने मन खेलहीं, सब मन की उत्पत्त॥२४॥

हे साथ जी! आप इस बात को प्रत्यक्ष देखिये कि इन

पाँच तत्वों की उत्पत्ति मोहतत्व से ही हुई है। इसी मोहतत्व (महाशून्य) के अन्दर अव्याकृत का मन स्वप्न में आदिनारायण के रूप में क्रीड़ा करता है। इसी स्वाप्निक मन से सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

ए सारों में व्यापक, थावर और जंगम।

सबन थें एक है न्यारा, याको जाने सृष्टब्रह्म॥२५॥

यही आदिनारायण चर-अचर सभी प्राणियों में जीव रूप से व्यापक है। इन सबसे न्यारा एक अक्षरातीत है, जिसे मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं।

भावार्थ- स्थावर का अर्थ होता है- स्थिर रहने वाले, जैसे- पेड़, पौधे। जंगम का अभिप्राय है- चलते-फिरते रहने वाले अर्थात् मनुष्य, पशु-पक्षी आदि।

इन सभी प्राणियों में आदिनारायण की सांकल्पिक

प्रतिबिम्बत चेतना ही जीव रूप में विद्यमान होती है। इसी को प्राणियों में आदिनारायण की व्यापकता कहा जाता है। जड़-पदार्थों में आदिनारायण (ईश्वर) की मात्र सत्ता ही व्यापक होती है, स्वरूप नहीं। शबल ब्रह्म, ईश्वर, हिरण्य गर्भ, प्रणव, महाविष्णु आदि सभी शब्द आदिनारायण के ही पर्यायवाची शब्द हैं।

दसों दिसा भवसागर, देखत एह सुपन।

आवरण गिरद मोह को, निराकार कहावे सुन॥२६॥

दसों दिशाओं में सर्वत्र ही स्वप्नमयी भवसागर लहराता हुआ दिखायी दे रहा है। इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर मोहतत्व का आवरण है, जिसे निराकार या महाशून्य कहते हैं।

ए इंड सारा कोहेड़ा, खेल चौदे भवन।

सुर असुर कई अनेक भांते, हुआ छल उतपन॥२७॥

चौदह लोकों का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मोहतत्व से उत्पन्न हुआ है। इसमें सर्वत्र प्रपञ्च ही प्रपञ्च दिखायी दे रहा है। अज्ञानता का धुन्ध चारों ओर फैला हुआ है। इस ब्रह्माण्ड में देवता भी हैं और तमोगुणी राक्षस भी हैं, जो अनेक प्रकार से संसार चक्र में घूम रहे हैं।

वनस्पति पसु पंखी, आदमी जीव जंत।

मच्छ कच्छ सबसागर, रच्यो एह प्रपंच॥२८॥

यह सम्पूर्ण मायावी प्रपञ्च इस प्रकार बना हुआ है कि इसमें स्थल भाग पर अनेक प्रकार की वनस्पतियों, पशु-पक्षी, मनुष्य, तथा सागर में रहने वाले घड़ियाल और कछुए आदि अनेक प्रकार के जीव-जन्तु दृष्टिगोचर

होते हैं।

जीवों मिनें जुदी जिनसें, कहियत चारों खान।

थावर जंगम मिलके, लाख चौरासी निरमान॥२९॥

जीवों में अलग-अलग चार प्रकार की सृष्टि होती है-

१- अण्डे से (अण्डज) २- पिण्ड से (पिण्डज) ३- भूमि से अंकुरित होने वाली (उद्भिज) ४- पसीने आदि से (स्वेदज)। इस प्रकार चर-अचर सभी प्राणी ८४ लाख योनियों के अन्तर्गत निवास करते हैं।

कोई बैकुंठ कोई जमपुरी, कोई स्वर्ग पाताल।

सब खेलें ख्वाबी पुतले, आड़ी मोह सागर पाल॥३०॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी लोक के

अतिरिक्त कोई वैकुण्ठ में रहता है , तो कोई नरक (यमपुरी) में। कोई स्वर्ग में रहता है, तो कोई पाताल में (पृथ्वी स्थित)। सभी प्राणियों के शरीर स्वप्नमयी नश्वर होते हैं और इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर मोह सागर का घेरा (आवरण) होता है।

जो बनजारे खेल के, तिन सिर जम को डंड।

कोइक दिन स्वर्ग मिने, पीछे नरक के कुंड॥३१॥

इस पृथ्वी लोक में जो भी प्राणी जन्म लेते हैं, उन्हें मरने के पश्चात् यमराज का दण्ड को भोगना पड़ता है। इसमें अपने शुभ कर्मों के अनुसार जीव कुछ दिनों तक तो स्वर्ग का सुख भोगते हैं और बुरे कर्मों के अनुसार नरक का दुःख भोगना पड़ता है।

भावार्थ— पौराणिक मान्यता के अनुसार यमराज मृत्यु

के देवता हैं, जो सभी प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार सुख या दुःख देते हैं। चित्रगुप्त उनका मन्त्री हैं, जो प्रत्येक प्राणी के शुभ-अशुभ कर्मों का लेखा रखते हैं।

वैदिक मान्यता के अनुसार "यम" का अर्थ समस्त सृष्टि पर शासन करने वाला एक अविनाशी ब्रह्म ही है। सबके चित्त में शुभ-अशुभ कर्मों का सम्पूर्ण विवरण विद्यमान रहता है। इस प्रकार चित्त ही चित्रगुप्त है। वस्तुतः वैदिक दृष्टि से स्वर्ग और नरक सुख और दुःख की अवस्था विशेष हैं, स्थान विशेष नहीं।

लाठी तेरे लोक पर, संजमपुरी सिरदार।

जो जाने नहीं जगदीस को, तिन सिर जम की मार॥३२॥

वैकुण्ठ के अतिरिक्त अन्य तेरह लोकों में यमपुरी के

स्वामी यमराज का शासन चलता है। जो जीव विष्णु भगवान की भक्ति नहीं करते , उन्हें यमराज का दण्ड भुगतना पड़ता है।

भावार्थ- यमराज की पुरी को यमपुरी कहते हैं। वैकुण्ठ के अतिरिक्त अन्य सभी लोकों में कर्मफल का भोग होता है। जीवों का मुक्तिधाम होने से वैकुण्ठ में यमराज का शासन नहीं होता है।

ए छल बनज छोड़ के, करे बैकुंठ वेपार।

ए सत लोक इनका, कोई गले निराकार॥३३॥

इस पृथ्वी लोक में जो मनुष्य छल-कपट का मार्ग छोड़कर वैकुण्ठ-विहारी विष्णु भगवान की भक्ति करते हैं, वे सत्यलोक अर्थात् वैकुण्ठ को प्राप्त होते हैं। अन्य लोग निराकार में लय हो जाते हैं।

भावार्थ- वैकुण्ठ त्रिगुणात्मक है, इसलिये जीव का अन्तःकरण वहाँ भी सुरक्षित रहता है। ब्रह्म को निराकार मानने वाले प्रकृति मण्डल में इच्छानुसार भ्रमण करते हुए मुक्ति सुख का उपभोग करते हैं, किन्तु प्रलय की अवस्था में उनका अन्तःकरण कारण प्रकृति में विलीन हो जाता है और जीव भी आदिनारायण का सांकल्पिक प्रतिबिम्बित चैतन्य होने से अपने मूल स्वरूप को प्राप्त हो जाता है (अस्तित्व विहीन हो जाता है)। इसे ही लीन हो जाना कहते हैं। बोलचाल की भाषा में इसे ही ब्रह्मलीन होना कहा जाता है, किन्तु अखण्ड ब्रह्म में किसी का भी लीन होना सम्भव नहीं है। वस्तुतः विलीनवाद का यह सिद्धान्त मात्र आदिनारायण (शबल ब्रह्म, ईश्वर) के साथ ही घटित हो सकता है।

तबक चौदे इंड में, जिमी जोजन कोट पचास।

पहाड़ कुली अष्ट जोजन, लाख चौसठ बास॥३४॥

इस ब्रह्माण्ड में चौदह लोक हैं। इस पृथ्वी लोक का परिमाण, श्रीमद्भागवत् के अनुसार, ५० करोड़ योजन है। आठ लाख योजन में सभी पर्वत हैं तथा ६४ लाख योजन में मनुष्यों की बस्ती है।

पांच तत्व छठी आत्मा, सास्त्र सबों ए मत।

यों निरमान बांध के, ले सुपन किया सत॥३५॥

सभी शास्त्रों का ऐसा मत है कि पाँच तत्वों के इस शरीर में छठा पदार्थ आत्म-चैतन्य (जीव) है। इस प्रकार की धारणा बनाकर शास्त्रों के मर्मज्ञों ने इस स्वप्नमयी जगत को ही सत्य सिद्ध कर दिया है।

भावार्थ- विद्वानों का कथन है कि प्रकृति अनादि तत्व

है। भले ही यह कारण रूप में हो या कार्य रूप में हो। इस प्रकार से यह जगत सत्य है, किन्तु आदिशंकराचार्य जी ने इसे स्वप्न के समान परिवर्तनशील होने से मिथ्या माना है।

देखे सातों सागर, और देखे सातों लोक।

पाताल सातों देखिया, जागे पीछे सब फोक॥३६॥

मैंने सातों सागरों सहित इस पृथ्वी लोक का निरीक्षण किया। इसके अतिरिक्त ऊपर के अन्य छः लोकों और सात पाताल लोकों को भी मैंने देखा। किन्तु तारतम्य वाणी के प्रकाश में जाग्रत होकर देखने पर तो ऐसा लगता है कि चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड है ही नहीं।

भावार्थ— सात सागर इस प्रकार हैं—

१—हिन्द महासागर २—प्रशान्त महासागर ३—अन्ध

महासागर ४ – दक्षिण महासागर ५ – उत्तर महासागर ६ –
भूमध्य सागर ७ – अरब सागर। इन सातों सागरों के
किनारे की भूमि ही सात पाताल लोक कहलाती है।
पृथ्वी के अन्दर या पृथ्वी लोक से दूर सात पाताल
लोकों की कल्पना उचित नहीं है।

प्रकरण ॥१७॥ चौपाई ॥४३१॥

प्रकरण अवतारों का

इस प्रकरण में भगवान विष्णु के सभी अवतारों का वर्णन करते हुए श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

ए ऐसा था छल अंधेर, काहूँ हाथ ना सूझे हाथ।

बंध पड़े दृष्ट देखते, तामे आया सारा साथ॥१॥

अज्ञानता के छलमयी अन्धकार से परिपूर्ण इस नश्वर जगत का खेल देखने के लिये परमधम से सभी ब्रह्मसृष्टियाँ आयी हुई हैं। तारतम ज्ञान के अवतरण से पूर्व इसमें इतना अन्धकार था कि किसी एक हाथ को दूसरे हाथ का ज्ञान नहीं होता था, अर्थात् किसी को भी अपने या अन्य के वास्तविक (चैतन्य) स्वरूप के विषय में कुछ भी पता नहीं था कि मैं कौन हूँ और कहाँ से

आया हूँ। यहाँ तो सांसारिक पदार्थों की ओर देखने मात्र से उनके मोह बन्धन में जीव को बँध जाना पड़ता है।

तो पिया मिने आए के, सब छुड़ाई सोहागिन।

बोए के नूर प्रकासिया, बीज ल्याए मूल वतन॥२॥

ऐसी स्थिति में प्रियतम अक्षरातीत ने परमधाम से आकर सभी ब्रह्मसृष्टियों को माया के बन्धन से छुड़ाया। उन्होंने परमधाम से तारतम ज्ञान का बीज लाकर मेरे हृदय रूपी क्षेत्र में बोया, जिसका परिणाम यह हुआ है कि अब तारतम वाणी के रूप में परमधाम के ज्ञान का प्रकाश फैल रहा है।

भावार्थ— तारतम ज्ञान के अवतरण से ही यह निश्चित हो गया कि अब सभी सखियों के लिये माया से परे जाने का मार्ग मिल गया है। इसे ही आलंकारिक भाषा में

सबको छुड़ाने के कथन के रूप में दर्शाया गया है।

ए खेल किया तुम खातिर, तुम देखन आइयां जेह।

खेल देख के चलसी, घर बातां करसी एह॥३॥

हे साथ जी! यह माया का खेल आपके देखने के लिये ही बनाया गया है। आप इस स्वप्नमयी खेल को देखने के लिये आये हैं। जब हम इस मायावी जगत की लीला को देखकर परमधाम चलेंगे, तो वहाँ पहुँचकर यहाँ की सारी बातें करेंगे।

तुम खेल देखन कारने, किया मनोरथ एह।

ए माप्या तुम वास्ते, कोई राखूं नहीं संदेह॥४॥

आपने परमधाम में माया का खेल देखने की इच्छा की थी। इसलिये यह संसार आपको दिखाने के लिये ही

बनाया गया है। इस सम्बन्ध में मैं आपके मन में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहने देना चाहती।

ए खेल सांचा तो देख्या, जो अखंड करुं फेर।

पार वतन देखाय के, उड़ाऊं सब अंधेर॥५॥

हमारे द्वारा इस खेल को देखे जाने की सत्यता तभी प्रमाणित होगी, जब मैं इसे ब्रज की लीला की भांति पुनः अखण्ड कर दूँ। मैं बेहद से परे परमधाम का ज्ञान देकर सबके हृदय में विद्यमान अज्ञानता के अन्धकार को पूर्णतया नष्ट कर देना चाहती हूँ।

ए दसों दिस लोक चौद के, विचार देखे वचन।

मोह सागर मथ के, काढ़े सो पांच रतन॥६॥

इस भवसागर में चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड है, जिस

की दसों दिशाओं में विद्यमान ज्ञान का मैंने चिन्तन किया। अन्ततः सार रूप में मैंने अक्षर ब्रह्म की सुरता रूपी पाँच ज्ञानी रत्नों का निकाला।

पेहेले कहे मैं साथ को, इन पांचों के नाम।

सुकदेव और सनकादिक, कबीर सिव भगवान॥७॥

पहले, अर्थात् प्रकाश ग्रन्थ में, मैं इन पाँच रत्नों के नाम बता चुकी हूँ। ये इस प्रकार हैं— १-शुकदेव जी २-सनकादिक (सनक, सनन्दन, सनातन, और सनत्कुमार) ३-कबीर जी ४-शिव जी ५-भगवान विष्णु।

भावार्थ— सनक, सनन्दन, सनातन, और सनत्कुमार को ब्रह्मा जी के मानसी पुत्र के रूप में माना जाता है। ये चारों ऋषि बचपन में ही परम तत्व की खोज में लग गये

थे। सामूहिक रूप में इन चारों को सनकादिक ऋषि कहते हैं। व्यक्तिगत रूप में गणना करने पर अक्षर ब्रह्म की सुरताओं की संख्या ८ हो जाती है।

नारायण विष्णु एक अंग, लक्ष्मी यार्थें उत्पन्न।

एह समावे याही में, ए नहीं वासना अन॥८॥

आदिनारायण एवं विष्णु भगवान एक ही अंग हैं। लक्ष्मी जी भी इन्हीं से उत्पन्न हुई हैं और इन्हीं में विलीन हो जाती हैं। इन्हें अलग से कोई सुरता नहीं माननी चाहिए।

भावार्थ— जब ब्रह्मा जी एवं भगवान शिव हिमालय पर ध्यान-साधना कर सकते हैं, तो भगवान विष्णु का भी साधना स्थान हिमालय का मानसरोवर क्षेत्र, जिसे क्षीर सागर कहा जा सकता है, होना चाहिए। इस सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही आदिनारायण (महाविष्णु, ऊंकार, हिरण्यगर्भ,

शबल ब्रह्म) होना चाहिए, जिनके सांकल्पिक-प्रतिबिम्बित रूप में अन्य सभी को मानना चाहिए। जब बेहद वाणी में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शिव जी के पूछने पर भगवान विष्णु ने कहा कि इस ब्रह्माण्ड जैसे असंख्य ब्रह्माण्ड इस सृष्टि में हैं, तो इससे स्पष्ट होता है कि सभी ब्रह्माण्डों में अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव होंगे।

निर्बीज समाधि द्वारा प्रत्येक जीव कैवल्य की अवस्था को प्राप्त कर आदिनारायण की स्वरूपगत समकक्षता प्राप्त कर सकता है। इस आधार पर भगवान विष्णु और आदिनारायण एक स्वरूप कहे जा सकते हैं। किन्तु यह कहना कि भगवान विष्णु से लक्ष्मी जी उत्पन्न हुई हैं और वे भगवान विष्णु में ही लीन हो जायेंगी, तो यह उचित नहीं है। अन्य प्राणियों की तरह लक्ष्मी जी को भी

आदिनारायण का प्रतिबिम्बित-सांकल्पिक चेतन ही मानना चाहिये।

इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे अपने अखण्ड प्रेम के द्वारा विष्णु भगवान के हृदय में लीन (प्रविष्ट) हो सकती हैं, किन्तु जीव की दृष्टि से तो उन्हें आदिनारायण में ही विलीन होना होगा।

सम्भवतः इस प्रकार का कथन वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामानुज शाखा के अंश-अंशीवाद के सिद्धान्त के आधार पर किया गया है। श्रीमद्भागवत् में इन्हीं सिद्धान्तों का पोषण किया गया है। वैष्णव आचार्यों ने अपने इष्ट को सर्वोपरि सिद्ध करने के लिये विष्णु की अंशरूपा लक्ष्मी को अंश सिद्ध किया है। यदि भगवान विष्णु के अंश से लक्ष्मी जी प्रकट होकर पुनः उनमें लीन हो जाती हैं, तो पार्वती जी भगवान शिव से एवं सरस्वती

जी ब्रह्मा जी से प्रकट होकर उनमें लीन क्यों नहीं हो सकतीं?

वस्तुतः इस प्रकार के कथन प्रेममयी भावुकता के आधार पर तो कहे जा सकते हैं, किन्तु यथार्थता के धरातल पर नहीं। सामवेद के कथन "आत्मा वै जायते पुत्रों" से क्या यह सिद्ध हो सकता है कि पिता के जीव से पुत्र का जीव उत्पन्न हो जाता है? यहाँ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पिता के शरीर एवं संस्कारों के द्वारा पुत्र के शरीर एवं संस्कारों का निर्माण होता है। कोई भी पिता अपने पुत्र के जीव और अन्तःकरण का निर्माण नहीं कर सकता।

एक जीव से दूसरे जीव का उत्पन्न होना और पुनः उसी में लीन होने का सिद्धान्त वेद-शास्त्रों के विपरीत है। यह वैष्णव सम्प्रदाय की व्यक्तिगत विचारधारा है, जो

श्रीमद्भागवत् आदि ग्रन्थों में दर्शायी गयी है। इसे अक्षरातीत का कथन न मानकर मात्र श्रीमद्भागवत् का ही कथन मानना चाहिए, जो प्रसंगानुसार जन-सामान्य को प्रबोधित करने के लिये किया गया है।

और एक कागद काढ़िया, सुकदेवजी का सार।

हृदियों का कोहेड़ा, बेहदी समाचार॥९॥

इसके अतिरिक्त मैंने एक और ग्रन्थ निकाला है, जिसमें शुकदेव जी के द्वारा वर्णित अखण्ड ज्ञान का सार तत्त्व दर्शाया गया है। यह ग्रन्थ हृद के जीवों के लिये तो कुहरे के समान है, जिसमें उन्हें कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता, किन्तु इसमें बेहद मण्डल की महारास का रहस्य छिपा हुआ है।

अवतार चौबीस विष्णु के, बैकुंठ थें आवें जाँएँ।

ए बिध जाहेर त्यों करुं, ज्यों सनंध सब समझाए॥१०॥

श्रीमद्भागवत् के अनुसार वैकुण्ठ में विराजमान भगवान विष्णु के २४ अवतार इस पृथ्वी लोक में हुआ करते हैं। मैं इस रहस्य को इसलिये उजागर कर रही हूँ, जिससे कि सभी को इसकी वास्तविकता का पता चल जाये।

अवतार एकैस इनमें, तिन आड़ा हुआ कल्पांत।

और कहावें तीन बड़े, भी कहूं तिनकी भांत॥११॥

इक्कीसवें अवतार के पश्चात् कल्पान्त में होने वाले प्रलय की तरह इस ब्रह्माण्ड का प्रलय हो गया था। इसके पश्चात् तीन बड़े अवतार और हुए हैं, जिनकी वास्तविकता को मैं प्रकट करती हूँ।

भावार्थ— इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि

बीसवाँ अवतार भगवान राम का होता है तथा इक्कीसवाँ अवतार श्री कृष्ण जी का होता है। ४ अरब ३२ करोड़ वर्षों के पश्चात् कल्पान्त का प्रलय होता है, किन्तु यह प्रलय ब्रह्मात्माओं के व्रज से रास में जाने के कारण पहले ही हो गया, क्योंकि अभी तक इस ब्रह्माण्ड (पूर्व ब्रह्माण्ड सहित) में केवल १ अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५३ हजार ११५ वर्ष ही हुए हैं।

अवतार एक श्रीकृष्ण का, मूल मथुरा प्रगट्या जेह।

दीदार देवकी वसुदेव को, दिया चतुरभुज एह॥१२॥

एक अवतार श्री कृष्ण जी का हुआ, जो मथुरा में कारागार के अन्दर हुआ। चतुर्भुज कहे जाने वाले भगवान विष्णु ने वसुदेव-देवकी को कारागार में दर्शन दिया।

वचन कहे वसुदेव को, फिरे बैकुंठ अपनी ठौर।

पीछे प्रगटे दोए भुजा, सो सरूप सनंध और॥१३॥

विष्णु भगवान ने वसुदेव और देवकी को उनके पूर्व जन्मों की याद दिलाकर स्पष्ट किया कि अब जिस बालक का जन्म होना है, उसे नन्द जी के घर किस प्रकार पहुँचाना है? इसके बाद वे अपने निवास स्थान वैकुण्ठ चले गये। तत्पश्चात् जो दो भुजा वाला बालक प्रकट होता है, उसमें अखण्ड धाम की शक्ति विद्यमान थी।

वसुदेव गोकुल ले चले, ताए न कहिए अवतार।

सो तो नहीं इन हृद का, अखंड लीला है पार॥१४॥

वसुदेव जी जिस बालक को लेकर गोकुल गये, उसे अवतार नहीं कहना चाहिए। इस बालक में वैकुण्ठ बिहारी

की शक्ति नहीं थी, अपितु निराकार के पार बेहद धाम की अखण्ड शक्ति विद्यमान थी।

भावार्थ- प्रकास हिन्दुस्तानी ३७/२९ की प्रकट वाणी में कहा गया है- "सो सुरत धनी को ले आवेश, नन्द घर कियो प्रवेश।" जब अक्षर ब्रह्म की आत्मा धाम धनी के आवेश के साथ नन्द जी के घर प्रवेश करती है, तो प्रश्न यह होता है कि वसुदेव जी जिस बालक को लेकर नन्द जी के घर आये, उसमें अखण्ड धाम की कौन सी शक्ति थी जिसके कारण उसे विष्णु भगवान के अवतारों में नहीं माना जाता?

सामान्यतः इस प्रश्न के उत्तर में पुराण संहिता एवं गर्ग संहिता का उद्धरण देकर यही कहा जाता है कि नित्य गोलोक की शक्ति ने उस बालक के तन में कारागार में प्रवेश किया था। इस सम्बन्ध में पुराण संहिता का यह

श्लोक भी देखने योग्य है—

लीलावासनया व्याप्ता शुद्धा वृत्तिः परात्मनः।

तस्या मावेशयामास गोलोकीयं रसं प्रभुः॥

पु. सं. २७/३१

अर्थात् अक्षर ब्रह्म की परात्म की शुद्ध वृत्ति परमधाम की लीला को देखने की इच्छुक थी। उसमें गोलोकी रसमयी प्रभु का आवेश था। इस विचारधारा का यह मानना है कि बेहद मण्डल में अनादि काल से राधा – कृष्ण की लीला चली आ रही है। वहाँ विरजा, श्रीदामा, कंस आदि सभी हैं। ये सभी ब्रज मण्डल में होने वाली लीला के समय अपने ऐश्वर्य के साथ अंश रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए थे। इस स्थिति में प्रश्न यह होता है कि बेहद की प्रेममयी लीला में अघासुर, बकासुर, पूतना, तथा कंस आदि की क्रूर लीलाओं की क्या आवश्यकता

है? बेहद मण्डल में यह कदापि सम्भव नहीं है कि विरजा क्रोधित होकर श्रीदामा को कंस राक्षस बनने का श्राप दे।

इतना अवश्य है कि अव्याकृत से लेकर सत्स्वरूप तक बेहद मण्डल है, जिसका विस्तार अनन्त है। इस मण्डल में अक्षर की सुरताओं तथा मुक्त जीवों के साथ बेहद के चारों अन्तःकरण की अखण्ड प्रेममयी लीला हुआ करती है जिनका ध्यान विष्णु भगवान सहित अक्षर की अन्य सुरतायें भी करती हैं, किन्तु उन्हें गोलोक ही कहा जाये तथा राधा-कृष्ण को अनादि काल से वहाँ की लीला में संलग्न माना जाये, ऐसा उचित प्रतीत नहीं होता।

ऐसा कहना भी सार्थक नहीं है कि कारागार में अक्षर ब्रह्म के चारों अन्तःकरण (अव्याकृत, सबलिक, केवल, तथा सत्स्वरूप) की शक्तियाँ उस बालक के तन में प्रविष्ट हो गयी थीं।

अब तक की सम्पूर्ण लीला में यही देखा गया है कि ब्राह्मी कार्यों में परब्रह्म के जोश (जिबरील) की ही भूमिका रही है। इस प्रकार यही मानना उचित लगता है कि कारागार में परब्रह्म के जोश (जिबरील) ने प्रवेश किया था, जिसके कारण उस स्वरूप को अवतार नहीं माना जा सकता। यद्यपि ऐसा कोई कथन लिखित में उपलब्ध नहीं है, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि तथा अब तक के घटनाक्रमों से यही मानना न्यायसंगत प्रतीत होता है।

ए कही सब तुम समझने, भानने मनकी भ्रांत।

बेहद विस्तार है अति बड़ा, या ठौर आड़ा कल्पांत॥१५॥

हे साथ जी! आपको वास्तविक सत्य का बोध कराने एवं अवतार के सम्बन्ध में आपके मन में उमड़ने वाली भ्रान्तियों को मिटाने के लिये ही मैंने ये सारी बातें कही

हैं। बेहद की लीला का विस्तार बहुत अधिक है। नन्द के घर अक्षर ब्रह्म की आत्मा एवं धाम धनी के जोश-आवेश द्वारा होने वाली ११ वर्ष ५२ दिन की प्रेममयी लीला के पश्चात् इस ब्रह्माण्ड का प्रलय हो गया।

भी कहूं तुमें समझाए के, तुम भानो धोखा मन।

अवतार सो अक्रूर संगे, जाए लई मथुरा जिन॥१६॥

हे साथ जी! इसके पश्चात् जो कुछ भी हुआ उसे मैं आपको समझाकर बताती हूँ, जिससे आप अपने मन के संशय को समाप्त कर सकें। अक्रूर जी के साथ जो श्री कृष्ण जी मथुरा गये, उन्हीं के साथ अवतार की लीला प्रारम्भ होती है।

इनमें भी है आंकड़ी, बिना तारतम समझी न जाए।

सो तुम दिल दे समझियो, नीके देऊं बताए॥१७॥

किन्तु इसमें भी गुह्य रहस्य है, जिसे तारतम ज्ञान के बिना नहीं समझा जा सकता। इसलिये आप इसे ध्यानपूर्वक सुनिये। मैं आपको अच्छी प्रकार से समझा रही हूँ।

सात चार दिन भेख लीला, खेले गोवालों संग।

सात दिन गोकुल मिने, दिन चार मथुरा जंग॥१८॥

श्री कृष्ण जी ने सात दिन गोकुल में तथा चार दिन मथुरा में ग्वालों के भेष में रहकर ग्वाल बालकों के साथ लीला की। गोकुल के सात दिनों में उन्होंने गोप बालकों तथा गोपियों के साथ प्रेममयी लीलायें की। मथुरा में चार दिनों तक युद्ध किया।

धनक भान गज मल मारे, तब हुए दिन चार।

पछाड़ कंस वसुदेव छोड़े, या दिन थें अवतार॥१९॥

मथुरा में उन्होंने रंगशाला में रखे हुए विशाल धनुष को तोड़ा, बहुत बल वाले कुबलयापीड़ हाथी तथा चाणूर एवं मुष्टिक नामक पहलवानों को मारा। इतनी अवधि में चार दिन व्यतीत हो गये। इसके पश्चात् कंस को मारकर, जब उन्होंने वसुदेव-देवकी को कारागार से मुक्त किया और स्नान करके राजसी वस्त्र धारण किए, तब से अवतार की लीला प्रारम्भ होती है।

अब आई बात हृद की, हिसाब चौदे भवन।

सब बात इत याही की, कहे अटकलें और वचन॥२०॥

अब यहाँ से चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान विष्णु की लीला का प्रारम्भ होता है। तारतम

ज्ञान की दृष्टि के न होने से संसार के ज्ञानीजन अपने अनुमान से ११ वर्ष ५२ दिन वाली ब्रज लीला तथा ११ दिन की लीला करने वाले स्वरूप को भी वैकुण्ठ के स्वामी भगवान विष्णु से ही जोड़ देते हैं।

भावार्थ— ११ वर्ष ५२ दिन की लीला अक्षरातीत के आवेश ने की। इसके पश्चात् ११ दिन की लीला बांके बिहारी के नूरमयी तन के आवेश ने की तथा शेष ११२ वर्ष की लीला वैकुण्ठ के स्वामी भगवान विष्णु ने की। यही त्रिधा लीला है।

जुध किया जरासिंधसों, रथ आयुध आए खिन मांहें।
तब कृष्ण विष्णु मय भए, बैकुंठ में विष्णु तब नाहें॥२१॥
जब जरासिन्ध से युद्ध हुआ, तब क्षण भर में उनके रथ और अस्त्र-शस्त्र उपस्थित हो गये। उस समय श्री कृष्ण

जी पूर्ण रूप से विष्णुरूप हो गये और वैकुण्ठ में विष्णु भगवान की उपस्थिति नहीं रही।

बैकुंठ थें जोत फिर आई, सिसुपाल किया हवन।

मुख समानी श्रीकृष्ण के, यों कहे वेद वचन॥२२॥

श्रीमद्भागवत् १०/७४/४३ में श्री कृष्ण जी के द्वारा शिशुपाल के वध का वर्णन है। श्लोक ४५ में कहा गया है कि मृत्यु के पश्चात् शिशुपाल की ज्योति वैकुण्ठ गयी , किन्तु भगवान विष्णु के वहाँ पर न होने से पुनः वापस आकर उनके मुख में समा गयी।

किया राज मथुरा द्वारका, बरस एक सौ और बार।

प्रभास सब संघार के, जाए खोले बैकुंठ द्वार॥२३॥

भगवान विष्णु के अवतार श्री कृष्ण जी ने मथुरा एवं

द्वारिका में ११२ वर्ष तक राज्य किया। अन्त में प्रभास क्षेत्र में सभी यदुवंशियों का संहार कराकर स्वयं वैकुण्ठ पधारे।

गोप हुता दिन एते, बड़ी बुध का अवतार।

नेक अब याकी कहूं, ए होसी बड़ो विस्तार॥२४॥

आज दिन तक जाग्रत बुद्धि का अवतार गोपनीय ही रहा था। इस अवतार के सम्बन्ध में मैं थोड़ी सी बात बताती हूँ। वस्तुतः इसकी लीला का बहुत अधिक विस्तार होगा।

कोइक काल बुध रास की, लई ध्यान में सकल।

अब आए बसी मेरे उदर, वृध भई पल पल॥२५॥

कुछ समय तक जाग्रत बुद्धि अखण्ड रास के ध्यान में

मग्न रही। अब मेरे हृदय में वि.सं. १७१२ में विराजमान हो गयी, जिसके ज्ञान में धनी के आवेश से पल-पल वृद्धि होती गयी।

अंग मेरे संग पाई, मैं दिया तारतम बल।

सो बल ले वैराट पसरी, ब्रह्मांड कियो निरमल॥२६॥

मेरे हृदय में जाग्रत बुद्धि को जब मेरी सान्निध्यता प्राप्त हुई, तो मैंने उसे तारतम की शक्ति दी। उस शक्ति से वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैल गयी और इसे निर्मल कर दिया।

भावार्थ- "साक्षात् स्वरूप इन्द्रावती, तारतम को अवतार", कलस हिन्दुस्तानी २३/५६ के इस कथन से सिद्ध है कि श्री इन्द्रावती जी को तारतम का अवतार कहा गया है क्योंकि उनके धाम हृदय में साक्षात् अक्षरातीत का आवेश स्वरूप विराजमान है। श्री

इन्दावती जी के हृदय में अक्षरातीत की सम्पूर्ण निधियाँ (ज्ञान, बल, प्रेम) लीला कर रही हैं। तारतम ज्ञान के रूप में अक्षरातीत का हृदय ही ज्ञान रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। इस प्रकार तारतम के बल का आशय है, अक्षरातीत के हृदय में विद्यमान सम्पूर्ण सत्य एवं परमसत्य (हकीकत तथा मारिफत) का भण्डार, जो अब तक जाग्रत बुद्धि के पास नहीं था।

दैत कलिंगा मार के, सब सीधा होसी तत्काल।

लीला हमारी देखाए के, टालसी जम की जाल॥२७॥

यह जाग्रत बुद्धि (इस्त्राफील) अज्ञान रूपी राक्षस कलियुग का संहार करेगी, जिससे उसी क्षण प्रियतम को पाने की सभी बाधाएँ नष्ट हो जायेंगी। जब जाग्रत बुद्धि के ज्ञान के प्रकाश में संसार को परमधाम की लीला का

बोध होगा, तो जन्म-मरण का बन्धन समाप्त हो जायेगा।

दैत ऐसा जोरावर, देखो व्याप रह्या वैराट।

काम क्रोध अहंकार ले, सब चले उलटी बाट॥२८॥

अज्ञान रूपी यह राक्षस इतना शक्तिशाली है कि समस्त ब्रह्माण्ड में इसका साम्राज्य फैला हुआ है। इसके अधीन होने के कारण ही सभी लोग काम, क्रोध, और अहंकार आदि विकारों में लिप्त हैं। परिणाम स्वरूप, वे धाम धनी से विमुख होकर पतन की राह पर चल रहे हैं।

याको संघारसी एक सब्दसों, बेर ना होसी लगार।

लोक चौदे पसरसी, इन बुध सब्दको मार॥२९॥

जाग्रत बुद्धि, परमधाम के ज्ञान के एक शब्द मात्र से, पल भर में ही अज्ञानता के राक्षस का संहार कर देगी।

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में जाग्रत बुद्धि के ज्ञान की गरिमा फैल जायेगी।

भावार्थ- यदि पाप के कीचड़ में फँसे हुए किसी व्यक्ति के हृदय में श्री राजश्यामा, अक्षरातीत, परमधाम, या मूल मिलावा जैसे शब्द बस जायें, तो उसके जीवन की दशा ही बदल जाती है। इसे ही अज्ञान रूपी कलियुग का विनाश करना कहा गया है। इसका प्रत्यक्ष रूप योगमाया के ब्रह्माण्ड में सातवें दिन की लीला में देखने को मिलेगा, जब सभी प्राणी निर्मल होकर अखण्ड मुक्ति के अधिकारी बनेंगे।

वैराट सारा लोक चौदे, चले आप अपनी मत।

मन माने खेलें सब कोई, ग्रास लिए असत॥३०॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में सभी लोग अपने-अपने

सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार ही चलते हैं। इस प्रकार वे झूठ के वशीभूत हो जाते हैं तथा मन के निर्देश पर उल्टी दिशा में भटकते रहते हैं।

मैं मारुं तो जो होए कछुए, ना खमें हरफ की डोट।

मेरी बुधें एक लवे से, ऐसे मरे कोटान कोट॥३१॥

यदि इस कलियुग रूपी राक्षस में कोई शक्ति होती, तो मैं इसे मारती। यह तो मेरे हृदय में निवास करने वाली जाग्रत बुद्धि के एक शब्द की मार को भी नहीं झेल सकता। मेरी जाग्रत बुद्धि के एक शब्द से इस कलियुग जैसे करोड़ों कलियुग पल भर में समाप्त हो जाते हैं।

भावार्थ— जिस प्रकार सूर्य के उदित होते ही पृथ्वी का अन्धकार क्षण भर में नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार परमधाम के ज्ञान रूपी सूर्य के समक्ष इस ब्रह्माण्ड की

अज्ञानता का अन्धकार नहीं रह सकता।

उठी है बानी अनेक आगम, याको गोप है उजास।

वैराट सनमुख होयसी, बुध नूर के प्रकास॥३२॥

जाग्रत बुद्धि के ज्ञान के प्रकटन के सम्बन्ध में अनेक धर्मग्रन्थों में बहुत सी भविष्यवाणियाँ हैं, किन्तु अभी तक जाग्रत बुद्धि का ज्ञान छिपा ही रहा है। इस तारतम ज्ञान के प्रकाश को पाकर यह सारा ब्रह्माण्ड बेहद मण्डल में अखण्ड हो जायेगा।

चलसी सब एक चालें, दूजा मुख ना बोले वाक।

बोले तो जो कछू होए बाकी, फोड़ उड़ायो तूल आक॥३३॥

इस तारतम ज्ञान के प्रकाश में आ जाने वाले सभी लोग एकमात्र परमधाम की ही राह पर चलेंगे। वे अपने मुख से

अपने आराध्य के रूप में एकमात्र अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य किसी का नाम नहीं लेंगे। वे किसी अन्य (देवी-देवता आदि) को अपना सर्वेश्वर प्रियतम तो तब मानते, जब उनके अन्दर किसी भी प्रकार का संशय बचा होता। हवा में उड़ जाने वाले आक की रुई के फुए की भांति तारतम ज्ञान ने सबके संशय को पूर्णतया उड़ा दिया है।

अब एह वचन कहूं केते, देसी दुनियां को उद्धार।

मेरे संग आए बड़ी निध पाई, सो निराकार के पार॥३४॥

अब मैं इस बात को किस प्रकार व्यक्त करूँ ? यह जाग्रत बुद्धि अपने अलौकिक ज्ञान से सम्पूर्ण विश्व का उद्धार करेगी। मेरी सान्निध्यता में इसने अक्षरातीत के चरण-कमलों को प्राप्त कर लिया , जिसके परिणाम

स्वरूप इसे निराकार-बेहद से परे परमधाम का सम्पूर्ण सत्य प्राप्त हो गया है।

पार बुध पाए पीछे, याको होसी बड़ो मान।

अछर नेक ना छोड़े न्यारी, ए उदयो नेहेचल भान॥३५॥

बेहद से परे परमधाम का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् इस जाग्रत बुद्धि की बहुत अधिक महिमा होगी। अब धाम धनी की छत्रछाया में परमधाम के ज्ञान का ऐसा अखण्ड सूर्य उदित हुआ है, जिसे अक्षर ब्रह्म एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़ेंगे।

भावार्थ- खिलवत १५/१७ के कथन-

तुम कूदत हो अर्स में, अपने इस्क के बल।

तब सुध जरा ना रहे, रहे न एह अकल॥

से यह स्पष्ट है कि परमधाम में जाग्रत बुद्धि से भी परे

की निज बुद्धि रहती है, जिसमें एकत्व (वहदत) और प्रेम (इश्क) का रस है। श्री राज जी, श्यामा जी, एवं सखियों में यही निज बुद्धि है। इसी निज बुद्धि के द्वारा अक्षरातीत को रिझाया जाता है। इसे प्राप्त करने का सौभाग्य इस सृष्टि के ऋषि-मुनियों को तो क्या, नारायण एवं अक्षरातीत के सत् अंग कहे जाने वाले अक्षर ब्रह्म को भी प्राप्त नहीं हो सका है। तारतम वाणी के अवतरण से पूर्व, अक्षर ब्रह्म तो युगल स्वरूप और परमधाम की शोभा एवं लीला की वास्तविकता (हकीकत) एवं परमसत्य (मारिफत) को भी नहीं जानते थे। उपरोक्त चौपाई के कथन से यह स्पष्ट होता है कि श्री महामति जी के धाम हृदय में जाग्रत बुद्धि के साथ गोप्य रूप में निज बुद्धि की भी लीला होती है। "बुध मूल वतन" में जाग्रत बुद्धि एवं निज बुद्धि दोनों का ही समावेश होता है।

जब एक ही अक्षरातीत के दो स्वरूप सत् एवं चिद्धन हैं तथा उनकी लीला क्रमशः सत्ता एवं प्रेम-आनन्द की है, तो लीला में बुद्धि भी दो प्रकार की क्यों नहीं हो सकती? क्या जो बुद्धि असंख्य ब्रह्माण्डों का प्रलय करने वाले अक्षर ब्रह्म की है, वही बुद्धि श्यामा जी की भी हो सकती है, कदापि नहीं?

स्वयं अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि भी दो प्रकार की क्यों नहीं हो सकती? क्या जो बुद्धि रास रात्रि के पश्चात् वि.सं. १७३५ तक बाट देखती रही कि परब्रह्म की निज बुद्धि कब आयेगी जिसके अनुपम ज्ञान से मैं कृतार्थ हो जाऊँगी, उन दोनों में कोई अन्तर नहीं? "धनी जी ध्यान तुमारे, बैठे बुध जी बरस सहस्र चार", किरंतन ५३/११ का यह कथन भी यही संकेत कर रहा है कि जाग्रत बुद्धि के अतिरिक्त निज बुद्धि भी है, जिसके द्वारा

अक्षरातीत के हृदय के गुह्य रहस्य स्पष्ट होते हैं। यदि श्यामा जी के पास निज बुद्धि नहीं है, तो वे सुन्दरसाथ को परमधाम का रस कैसे पिलाती हैं। "ए रसना स्यामाजी की, पिलावत रस रब" का कथन बहुत कुछ कह रहा है।

अवतार जो नेहेकलंक को, सो अस्व अधूरो रहयो।

पुरूख देख्यो नहीं नैनों, तुरी को कलंकी तो कहयो॥३६॥

धर्मग्रन्थों में जिस विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक अवतार का वर्णन किया गया है, वह अपने पहले तन की लीला में पूर्ण रूप से उजागर नहीं हो सका। उस लीला में आत्म-चक्षु न खुलने से लोगों को परब्रह्म की पहचान नहीं हो पायी, इसलिये जाग्रत बुद्धि रूपी घोड़े को कलंकित कहा गया है।

भावार्थ- "कल्कि" शब्द संज्ञा है, जबकि कलंकित (कलंकी) शब्द विशेषण। कल्कि का अर्थ घोड़ा है, इसी प्रकार तुरी शब्द का आशय भी घोड़े से है। वस्तुतः जाग्रत बुद्धि ही वह घोड़ा है, जिस पर सवार होकर पुरुष अर्थात् ब्रह्म को अपनी ज्ञान रूपी तलवार से अज्ञानता के राक्षसों का वध करना है।

निष्कलंक का तात्पर्य है— किसी भी प्रकार के कलंक (दोष) से रहित। इस जागनी ब्रह्माण्ड में दो तनों से परब्रह्म एवं जाग्रत बुद्धि की लीला होनी है – १. श्री देवचन्द्र जी, २. श्री मिहिरराज जी। पहले तन की लीला में धाम धनी जब जाग्रत बुद्धि रूपी घोड़े पर सवार हुए, उस समय तारतम वाणी का अवतरण न होने से सुन्दरसाथ मात्र चमत्कारों में ही फँसा रहा और स्वयं को जाग्रत नहीं कर सका—

सुन्दर बाइएँ देखिया, दिल के दीदो मांहें।

बृज रास और धाम की, पर जागनी की सुध नाहें।

सनंध ४१/१६

ब्रह्मसृष्ट हुती वृज रास में, प्रेम हुतो लछ बिन।

सो लछ अव्वल को ल्याए रुहअल्ला, पर न था आखिरी इलम पूरन॥

सिनगार १/४७

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के पश्चात् ,
जिन ३१३ सुन्दरसाथ ने उनसे तारतम ज्ञान ग्रहण
किया था, वे पुनः माया में सो गये। इस तन में जाग्रत
बुद्धि अर्थात् बुद्धावतार की जो लीला हुई, उसमें जाग्रत
बुद्धि पर यह कलंक (दोष) लग गया कि इससे (जागनी)
नहीं हुई। सुन्दरसाथ के अतिरिक्त अन्य ईश्वरी एवं जीव
सृष्टियों को कुछ भी पता नहीं चल पाया कि इस तन में
परब्रह्म का आवेश लीला कर रहा था।

इसके विपरीत, जब दूसरे तन (श्री मिहिरराज जी) में जाग्रत बुद्धि की लीला प्रारम्भ होती है, तो तारतम वाणी का अवतरण होता है, जिसमें सभी को जागनी का प्रकाश मिलता है, अर्थात् जाग्रत बुद्धि के घोड़े पर सवार अक्षरातीत के आवेश स्वरूप ने परमधाम के ज्ञान की तलवार से अज्ञानता का नाश कर दिया। इस प्रकार इस स्वरूप को कलंक रहित होने से निष्कलंक कहा गया।

उपरोक्त विवेचना के आधार पहले स्वरूप को "श्री विजयाभिनन्द बुद्ध" तथा दूसरे स्वरूप को "श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक" कहा जायेगा। यह विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य है कि विजयाभिनन्द का अर्थ होता है— विजय जिसका अभिनन्दन करे।

अवतार या बुध के पीछे, अब दूसरा क्यों कर होए।

विकार काढ़े विस्व के, सब किए अवतार से सोए॥३७॥

इस विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक अवतार के पश्चात् अब दूसरा अवतार कैसे हो सकता है? अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि ने इस संसार में प्रथम बार अवतरित होकर सम्पूर्ण विश्व के अज्ञान जनित अवगुणों (संशयों) को समाप्त कर दिया है।

अवतार से उत्तम हुए, तहां अवतार का क्या काम।

जहां जमे हुआ सब का, दूजा नेक न राख्या नाम॥३८॥

अब तक के सभी अवतारों से जो काम नहीं हो सका था, अर्थात् परमधाम एवं अक्षरातीत की पहचान नहीं मिल सकी थी, वह उत्तम कार्य इस निष्कलंक अवतार से हुआ है। ऐसी स्थिति में विष्णु भगवान के अवतारों की

आवश्यकता ही क्या है? इस अवतार से प्रकट होने वाले ज्ञान में सभी धर्मग्रन्थों (वेद-कतेब) का ज्ञान समाहित हो जाता है और उन रहस्यों का भी स्पष्टीकरण हो जाता है जिनका समाधान सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक नहीं हो सका था। इस प्रकार अब अन्य किसी ग्रन्थ में थोड़ा भी भटकने (खोज करने) की आवश्यकता ही नहीं रहती।

जहां पैए पाए पार के, हुआ नेहेचल नूर प्रकास।

तित अगिए अवतार में, क्या रहया उजास॥३९॥

इस अवतार के द्वारा अखण्ड परमधाम के तारतम ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो गया है, जिससे सभी को निराकार से परे बेहद एवं परमधाम के साक्षात्कार का मार्ग मिल गया है। इस अवस्था में भगवान विष्णु के अवतारों द्वारा

मिलने वाले जुगनू के समान प्रकाश वाले ज्ञान की क्या आवश्यकता है?

समझियो तुम या बिध, अवतार ना होवे अन।

पुरुख तो पेहेले ना कहयो, विचार देखो वचन॥४०॥

हे साथ जी! अब आप उपरोक्त विवेचना से समझ लीजिए कि इस निष्कलंक अवतार के पश्चात् अब कोई भी दूसरा अवतार नहीं होने वाला है। तारतम वाणी के वचनों का विचार करके देखिये, तो पहले तन की लीला में घोड़े को अधूरा कहा गया है क्योंकि उस पर सवार पुरुष (परब्रह्म) की पहचान किसी को नहीं हो सकी थी।

भावार्थ- यह वही कलश ग्रन्थ है, जिसे पढ़कर बिहारी जी ने कहा था- "यह कलश नहीं क्लेश है।" सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के नाम की ओट में पुत्र होने के कारण

उनकी गादी पर बैठने मात्र से बिहारी जी स्वयं को अक्षरातीत मानने लगे थे और श्री जी को समाज से बहिष्कृत करने के साथ-साथ परमधाम से भी बहिष्कृत करने का दावा करने लगे थे। ऐसी स्थिति में वंशवाद एवं गादी के आधार पर बिहारी जी की श्रेष्ठता का समर्थन करने वाले उन सुन्दरसाथ को भी मार्ग दर्शाने की आवश्यकता थी कि श्यामा जी के जिस पहले तन में अक्षरातीत की पूर्ण पहचान नहीं हो सकी थी , वह पहचान उस दूसरे तन में हो रही है जिसे श्यामा जी ने मिहिरराज जी के रूप में धारण किया है। उपरोक्त चौपाई के पहले एवं चौथे चरण में यह रहस्य छिपा हुआ है।

प्रकरण ॥१८॥ चौपाई ॥४७१॥

गोकुल लीला

इस प्रकरण में बेहद मण्डल (सबलिक के कारण) में अखण्ड होने वाली ब्रज लीला का वर्णन किया गया है।

जिन किनको धोखा रहे, जुदे कहे अवतार।

तो ए किनकी बुधें विष्णु को, जगाए पोहोंचाए पार॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि किसी के भी मन में संशय न रह जाये, इसलिये मैंने बुद्धावतार से अलग अन्य अवतारों का वर्णन किया है। अन्यथा किसी के भी मन में यह संशय हो सकता था कि किस अवतार की बुद्धि भगवान विष्णु को जाग्रत करके इस भवसागर से पार करेगी।

भावार्थ— इस प्रकरण से पूर्व के प्रकरण की चौपाई ३७, ३८, एवं ३९ में यह बात दर्शा दी गयी है कि जाग्रत बुद्धि

के अवतार के पश्चात् विष्णु के अवतारों की कोई आवश्यकता ही नहीं रह गयी। अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि अखण्ड धाम की है, जबकि व्रज लीला के समय के दोनों अवतार (१-कारागार में प्रकट होने वाला, २-जरासिन्ध से युद्ध करने वाला) भगवान विष्णु ने धारण किये थे। अब उन्हीं भगवान विष्णु को अखण्ड मण्डल का सुख इस जागनी लीला में प्रकट होने वाले जाग्रत बुद्धि के अवतार से मिलेगा। ऐसी अवस्था में विष्णु भगवान के अवतार की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

सुकें अवतार सब कहे, पर बुध में रहया उरझाए।

ए भी सीधा ना कहे सकया, तो क्यों इन कही जाए॥२॥

शुकदेव जी ने सभी अवतारों का वर्णन किया, किन्तु जाग्रत बुद्धि के अवतार का वर्णन करने में वे उलझ गये।

जब वे भी स्पष्ट रूप से नहीं बता सके, तो भला संसार के अन्य विद्वान कैसे बता सकते हैं?

भावार्थ- शुकदेव जी यह स्पष्ट नहीं कर सके कि बुद्धावतार कौन हैं तथा विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक अवतार कौन हैं? इसलिए बुद्ध और कल्कि कहकर छुट्टी पा ली। वस्तुतः जाग्रत बुद्धि ही वह घोड़ा (कल्कि) है, जिस पर सवार होकर परब्रह्म को अपनी ब्रह्मलीला करनी है। ऐसी अवस्था में जाग्रत बुद्धि और कल्कि एकार्थवाची सिद्ध होते हैं। इनको दो अवतार मानने का आशय यह है कि इस दूसरे अवतार की लीला में पूर्ण ज्ञान उतरा, जिससे उन्हें निष्कलंक अवतार कहा गया। अन्यथा दोनों अवतारों के साथ अक्षरातीत का आवेश ही भिन्न-भिन्न तनों (श्री देवचन्द्र जी एवं श्री मिहिरराज जी) में लीला कर रहा था।

ए तो अछरातीत की, लीला हमारी जेह।

पेहेले संसा सबका भान के, पीछे भी नेक कहूं बिध एह॥३॥

ब्रज (गोकुल) की लीला तो अक्षरातीत श्री राज जी द्वारा हमारे साथ की जाने वाली लीला है। सबसे पहले मैं आपके संशय मिटाऊँगी, तत्पश्चात् इस गोकुल लीला की भी थोड़ी सी वास्तविकता बताऊँगी।

वैराट की बिध कही तुमको, जिन कछू राखों संदेह।

अखंड गोकुल और प्रतिबिंब, ए भी समझाऊं दोए॥४॥

प्रकरण १६ में मैंने इस ब्रह्माण्ड की सारी वास्तविकता को दर्शा दिया है कि इसमें अज्ञानता का कितना कुहरा छाया हुआ है? अब मैं आपके मन में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहने देना चाहती, इसलिये मैं बेहद में अखण्ड होने वाली ब्रज लीला तथा इस नश्वर जगत में

होने वाली प्रतिबिम्ब लीला (महारास की प्रतिबिम्बित लीला) की यथार्थता को समझाती हूँ।

ए खेल देख्या तो सांचा, जो अखंड करुं इन बेर।

पार वतन देखाय के, सब उड़ाऊं अंधेर॥५॥

हमारे द्वारा इस खेल को देखा जाना तभी सत्य माना जायेगा, जब मैं इस जागनी ब्रह्माण्ड को पूर्णतया अखण्ड कर दूँ। मैं बेहद तथा परमधाम का ज्ञान देकर सबके अन्दर की अज्ञानता को समाप्त कर दूँगी।

अंतराए नहीं एक खिन की, अखंड हम पे उजास।

रास लीला श्रीकृष्ण गोपी, खेले सदा अविनास॥६॥

हमारे पास बेहद मण्डल की उस लीला का ज्ञान है, जो एक क्षण के लिए भी कभी समाप्त नहीं होती। महारास के

मण्डल (सबलिक के महाकारण) में श्री कृष्ण जी और गोपियाँ निरन्तर ही अखण्ड लीला में संलग्न हैं।

भावार्थ— महारास की लीला में वियोग लीला तो दर्शायी जाती है, पर लीला में क्षण भर का भी व्यवधान (रुकावट, अदृश्यता का प्रसंग) नहीं होता क्योंकि विरह की लीला भी महारास की ही अंगरूपा है।

प्रतिबिंब लीला या दिन थें, फेर के गोकुल आए।

चले मथुरा द्वारका, बैकुंठ बैठे जाए॥७॥

इस नये ब्रह्माण्ड का प्रारम्भ उस रास की रात्रि से होता है, जिसमें महारास की लीला प्रतिबिम्बित हुई। इसके पश्चात् श्री कृष्ण जी पुनः गोकुल में आये तथा ७ दिनों तक प्रेममयी लीला करने के पश्चात् अक्रूर जी के साथ मथुरा जाकर ४ दिन की लीला की। इसके पश्चात् वे

द्वारिका गये और ११२ वर्ष तक राज्य करने के बाद
वैकुण्ठ में जा विराजे।

तारतम नूर प्रगट्या, तिन तेजें फोरयो आकास।

लागी सिखर पाताल लो, अब रहे ना पकरयो प्रकास॥८॥

अब तारतम ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो गया है। इसका तेज पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक फैला हुआ है। इसने तो आकाश की भी सीमा का उल्लंघन कर बेहद मण्डल तक के ज्ञान का उजाला कर दिया है। अब किसी भी स्थिति में तारतम ज्ञान के प्रकाश को फैलने से रोका नहीं जा सकता।

भावार्थ- चौपाई ८ एवं ९ में मानवीय समाज में या इस चौदह लोकों के ब्रह्माण्ड में तारतम ज्ञान के फैलने का प्रसंग नहीं है, अपितु इस ब्रह्माण्ड से परे विद्यमान बेहद

के ज्ञान के अवतरण का प्रसंग है। इस प्रकार का कथन आलंकारिक है, क्योंकि केवल पृथ्वी लोक पर सैकड़ों ऐसे पन्थ हैं, जो तारतम वाणी एवं वेद के सिद्धान्तों के पूर्णतया विरुद्ध हैं। जिस प्रकार सूर्य के उग जाने पर भी जो लोग अपने कक्षों के दरवाजों एवं खिड़कियों को बन्द किये रहते हैं और सूर्य के उगने का लाभ नहीं उठा पाते, उसी प्रकार संसार के लोग भी मोह की ऐसी निद्रा में सोये हुए हैं कि तारतम वाणी के अवतरण का लाभ उन्हें पूर्ण रूप से नहीं मिल रहा है।

किरना सबमें कुलांभियां, गयो वैराट को अग्यान।

दृढ़ाए चित चौदे लोकको, उड़ाए दिया उनमान॥९॥

तारतम ज्ञान रूपी सूर्य की किरणें चारों ओर जगमगाने लगी हैं, जिससे इस ब्रह्माण्ड का अज्ञान समाप्त हो गया

है। चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड के लोग मात्र वैकुण्ठ-
निराकार तक का ही ज्ञान रखते थे और अनुमान से
बेहद लीला के सम्बन्ध में अटकलें लगाया करते थे।
तारतम ज्ञान ने उसे समाप्त कर बेहद की लीला को स्पष्ट
रूप से उजागर कर दिया है।

अब जोत पकरी ना रहे, बीच में बिना ठौर।

पसरके देखाइया, बृज अखंड जो और॥१०॥

अब तारतम ज्ञान की ज्योति बेहद मण्डल में स्थित ब्रज
लीला से पहले नहीं रुक सकती अर्थात् वैकुण्ठ -
निराकार इसका लक्ष्य नहीं हैं। अब यह बेहद (सबलिक
के कारण) में फैलकर अखण्ड ब्रज की लीला का वर्णन
कर रही है।

बताए देऊं बिध सारी, बृज बस्यो जिन पर।

अग्यारा बरस लीला करी, रास खेल के आए घर॥११॥

प्रियतम ने ब्रज में ११ वर्षों तक लीला की थी, जो बेहद मण्डल में जैसी-की-तैसी (हूबहू) अखण्ड हो गयी है। अब मैं आपको बेहद में अखण्ड उस ब्रज लीला के विषय में सम्पूर्ण वास्तविकता के साथ बता रही हूँ। प्रियतम के साथ हम सभी आत्मार्यें ब्रज से रास में आने के पश्चात् अपने धाम में आ गयी थीं।

गोकुल जमुना तट भला, पुरा ब्यालीस बास।

पुरा पासे एक लगता, ए लीला अखंड विलास॥१२॥

यमुना जी का किनारा बहुत ही सुन्दर है, जिसके तट पर ४२ पुरों में सम्पूर्ण गोकुल बसा हुआ है। इन पुरों के पास एक और पुरा (मोहल्ला) भी है। ब्रज की इस लीला

में अखण्ड आनन्द की वर्षा हो रही है।

बास बस्ती बसे घाटी, तीन खूने गाम।

कांठे पुरा टीवा ऊपर, उपनंद का ए ठाम॥१३॥

नदी के किनारे के नीचे (स्थल भाग की ओर) इस पुरे की बस्ती बसी हुई है। यह तिकोने आकार में बसा हुआ है। इस पुरे में कोने पर एक टीला है, जिस पर उपनन्द जी का निवास है।

भावार्थ- पर्वत के नीचे के भाग को घाटी कहते हैं। सम्भवतः यमुना जी के किनारे का भाग वहाँ ऊँचा है, जिसके एक ओर यमुना जी का जल बह रहा है, तो स्थल भाग की दिशा में कुछ नीची धरती पर इस ४३वें पुरे की स्थिति बतायी गयी है।

तरफ दूजी पुरे सारे, बीच बाट धेन का सेर।

इत खेले नंद नंदन, संग गोवालों के घेर॥१४॥

इस पुरे की दूसरी ओर सभी ४२ पुरे हैं। इन पुरों के बीच में गायों के आने-जाने का रास्ता बना हुआ है। इन सभी पुरों में श्री कृष्ण जी ग्वाल बालों के साथ उनके घरों में अति प्रेमपूर्वक खेला करते हैं।

पुरा पटेल सादूल का, बसे तरफ दूजी ए।

तरफ तीसरी वृखभानजी, बसे नाके तीनों ले॥१५॥

दूसरी ओर सादूल पटेल का पुरा बसा हुआ है, तो तीसरी ओर वृषभान जी का पुरा। इस प्रकार पुरों के तीनों कोने बसे हुए हैं।

नंदजी के पुरे सामी, दिस पूरव जमुना तट।

छूटक छाया वनस्पति, बृध आड़ी डालों बट॥१६॥

नन्द जी के पुरे के सामने पूर्व दिशा में यमुना जी का किनारा है। यहाँ पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर वृक्षों की छाया फैली हुई है। पुराने वट के वृक्ष की डालियों से निकलने वाली बड़वाइयाँ सामने लटकती हुई दिखायी देती हैं।

सकल बन छाया भली, सोभित जमुना किनार।

अनेक रंगे बेलियां, फल सुगंध सीतल सार॥१७॥

यमुना जी का तट बहुत ही सुन्दर लग रहा है। इसके तट पर आये हुए सम्पूर्ण वन में फैली हुई छाया बहुत ही मनभावन लग रही है। इन वन में अनेक रंगों की लतायें तथा फल एवं फूलों की शोभा है। फूलों की सुगन्धि से सुवासित शीतल वायु के झोंकों से यह सम्पूर्ण दृश्य बहुत

ही मनमोहक होता है।

तीन पुरे तीन मामों के, बसे ठाट बस्ती मिल।

आप सूरें तीनों ही, पुरे नंद के पाखल॥१८॥

श्री कृष्ण जी के तीन मामा हैं। ये तीनों बहुत ही वीर हैं। ये तीनों नन्द जी के पुरे के चारों ओर अपने पुर में रहते हैं, जिसमें लोगों की बस्ती बहुत ही सुन्दर ढंग से बसी हुई है।

भावार्थ— इस चौपाई में कहीं भी यह स्पष्ट नहीं है कि ये तीनों मामा किसके हैं— नन्द जी के या श्री कृष्ण जी के? इनको वीर कहे जाने से स्पष्ट होता है कि ये युवास्था में ही होंगे। इससे श्री कृष्ण जी का ही मामा होना प्रतीत होता है। सम्पूर्ण ब्रज लीला श्री कृष्ण जी को केन्द्र मानकर ही चलती है, इसलिये यहाँ श्री कृष्ण जी का ही

मामा होना सिद्ध होता है।

गांगा चांपा और जेता, ए मामा तीनों के नाम।

दखिन दिस और पछिम दिस, बसे फिरते गाम॥१९॥

तीन मामाओं के नाम गांगा, चांपा, और जेता हैं। इनके (पुरे) दक्षिण और पश्चिम दिशा में घेरकर आये हैं।

नंदजी के आठ मंदिर, मांडवे एक मंडान।

पीछे बाड़े गौओं के, तामें आथ सर्वे जान॥२०॥

नन्द जी के निवास में आठ कक्ष हैं, बीच में आँगन है, निवास के पीछे गौओं का बाड़ा है, जिसमें सभी गायें रहा करती हैं।

रेत झलके आंगने, दूध चरी चूल्हा आगल।

आईजी इन ठौर बैठें, और बैठें सखियां मिल॥२१॥

आँगन में रेत झलकार कर रही है। सामने चूल्हे पर दूध गरम हो रहा है। माता यशोदा यहीं पर अपनी सब सखियों के साथ बैठी हुई हैं।

मंदिर मोदी तेजपाल को, इत चरी चूल्हा पास।

कोइक दिन आए रहे, याको मथुरा में बास॥२२॥

तेजपाल मोदी का कक्ष चार मुख वाले चूल्हे के पास है। यद्यपि उनका मूल निवास मथुरा में है, किन्तु वे कभी-कभी यहाँ आकर रहा करते हैं।

विशेष- मोदी शब्द आजकल की भाषा का है। आज से ५००० वर्ष पूर्व जब व्रज लीला हुई थी, उस समय संस्कृत भाषा थी। इससे स्पष्ट होता है कि लीला का

वर्णन तो यथार्थ है, किन्तु नाम आजकल के प्रचलित नामों के आधार पर रखे गये हैं। गांगा, चांपा, जेता, भागवन्ती बाई, एवं जसोमति आदि नाम वर्तमान काल के ही हैं, ५००० वर्ष पूर्व के नहीं।

सरूप दस इत आरोगें, पाक साक अनेक।

भागवंती बाई भली पेरे, रसोई करे विवेक॥२३॥

नन्द जी के घर में १० सदस्य भोजन करते हैं। अनेक प्रकार की सब्जियाँ तथा पकवान आदि बनाये जाते हैं। भाग्यवन्ती बाई बहुत ही विवेकपूर्वक—सुन्दर ढंग से भोजन बनाती हैं।

लाड़लो नंद जसोमती, रोहिनी बलभद्र बाल।

पालक पुत्र कल्याणजी, वाको पुत्र गोपाल॥२४॥

इस परिवार में श्री कृष्ण जी, नन्द जी, यशोदा जी, रोहिणी (वसुदेव की पत्नी), उनके पुत्र बलदेव, पालक पुत्र कल्याण जी, तथा उनके पुत्र गोपाल जी रहते हैं।

बेहेने दोऊ जीवा रूपा, भेलियां रहें मोहोलान।

और बाई भागवन्ती, नारी घर कल्यान॥२५॥

श्री कृष्ण जी की दो बहनें जीवा और रूपा भी इस गृह में रहती हैं। इसके अतिरिक्त कल्याण जी की पत्नी भाग्यवन्ती बाई भी इसी घर में रहा करती हैं।

पुरो जो वृखभान को, भेलो भाई लखमन।

नंदजी के उत्तर दिसे, बसत बास पूरन॥२६॥

नन्द जी के पुर की उत्तर दिशा में साथ में ही वृषभान जी का पुर है, जो बहुत ही सुन्दर ढंग से बसा हुआ है।

उसके साथ में उनके भाई लक्ष्मण जी का भी पुरा है, जो सर्वत्र बसा हुआ है।

सरूप साते भली भांते, आरोगें अनं पाक।

कल्याण बाई रसोई करे, विध विध के बहु साक॥२७॥

इस परिवार में सात सदस्य रहते हैं। कल्याण बाई अनेक प्रकार की सब्जियाँ एवं अन्नादि के तरह-तरह के बहुत से पकवान बनाती हैं, जिसे सभी लोग रुचिपूर्वक ग्रहण करते हैं।

राधाबाई पिता वृखभानजी, प्रभावती बाई मात।

सुदामा कल्याणजी, यार्थें छोटो कृष्णजी भ्रात॥२८॥

इस परिवार में राधा जी, उनके पिता वृषभान जी, माता प्रभावती बाई, सुदामा, कल्याण जी, और उनसे भी छोटे

भाई श्री कृष्ण जी रहा करते हैं।

कल्याण बाई नारी सुदामा, अंग धरत अति बड़ाई।

करत हांसी कई भातें, याकी स्यामसों सगाई॥२९॥

सुदामा जी की पत्नी का नाम कल्याण बाई है। वे अपने हृदय में राधिका जी के लिये बहुत ही प्रेम भरा सम्मान रखती हैं। राधा जी की श्री कृष्ण जी के साथ सगाई हो चुकी है, इसलिए कल्याण बाई अपनी ननद राधिका जी से तरह-तरह से हास-परिहास करती हैं।

मंदिर छे मांडवे आगे, चरी चढ़े दूध माट।

स्यामा गोद प्रभावती, ले बैठत हैं खाट॥३०॥

वृषभान जी के निवास के आँगन के आगे छः कक्ष हैं। उनके गृह में चूल्हों पर मटकों में दूध उबल रहा है।

प्रभावती जी अपनी पुत्री राधिका जी को गोद में लेकर बैठी हुई दिखायी दे रही हैं।

विशेष- श्री महामति जी के द्वारा इस लीला का वर्णन प्रत्यक्ष रूप से देखकर हो रहा है। इसलिए इसे वर्तमान काल में ही प्रस्तुत किया जायेगा।

मांगा किया राधाबाई का, पर ब्याहे नहीं प्राणनाथ।

मूल सनमंधे एके अंगे, विलसत वल्लभ साथ॥३१॥

यद्यपि श्री राधा जी की मँगनी (सगाई) श्री कृष्ण जी के साथ हो गयी थी, किन्तु उनका विवाह नहीं हुआ। परमधाम के मूल सम्बन्ध से श्यामा जी और अक्षरातीत श्री प्राणनाथ (श्री राज जी) एक ही अंग-अंगी (स्वरूप) हैं। उसी सम्बन्ध से वे अपने प्राणेश्वर के साथ आनन्दमयी लीला करती हैं।

भावार्थ- राधा जी के अन्दर श्यामा जी की आत्मा थी तथा श्री कृष्ण जी के अन्दर अक्षरातीत श्री राज जी का आवेश था। लोकरीति में मँगनी शरीरों की हुई थी, किन्तु प्रलय हो जाने तथा श्री कृष्ण जी के मथुरा चले जाने के कारण यह सम्भव नहीं हो सका। श्यामा जी और राज जी तो एक ही स्वरूप हैं। इनमें कभी वियोग हो ही नहीं सकता।

यह विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य है कि ११ वर्ष ५२ दिन के पश्चात् प्रलय हो गया था, जिसमें युगल स्वरूप ने यहाँ के तनों को छोड़ दिया और योगमाया में रास लीला करने के पश्चात् परमधाम चले गये। कंस को मारने के लिये जो श्री कृष्ण मथुरा गये, उनमें श्री राज जी का आवेश नहीं था।

उपरोक्त चौपाई को पढ़कर उन सुन्दरसाथ को अपनी

भूल सुधारनी चाहिये, जो श्री मिहिरराज जी को प्राणनाथ मानते हैं और श्री कृष्ण जी को अक्षरातीत मानते हैं। वास्तविकता तो यह है कि श्री मिहिरराज एवं श्री कृष्ण जी के तन में एक ही अक्षरातीत (श्री राज जी) के आवेश स्वरूप ने लीला की थी, जिन्हें प्राणनाथ कहते हैं।

घुरसे गोरस हेत में, घर घर होत मथन।

खेले सब में सांवरो, मिने बाहेर आंगन॥३२॥

व्रज मण्डल में प्रत्येक घर में बहुत ही भाव से दही को मथा जा रहा है। सबके घरों के आँगन में और बाहर श्री कृष्ण जी प्रेमपूर्वक खेला करते हैं।

पुरे सारे बीच चौरे, बैठे गोप बूढ़े भराए।

चारों पोहोर गोठ घूघरी, खेलते दिन जाए॥३३॥

सभी पुरों के बीच में चबूतरे बने हैं, जिन पर वयोवृद्ध गोप बैठा करते हैं। चारों प्रहर (प्रातः से सन्ध्या समय तक) प्रीतिभोज के रूप में गेहूँ की खीर खाते हैं। इस प्रकार हँसते-खेलते सारा दिन बीत जाता है।

और सबे गौचारने, गोप गोवाला जाए बन।

भोर के बन संझा लों, यों होत बृज वरतन॥३४॥

सभी गोप और ग्वाल गाय चराने के लिये वन में जाया करते हैं। वे प्रातः के समय चले जाते हैं और सन्ध्या समय वापस लौटते हैं। इस प्रकार की प्रेम भरी लीला ब्रज में नित्य हो रही है।

भावार्थ- गोप और ग्वाल में सूक्ष्म सा अन्तर होता है।

नन्द जी को गोप कहा जाता है, ग्वाल नहीं। इसका मुख्य कारण यह है कि गोप का तात्पर्य है गायों का पालन करने वाला या बहुसंख्यक गायों का स्वामी, जबकि ग्वाल उसे कहते हैं जो सेवक के रूप में गायों की देखभाल करता है या जिसके पास बहुत थोड़ी सी गायें हों।

तेजपाल मोदी वलोट पूरे, जो कछू चाहिए सोए।

घृत लेवे बड़े बड़े ठौरों, और बिरतिया होए॥३५॥

जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, तेजपाल मोदी उसकी आवश्यकता पूर्ण करते हैं। वे बड़े-बड़े गोपों के घरों से घी खरीदते हैं और आपस में विवाह आदि के सम्बन्ध भी कराते हैं।

घोलिए इत घोल करने, आवत बृज में जे।

फेर जाए रहे मथुरा, वस्त भाव ले दे॥३६॥

मथुरा से अन्य व्यापारी भी व्यापार करने के लिये ब्रज में आया करते हैं। वे ब्रज से घी आदि खरीदकर पुनः मथुरा चले जाते हैं।

स्याम संग गोवाल ले, खेलत जमुना घाट।

विनोद में हम आवें जाएँ, जल भरने इन बाट॥३७॥

श्री कृष्ण जी ग्वाल बालकों को अपने साथ लेकर यमुना जी के तट पर खेला करते हैं। हँसी-हँसी में हम सखियाँ भी जल भरने के बहाने उनके पास चली जाती हैं।

विलास बृज में पियाजीसों, बरतत एह बात।

वचन अटपटे वेधें सब को, अहनिस एही तात॥३८॥

ब्रज की सबसे विशेष बात यह है कि वहाँ प्रियतम श्री कृष्ण जी के साथ सदा ही आनन्द की लीला होती रहती है। अनुपम प्रेम से भरे हुए उनके वचन सबके हृदय में चुभ (बस) जाते हैं। दिन-रात यही लीला चलती रहती है।

पिउ प्रेम में भीगा खेलहीं, पुरे सारो मांहें।

खेले खिन जासों ताए दूजा, सूझे नहीं कछु क्यांहें॥३९॥

दिव्य प्रेम में डूबे हुए श्री कृष्ण जी सभी पुरों में खेला करते हैं। वे जिसके साथ एक पल भी खेल लेते हैं, वह एकमात्र उन्हीं का होकर रह जाता है। उसे अन्य कुछ भी नहीं दिखता (सूझता)।

हम संग खेलें कई रंगे, जाते जमुना पानी।

आठों पोहोर अटकी अंगे, एक छब एह बानी॥४०॥

जब हम सखियाँ यमुना जी में जल भरने के लिए जाती हैं, तो वे हमारे साथ अनेक प्रकार की आनन्दमयी क्रीड़ाएँ करते हैं। उनकी अद्वितीय शोभा और मधुर वाणी अष्ट प्रहर, दिन-रात हमारे हृदय में बसी रहती है।

घर घर आनंद उछव, उछरंग अंग न माए।

विलास विनोद पिया संगे, अह निस करते जाए॥४१॥

सम्पूर्ण ब्रज मण्डल में घर-घर आनन्द में उत्सव मनाये जा रहे हैं। सभी के मन में अपार उमंग भरी रहती है। प्रियतम श्री कृष्ण जी के साथ हास-परिहास की आनन्द भरी लीलाएँ करते-करते प्रतिदिन का सारा समय ही बीत जाता है।

सुंदर बालक मधुरी बानी, घर ल्यावें गोद चढ़ाए।

सेज्याएँ खिन में प्रेमें पूरा, सुख देवें चित चाहे॥४२॥

श्री कृष्ण जी का स्वरूप अत्यन्त मनमोहक बालक का है। उनकी वाणी बहुत ही मधुर है। हम उन्हें गोद में बिठाकर अपने साथ घर लाया करती हैं। वे एक ही क्षण में किशोर स्वरूप धारण कर हमारी इच्छानुसार प्रेम का भरपूर सुख देते हैं।

भावार्थ- यद्यपि इस चौपाई में किशोर शब्द नहीं है , किन्तु क्षण (खिन) का प्रयोग होने से यही सिद्ध होता है कि श्री कृष्ण जी किशोर स्वरूप धारण कर लेते थे। कलस गुजराती ८/३१ में अवश्य "खिणमां जोवन प्रेमो पूरो" कहा गया है। बाल रूप में वात्सल्य भाव की प्रधानता रहती है, जबकि किशोर रूप में प्रेम भाव की। ब्रज में होने वाली परमधाम की अद्वैत प्रेममयी लीला में

किसी भी प्रकार के मानसिक विकार की कल्पना भी नहीं करनी चाहिये।

बाछरू ले बन पधारे, आठवें दसवें दिन।

कबूं गोवरधन फिरते, मांहे खेलें बारे बन॥४३॥

प्रायः श्री कृष्ण जी बछड़ों को लेकर आठवें-दसवें दिन जब वन में जाते हैं, तो कभी गोवर्धन के आस-पास, तो कभी बारह वनों में क्रीड़ा करते हैं।

भावार्थ- ब्रज मण्डल के १२ वन इस प्रकार हैं-

१-भांडिर वन, २-बेल वन, ३-बहुल वन, ४-भाद्र वन, ५-ताल वन, ६-वृन्दावन, ७-महावन, ८-लोह वन, ९-कुमुद वन, १०-काम्य वन, ११-गाडिर वन, १२-मधुवन। इसके अतिरिक्त २४ उपवन भी हैं।

अखंड लीला अहनिस, हम खेलें पिया के संग।

पूरे पिउजी मनोरथ, ए सदा नवले रंग॥४४॥

इस प्रकार यह प्रेममयी लीला निरन्तर अबाध गति से दिन-रात चलती रहती है। हम अपने प्रियतम के साथ तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करती हैं। धाम धनी हमारी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करते हैं। इस लीला में सदा ही नये-नये आनन्द प्रकट होते रहते हैं।

भावार्थ- वर्तमान समय में बेहद मण्डल (सबलिक के कारण) में जो ब्रज लीला अखण्ड है, उसमें न तो इन्द्रावती जी सहित अन्य आत्माएँ हैं और न श्री कृष्ण जी के अन्दर धाम धनी का आवेश है। चित्रपट के दृश्य की भांति वह लीला अखण्ड रूप से मात्र दृष्टिगोचर हो रही है, किन्तु वर्णन करते समय यही भाव किया जायेगा कि उसमें परमधाम की आत्माओं के साथ प्रियतम

अक्षरातीत ही लीला कर रहे हैं।

श्री राज बृज आए पीछे, बृज वधू मथुरा ना गई।

कुमारका संग खेल करते, दान लीला यों भई॥४५॥

श्री राज जी के (श्री कृष्ण तन में) व्रज में आने के पश्चात् वहाँ इतनी सुख-समृद्धि फैल गयी कि गोपियों को दही बेचने के लिये कभी भी मथुरा जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। कुमारिका सखियाँ भी गोपियों के साथ लीला में सम्मिलित होने लगीं। इसके पश्चात् दान लीला का प्रारम्भ हुआ।

भावार्थ- जब गोपियों का मथुरा जाना बन्द हो गया, तो उन्होंने अपने प्रियतम को रिझाने के लिये दही और मक्खन आदि को बेचने के बहाने श्री कृष्ण जी एवं ग्वाल बालकों में बाँटना प्रारम्भ कर दिया। इसे ही दान लीला

कहते हैं।

खेल खेलें कुमारका, चीले कुल अभ्यास।

दूध दही छोटे बासन, करे रंग रस बन विलास॥४६॥

दूध-दही बेचने की अपने कुल की परम्परा के अनुसार कुमारिकायें भी उसका अभ्यास करती हैं और गोपियों की तरह खेला करती हैं। वे छोटे-छोटे बर्तनों में दूध-दही भरकर वन में प्रेम ओर आनन्द की लीला करने जाती हैं।

बृज वधू मिने खेलने, संग केतिक जाए।

सांवरो इत दान लेने, करे आड़ी लकुटी ताए॥४७॥

कुछ कुमारिकायें गोपियों के साथ वन में भी खेलने के लिये जाया करती हैं। मार्ग में श्री कृष्ण जी खड़े हो जाते

हैं तथा दान (कर) के रूप में दूध, दही, या मक्खन लेने के लिये अपनी लाठी अड़ाकर मार्ग रोक देते हैं।

दूध दही माखन ल्यावें, हम पियाजी के काज।

तित दही हमारा छीन के, देवें गोवालों को राज॥४८॥

सच तो यह है कि हम प्रियतम को खिलाने के लिये ही दूध, दही, तथा मक्खन लाया करती हैं। धाम धनी हमारी दही छीन लिया करते हैं और उसे ग्वाल बालकों में बाँट दिया करते हैं।

भाग जाए गोवाल न्यारे, हम पकड़ राखें पिउ पास।

पीछे हम एकांत पिया संग, करें बन में विलास॥४९॥

श्री कृष्ण जी के बाल सखा (ग्वाल बाल) दही लेकर भाग जाते हैं और हम प्रियतम को अपने पास पकड़कर

रख लेती हैं। तत्पश्चात् हम सभी सखियाँ वन में अपने प्राणेश्वर के साथ एकान्त में आनन्दमयी लीला करती हैं।

कुमारका हम संग रहेती, पिउ खेलते सखियन।

मूल सनमंध कुमारकाओं का, या दिन थें उतपन॥५०॥

यद्यपि कुमारिका सखियाँ हमारे साथ अवश्य रहा करती हैं, किन्तु प्रियतम मात्र हमारे साथ ही प्रेममयी लीला करते हैं। उस लीला को देखकर उनके मन में भी प्रियतम के साथ प्रेममयी लीला का आनन्द लेने की इच्छा होती है।

भावार्थ— अक्षर ब्रह्म ने ब्रज की लीला का आनन्द लेने के लिये २४,००० नयी सुरतायें धारण की थीं। इनके बेहद मण्डल में कोई तन नहीं थे। कुमारिकाओं के हृदय में भी ब्रह्मसृष्टियों (गोपियों) की तरह अक्षरातीत का प्रेम

पाने की जो प्रबल इच्छा हुई, उसे ही उपरोक्त चौपाई में मूल सम्बन्ध का जाग्रत (अँकुरित) होना कहा गया है।

अखंड लीला अति भली, नित नित नवले रंग।

इन जोतें सब जाहेर किया, हम सखियां पिया के संग॥५१॥

बेहद में अखण्ड होने वाली ब्रज की यह लीला बहुत ही मनमोहक है, जिसमें नित्य ही नयी-नयी आनन्दमयी लीलाओं के रस की वर्षा होती रहती है। तारतम्य ज्ञान की ज्योति ने इस सम्पूर्ण रहस्य को उजागर कर दिया है कि हम ब्रज में अपने प्राणनाथ के साथ किस प्रकार प्रेम एवं आनन्द की लीला में संलग्न थीं?

आवे जब उजालियां, हम खेलें लेकर ढोल।

पिया करें विनोद हांसियां, सो कहे न जाए बोल॥५२॥

जब शुक्ल पक्ष की उजाली रात आती है, तो हम सभी सखियाँ ढोल बजाते हुए सभी पुरों में तरह-तरह के खेल किया करती हैं। इस समय प्रियतम हमारे साथ इतने मधुर हाँस-परिहास करते हैं कि उसे शब्दों में व्यक्त कर पाना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

उलसे गोकुल गाम सारा, हेत हरख अपार।

धन धान वस्तर भूखन, द्रव्य अखूट भंडार॥५३॥

सम्पूर्ण गोकुल ग्राम में अत्याधिक उल्लास भरा हुआ है। सबके हृदय में एक-दूसरे के प्रति अपार प्रेम और प्रसन्नता है। सबके घरों में धन-धान्य, वस्त्र, आभूषण आदि द्रव्यों के अखण्ड भण्डार भरे हुए हैं।

जनम व्याह नित प्रते, सारे पुरे अनेक होए।

नेक कारज करे कछुए, तो बुलावे सब कोए॥५४॥

सभी पुरों में प्रतिदिन किसी न किसी के यहाँ जन्मोत्सव या विवाहोत्सव मनाया जाता है। जो कोई भी अपने यहाँ उत्सव आदि का आयोजन करता है, वह भोजन के लिये सबको निमन्त्रित करता है।

नाटारंभ कई बाजंत्र, धन खरचें अहीर उमंग।

साथ सब सिनगार कर, हम आवें अति उछरंग॥५५॥

उत्सवों में यादव लोग उमंग (उत्साह) में भरकर बहुत अधिक धन खर्च करते हैं तथा अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्रों को बजाकर तरह-तरह की नाट्य लीलायें करते हैं। इन कार्यक्रमों में हम सभी सखियाँ भी अपना श्रृंगार करके बहुत अधिक उमंग में आती हैं।

बलगें विनोदें हमसों, देखते सब जन।

पर कोई न विचारे उलटा, सब कहे एह निसन॥५६॥

प्रियतम श्री कृष्ण सबके सामने ही हमसे विनोदपूर्वक लिपट जाते हैं, किन्तु उनकी इस लीला पर किसी के भी मन में बुरे विचार नहीं आते। सभी यही कहते हैं कि यह तो निर्विकार बालक है।

बात याकी हम जाने, और जाने हमारी एह।

ना समझे कोई दूसरा, ए अंदर का सनेह॥५७॥

प्रियतम के हृदय में विद्यमान प्रेम की चाहत को या तो हम सखियाँ जानती हैं या हमारी प्रेम भरी चाहत को वे जानते हैं। भला हमारे (सखियों) तथा श्री कृष्ण जी के आन्तरिक प्रेम के रहस्य को ये सांसारिक लोग कैसे जान सकते हैं?

ए होत है हम कारने, पिया पूरे मनोरथ मन।

इन समें की मैं क्यों कहूं, साथ सबे धन धन॥५८॥

हमारे मन की प्रेम की इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही धाम धनी हमारे साथ इस प्रकार की अनुपम लीला कर रहे हैं। इस समय के अलौकिक आनन्द का वर्णन मैं कैसे करूँ? इस लीला में भाग लेने वाले सब सुन्दरसाथ (गोपी रूपी सखियाँ) धन्य-धन्य हैं।

बृज सारी करी दिवानी, और पिया तो वचिखिन।

जहां मिले तहां एही बातें, विनोद हांस रमन॥५९॥

प्रियतम का प्रेम विलक्षण है। उन्होंने अपने प्रेम से सम्पूर्ण ब्रज को पागल बना (प्रेम में स्वयं को भुला) रखा है। जहाँ कोई भी व्यक्ति किसी से मिलता है, वह केवल श्री कृष्ण जी के प्रेम भरे हास-परिहास एवं मनोरम

लीलाओं का ही वर्णन करता है।

नंद जसोदा गोवाल गोपी, धेन बछ जमुना बन।

थिर चर सब पसु पंखी, नित नित लीला नौतन॥६०॥

बेहद मण्डल में अखण्ड होने वाली इस ब्रज लीला में नन्द, यशोदा, ग्वाल बाल, गोपियाँ, गायें, बछड़े, यमुना जी, तथा वनों में विद्यमान चर-अचर प्राणियों सहित सभी पशु-पक्षी अलौकिक आनन्द में मग्न हैं। यह दिव्य लीला नित्य ही नवीन दृष्टिगोचर होती है।

अब ए लीला कहूं केती, अलेखे अति सुख।

बरस अग्यारे खेले प्रेमें, सखियनसों सनमुख॥६१॥

अब इस ब्रज लीला का मैं कितना वर्णन करूँ? इसमें इतना आनन्द है कि उसका वर्णन ही नहीं किया जा

सकता। धाम धनी ने कालमाया के ब्रज मण्डल में गोपी स्वरूपा अपनी सखियों के साथ जो प्रेममयी लीला की थी, वही ब्रज लीला के रूप में बेहद में अखण्ड हो गयी है।

एक दिन गौ चारने, पिउ पोहोंचे वृन्दावन।

गोवाल गौ सब ले वले, पीछे जोग माया उत्पन॥६२॥

एक दिन गायें चराने के लिये श्री कृष्ण जी वृन्दावन में गये। उन्होंने बलभद्र, कल्याण जी, एवं अन्य ग्वाल बालकों को गायों सहित गोकुल भेज दिया तथा स्वयं योगमाया के ब्रह्माण्ड में चले गये, जहाँ उन्होंने योगमाया की शक्ति से नित्य वृन्दावन की रचना की।

भावार्थ— यह विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य है कि श्री कृष्ण जी इस ब्रह्माण्ड के वृन्दावन से ही रास लीला के

लिये योगमाया की भूमिका में गये, जहाँ उन्होंने नित्य वृन्दावन की रचना की। नये ब्रह्माण्ड की रचना के पश्चात् वे पुनः वृन्दावन में ही सर्वप्रथम दिखे, जहाँ बाँसुरी बजाकर उन्होंने प्रतिबिम्ब एवं वेद ऋचा सखियों को बुलाया और पूरी रात्रि रास लीला की। अन्तर केवल इतना ही था कि नित्य वृन्दावन में जब उन्होंने बाँसुरी बजाई, तो उस तन में अक्षर की आत्मा के साथ धाम धनी के आवेश एवं जोश दोनों ही विद्यमान थे, और इस ब्रह्माण्ड के वृन्दावन में जब श्री कृष्ण जी ने बाँसुरी बजायी तो उनके तन में मात्र बाँके बिहारी जी के अखण्ड तन का आवेश था। उसमें अक्षर ब्रह्म की आत्मा या अक्षरातीत का आवेश आदि नहीं था।

ए लीला यामें एते दिन, कालमाया को ब्रह्मांड।

एह कल्पांत करके, फेर उपज्यो अखंड॥६३॥

कालमाया के ब्रह्माण्ड में ११ वर्ष ५२ दिन तक यह लीला हुई थी। कल्प के अन्त में होने वाले प्रलय की भांति ही उस ब्रह्माण्ड का प्रलय कर दिया गया तथा सबलिक ब्रह्म के कारण में इस लीला को पुनः अखण्ड कर दिया गया।

भावार्थ- चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी लोक की उत्पत्ति हुए अभी मात्र १ अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५३ हजार ११५ वर्ष ही हुए हैं। नियमानुसार ४ अरब ३२ करोड़ वर्षों के पश्चात् ही इसका प्रलय होना चाहिए था, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों की लीला को सम्पादित करने के लिये इस सम्पूर्ण सौर मण्डल (चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड) का प्रलय कर दिया गया। बाद में, प्रतिबिम्ब लीला और

जागनी लीला के लिये पुनः जैसा का तैसा बना दिया गया। कल्पान्त जैसा प्रलय बीच में ही हो जाने के कारण उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण में "कल्पांत" शब्द का प्रयोग किया गया है।

सदा लीला जो बृज की, मैं कही जो याकी बिध।

अब कहूं वृन्दावन की, ए तो अति बड़ी है निधि॥६४॥

इस प्रकरण में मैंने बेहद मण्डल में अखण्ड होने वाली ब्रज लीला की वास्तविकता का वर्णन किया है। अब मैं नित्य वृन्दावन की लीला की यथार्थता पर प्रकाश डालने जा रही हूँ, जो हमारी बहुत बड़ी आध्यात्मिक सम्पदा (निधि) है।

प्रकरण ॥१९॥ चौपाई ॥५३५॥

जोगमाया को प्रकरण

इस प्रकरण में योगमाया के ब्रह्माण्ड में नित्य वृन्दावन के अन्दर होने वाली महारास की अखण्ड लीला का दिग्दर्शन कराया गया है।

अब जोत पकरी न रहे, दूजा बेधिया आकास।

जाए लिया इंड तीसरा, जहां अखंड रजनी रास॥१॥

अब तारतम ज्ञान की ज्योति रोकने पर भी नहीं रुक रही है। सर्वप्रथम, कालमाया के ब्रह्माण्ड को पार कर बेहद मण्डल में सबलिक के कारण में होने वाली अखण्ड व्रज लीला का वर्णन किया। अब यह उससे भी परे तीसरे स्थान, सबलिक के महाकारण, में स्थित उस नित्य वृन्दावन का वर्णन कर रही हूँ, जिसमें अखण्ड रात्रि में महारास की लीला अबाध गति से हो रही है।

इन दोऊ थें न्यारा मंडल, जाको कहियत हैं रास।

तहां खेल स्याम सखियन का, ए लीला अविनास॥२॥

स्वप्नमयी कालमाया तथा बेहद मण्डल में स्थित अखण्ड व्रज के ब्रह्माण्ड से रास का यह मण्डल अलग ही है। वहाँ पर श्री कृष्ण जी तथा सखियों के बीच अखण्ड रूप से रास लीला हो रही है।

या ठौर जोगमाया रच्यो, सब सामग्री समेत।

तहां हृद सद्द न पोहोंचही, तुमें तो भी कहूं संकेत॥३॥

केवल ब्रह्म की इस भूमिका में आनन्द योगमाया ने महारास की सम्पूर्ण सामग्री (यमुना जी, पशु-पक्षी, वन आदि) समेत नित्य वृन्दावन की रचना की। यद्यपि वहाँ तक इस नश्वर जगत के शब्द नहीं पहुँचते हैं, फिर भी मैं आपको संकेत में बता रही हूँ।

भावार्थ- जहाँ अखण्ड चेतन ब्रह्म अपनी अखण्ड चैतन्य शक्ति (माया, प्रकृति) के साथ क्रीड़ा कर रहा हो, उसे योगमाया का ब्रह्माण्ड कहते हैं। इस भूमिका में माया ब्रह्म की ही स्वरूपा है। वह भी सत्, चित्, एवं आनन्दमयी (परमधाम की अपेक्षा अत्यल्प) है। वहाँ वह इस नश्वर जगत के समान असत्, जड़, और दुःखमयी अथवा सत्त्व, रज, एवं तमोमयी नहीं है।

सत्स्वरूप से लेकर अव्याकृत तक की सम्पूर्ण भूमिका योगमाया ही कहलाती है, किन्तु अन्तःकरण की प्रवृत्ति अलग-अलग है, जैसे- सत्स्वरूप में मूल माया, केवल ब्रह्म में आनन्द योगमाया, सबलिक में चिद्रूप माया, तथा अव्याकृत में सद्रूप माया।

जिनस जुगत कहूं केती, अनेक सुख अखंड।

जोगमायाए उपाया, कोई सुख सरूपी ब्रह्मांड॥४॥

केवल ब्रह्म की अर्धांगिनी आनन्द योगमाया ने इस नित्य वृन्दावन की रचना इस प्रकार की है कि रास का यह ब्रह्माण्ड केवल सुख ही सुख से परिपूर्ण लग रहा है। यहाँ दृष्टिगोचर होने वाली सम्पूर्ण सामग्री की शोभा का वर्णन किस प्रकार करूँ? यहाँ तो सर्वत्र अनन्त रूपों में अखण्ड सुख ही सुख दिखायी दे रहा है।

ए बानी नीके विचारियो, अंतर माहें बाहेर।

तुमें जगाऊं कर जागनी, देखाए देऊं जाहेर॥५॥

हे साथ जी! नित्य वृन्दावन की शोभा के सम्बन्ध में मैं जो कुछ भी कह रही हूँ, उसे आप अपने अन्तःकरण एवं इस ब्रह्माण्ड के सुन्दर दृश्यों की साक्षी एवं बेहद मण्डल

के अति सुन्दर पदार्थों की दृष्टि से विचार कीजिये। मैं आपको वहाँ की शोभा एवं लीला का प्रत्यक्ष अनुभव कराकर, आपकी मायाजन्य नींद को हटाना चाहती हूँ तथा आपकी आत्मा को जाग्रत करना चाहती हूँ।

भावार्थ- इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "अंतर मांहे बाहेर" में गुह्य रहस्य छिपा हुआ है। इसका तात्पर्य है- हमारे अन्तःकरण के अन्दर जो भी चिन्तन, मनन, विवेचन चल रहा है, इस शरीर से बाहर जगत में जिन-जिन सुन्दर पदार्थों को हमने देखा है, तथा इन दोनों से परे (अन्तर) बेहद मण्डल में जितने सुन्दर एवं सुखदायक पदार्थ की हम कल्पना कर सकते हैं, उसके आधार पर हमें नित्य वृन्दावन की शोभा के सम्बन्ध में विचार करना चाहिये।

यद्यपि इस जागनी ब्रह्माण्ड में आत्म-जाग्रति तो मूल

मिलावा के ध्यान से ही होगी, किन्तु उपरोक्त चौपाई में इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि यदि हम नित्य वृन्दावन की शोभा को हृदयंगम कर लेते हैं, तो परमधाम की चितवनि का मार्ग सरल हो जायेगा, जिससे आत्म-जाग्रति का लक्ष्य बहुत ही सुगमता से प्राप्त हो सकेगा।

क्योंए न आवे सब्द में, जोगमाया की बिध।

तो भी देखाऊं कछुयक, लीला हमारी निध॥६॥

यद्यपि योगमाया के ब्रह्माण्ड में विद्यमान नित्य वृन्दावन की वास्तविक शोभा का वर्णन हो पाना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है, फिर भी मैं कुछ न कुछ शोभा को तो दिखाऊँगी ही, क्योंकि इसमें हमारे द्वारा की गयी रास लीला की अखण्ड निधि है।

हम देखे वृन्दावन इतथें, तहां भी खेलें पिया साथ।

करें विनोद नित नए, बनही मिने विलास॥७॥

तारतम वाणी (रास ग्रन्थ) के प्रकाश में हम यहीं पर बैठे-बैठे नित्य वृन्दावन को देख रहे हैं, जिसमें हमने अपने प्राणवल्लभ के साथ महारास की लीला की थी। वृन्दावन में होने वाली उस आनन्दमयी लीला में हमारे अखण्ड तन नित्य ही आनन्द की नई-नई लीलायें करते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

काहूं न पाइए जोगमाया की, हम बिना पेहेचान।

वासना पांचों अछर की, भले कहावें आप सुजान॥८॥

भले ही अक्षर ब्रह्म की पाँचों सुरतायें— शिव जी, विष्णु भगवान, कबीर, शुकदेव, और सनकादिक— इस संसार में बहुत अधिक ज्ञानी कहलाती हैं, किन्तु योगमाया के

ब्रह्माण्ड की वास्तविक पहचान हम ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य किसी के भी पास नहीं है।

ए माया हमारियां, याके हमपे विचार।

और उपजे सब इनथें, ए हमारी आग्या-कार॥९॥

यह योगमाया हमारे प्रियतम के सत अंग अक्षर ब्रह्म के अन्तःकरण की अर्धांगिनी है, इसलिये यह हमारी है। इसका वास्तविक ज्ञान हमारे ही पास है। सभी ब्रह्माण्ड अव्याकृत एवं सबलिक की ही माया (चिद्रूप एवं सद्रूप) से उत्पन्न होते हैं। यथार्थतः अक्षर ब्रह्म के अन्तःकरण की चारों शक्तियाँ हमारे ही आदेश का अनुकरण करने वाली हैं।

रासलीला पेहेले करी, जो मिने वृन्दावन।

आनंद-कारी जोगमाया, अविनासी उत्पन॥१०॥

केवल ब्रह्म के नित्य वृन्दावन में हमने जो महारास की लीला की थी, उसकी सम्पूर्ण सामग्री (सखियों के तन, यमुना जी, वन आदि) का निर्माण आनन्द योगमाया ने ही किया था। यह शोभा अनन्त काल तक अखण्ड रहेगी।

द्रष्टव्य- कालमाया के ब्रह्माण्ड में बनने वाली प्रत्येक वस्तु का विनाश निश्चित है, किन्तु योगमाया के ब्रह्माण्ड में जिस वस्तु की रचना हो जायेगी वह अनन्त काल के लिये अविनाशी हो जायेगी। परमधाम की स्थिति सबसे भिन्न है। वहाँ न तो कोई वस्तु उत्पन्न हो सकती है और न ही नष्ट हो सकती है।

जोगमाया की जुगत जुई, एक रस एक रंग।

एक संगे सदा रहेना, अंगना एकै अंग॥११॥

योगमाया के ब्रह्माण्ड की संरचना कालमाया से भिन्न प्रकार की है। सबमें समान प्रेम और समान आनन्द विद्यमान है। विनाश से रहित होने के कारण धाम धनी और हमारे द्वारा धारण किये गये सभी तन सदा साथ-साथ रहकर ही लीला में संलग्न हैं।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई का कथन इस सन्दर्भ में है कि कालमाया में हमारे द्वारा धारण किये गये सभी तन स्वाप्टिक होने के कारण नष्ट हो गये। उनमें सौन्दर्य, आकार, एवं प्रेम की दृष्टि से भी विषमता थी, किन्तु योगमाया की स्थिति इससे पूर्णतया विपरीत है।

आतम सदीवे एक है, वासना एकै अंग।

मूल आवेस जोगमाया पर, सुख अखंड के रंग॥१२॥

परमधाम में हम सभी आत्मायें एक ही अक्षरातीत की अंगरूपा हैं और अनादि काल से एक समान हैं। इसी प्रकार योगमाया में रास के लिये हमारे द्वारा धारण किये गये सभी तन अन्दर-बाहर एक समान हैं। धाम धनी के मूल आवेश स्वरूप ने ही योगमाया के ब्रह्माण्ड में हमारे साथ लीला की थी, जिसका प्रेम और आनन्द आज भी अखण्ड है।

एक अंगे रंगे संगे, तो क्यों हुई अंतराए।

इन सब्द में है आंकड़ी, बिना तारतम समझी ना जाए॥१३॥

प्रश्न यह होता है कि जब हम सभी एक अक्षरातीत की अंगनायें हैं और उनके प्रेम-आनन्द में सदा साथ-साथ

रहने वाली हैं, तो रास के मध्य वियोग क्यों हुआ? इस अन्तर्धान लीला में गहरा रहस्य छिपा हुआ है, जिसे तारतम ज्ञान के प्रकाश के बिना नहीं जाना जा सकता।

आंकड़ी अंतरध्यान की, सो ए कहूं सनंध।

कोई न जाने हम बिना, इन तारतम के बंध॥१४॥

अन्तर्धान लीला के रहस्य की वास्तविकता को मैं तारतम ज्ञान के प्रकाश में स्पष्ट करती हूँ। हमारे अतिरिक्त इन गुत्थियों को सुलझाने का सामर्थ्य संसार में अन्य किसी के पास भी नहीं है।

जगाए आवेस लेयके, तब इत भए अंतरध्यान।

विलास विरह चित चौकस करने, याद देने घर धाम॥१५॥

अक्षर ब्रह्म को विलास (आनन्दमग्नता) तथा सखियों

को विरह की लीला के प्रति सावधान करने, एवं अक्षर ब्रह्म को यह याद दिलाने के लिये कि वे परमधाम में नहीं बल्कि योगमाया में लीला देख रहे हैं, धाम धनी ने जब अपना आवेश खींचा तब श्री कृष्ण जी का तन अन्तर्धान (अदृश्य) हो गया।

जोगमाया की जुगत, और न जाने कोए।

और कोई तो जाने, जो कोई दूसरा होए॥१६॥

केवल ब्रह्म के अन्दर नित्य वृन्दावन की शोभा को भला हमारे अतिरिक्त अन्य कोई कैसे जान सकता है? यदि महारास के समय हमारे अतिरिक्त वहाँ कोई दूसरा होता, तब तो जान सकता था।

जोगमायाए जाग्रत होए, जल जिमी वाए अगिन।

थिर चर सब पसु पंखी, तत्व सबे चेतन॥१७॥

आनन्द योगमाया की भूमिका जाग्रत है। वहाँ के जल, धरती, वायु, अग्नि आदि पाँचों तत्व तथा चर –अचर सभी पशु–पक्षी चेतन स्वरूप हैं।

भावार्थ– कालमाया का ब्रह्माण्ड पूर्णतया नींद का है, जबकि योगमाया का ब्रह्माण्ड कुछ नींद और कुछ जाग्रत अर्थात् स्वप्नावस्था जैसा है। इसके विपरीत परमधाम पूर्णरूपेण जाग्रत है। वहाँ के कण–कण में अक्षरातीत का ही स्वरूप क्रीड़ा कर रहा है।

एक जरा तिन जिमी का, ताके तेज आगे सूर कोट।

सो सूरज दृष्टें न आवहीं, इन जिमी जरे की ओट॥१८॥

योगमाया की धरती के एक कण में इतना तेज है कि

उसके समक्ष इस संसार के करोड़ों सूर्यों का प्रकाश भी फीका (मद्धिम) पड़ जाता है। वहाँ की भूमि के एक कण के प्रकाश के सामने तो यहाँ का सूर्य भी नहीं दिखायी पड़ेगा।

भावार्थ- अत्यधिक प्रकाश के समक्ष कम प्रकाश वाली वस्तु (सूर्य) के न दिखायी पड़ने का कथन आलंकारिक है। इसका आशय यह है कि पृथ्वी लोक को प्रकाशित करने वाले सूर्य का तेज भी योगमाया के एक कण के तेज के सामने इतना नगण्य होता है कि उसकी उपमा अन्धेरे से दी जा सकती है।

हेम जवेर के बन कहूं, तो ए सब झूठी वस्त।

सोभा जो अविनास की, कही न जाए मुख हस्त॥१९॥

यदि मैं नित्य वृन्दावन की उपमा सोने एवं हीरे –मोती

आदि जवाहरातों से दूँ, तो यह भी झूठा सा लगता है।
उस अखण्ड मण्डल की अनुपम शोभा को, न तो मुख से
कहा जा सकता है और न लेखनी से लिखा जा सकता
है।

बरनन करूँ एक पात की, सो भी इन जुबां कहीं न जाए।
कोट ससि जो सूर कहूँ, तो एक पात तले ढंपाए॥२०॥
यदि मैं वहाँ के एक पत्ते की शोभा का भी वर्णन करने
का प्रयास करूँ, तो भी इस जिह्वा से हो पाना सम्भव
नहीं है। नित्य वृन्दावन के एक पत्ते में ही इतना तेज है
कि उसके समक्ष करोड़ों सूर्यों एवं चन्द्रमा का प्रकाश
मद्धिम हो जाता है (ढक जाता है)।

सुतेज ससि बन पसु पंखी, तत्व सबें सुतेज।

सुतेज थिर चर जो कछू, सुतेज रेजा रेज॥२१॥

नित्य वृन्दावन में पूर्णमासी का चन्द्रमा अत्यधिक शीतल तेज से जगमगा रहा है। वन के सभी वृक्ष, लतायें, पशु-पक्षी, एवं पाँचों तत्व भी तेजोमयी हैं। चर-अचर सभी पदार्थ तेज स्वरूप दिखायी दे रहे हैं। एक-एक कण से तेज निकल रहा है।

किरना बन जिमीय की, सामी किरना ससि प्रकास।

नूर हम पे खेले नूर में, प्रेमें पियासों रास॥२२॥

नित्य वृन्दावन तथा वहाँ की धरती से नूरमयी किरणें निरन्तर उठ रही हैं। ऊपर आकाश से चन्द्रमा के शीतल प्रकाश की किरणें आ रही हैं। हमारे तन भी नूरमयी हैं। इस प्रकार सारा वातावरण नूरमयी है। ऐसी अनुपम शोभा

वाले नित्य वृन्दावन में हमारे तन प्रियतम के द्वारा धारण किये तन के साथ प्रेममयी रास क्रीड़ा करते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

वस्तर भूखन इन जिमी के, सो मुख कहे न जाए।

तो सुख इन सरूप के, क्यों कर इत बोलाए॥२३॥

जब योगमाया के वस्त्रों तथा आभूषणों की शोभा का वर्णन इस मुख से नहीं हो सकता, तो यहाँ के अखण्ड स्वरूपों अर्थात् श्री राज श्यामा जी एवं सखियों के द्वारा धारण किये गये तनों के सुख को कैसे व्यक्त किया जा सकता है?

इन सुख बातां बोहोत हैं, सो नेक कहयो प्रकास।

पर ए भी जोगमाया मिने, जो कहियत हैं अविनास॥२४॥

नित्य वृन्दावन में खेली जाने वाली महारास की लीला का सुख बहुत अधिक है, जिसे मैंने अति अल्प अंश में ही प्रकट किया है। यह लीला केवल ब्रह्म की उस भूमिका में हुई थी, जिसे उनकी आह्लादिनी शक्ति आनन्द योगमाया ने तैयार किया था। वह मण्डल शाश्वत कहा जाता है।

या ठौर लीला करके, हम घर आए सब मिल।

या इंड कल्पांत करके, फेर अखंड किए मिने दिल॥२५॥

नित्य वृन्दावन में महारास की लीला करने के पश्चात् हम सब सुन्दरसाथ परमधाम वापस आ गये। कालमाया के जिस ब्रह्माण्ड में ब्रज लीला हुई थी, उसका लय करके अक्षर ब्रह्म के हृदय (सबलिक ब्रह्म के कारण) में उसे पुनः अखण्ड कर दिया गया।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण में "कल्पांत" शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि यहाँ योगमाया के पतन अर्थात् केवल ब्रह्म में खेली गयी रास को सबलिक में अखण्ड करने का प्रसंग नहीं है, अपितु कालमाया वाले ब्रह्माण्ड का प्रलय करके योगमाया में अखण्ड करने का प्रसंग है। बेहद मण्डल में कल्पान्त या प्रलय जैसे शब्दों का प्रयोग सम्भव नहीं है।

जिस प्रकार हम स्वप्न देखने के पश्चात् जाग्रत होने पर यदि उसे याद कर लेते हैं तो वह हमेशा ही हमारी स्मृति में बना रहता है, उसी प्रकार ब्रज लीला के पश्चात् जब उस ब्रह्माण्ड का प्रलय हुआ तो अक्षर ब्रह्म ने अपनी परात्म में जाग्रत होकर ब्रज लीला का ध्यान किया। परिणाम स्वरूप, वह उनके चित्त (सबलिक के कारण) में अखण्ड हो गयी। किन्तु यह सारी प्रक्रिया धाम धनी

की प्रेरणा (आदेश) से ही हुई।

हम तो सब धाम आए, अछर आपने घर।

अखंड रजनी रास लीला, खेल होत या पर॥२६॥

रास लीला के पश्चात् हम सब सुन्दरसाथ परमधाम पहुँचे तथा अक्षर ब्रह्म अपने अक्षर धाम में जाग्रत हुए। इस प्रकार अक्षर ब्रह्म के हृदय में रास रात्रि की वह लीला अखण्ड है और अबाध रूप से निरन्तर चल रही है।

हमही खेले बृज रास में, हमही आए इत।

घरों बैठे हम देखहीं, एही तमासा तित॥२७॥

व्रज-रास में हमने अपनी सुरता द्वारा धारण किये गये तनों से लीला की तथा सुरता से ही इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी आये हैं। हम अपने मूल तन से परमधाम में ही बैठे

रहे हैं तथा वहीं से अपनी सुरता द्वारा ब्रज , रास, एवं जागनी लीला को देखते रहे हैं।

देखे बृज रास नीके, खेल किया पर पर।

ले भोग विरह विलास को, हम आए निज घर॥२८॥

हमने ब्रज-रास की लीला को अच्छी प्रकार से देखा, जिसमें हमने तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करीं। इन लीलाओं में हमने प्रियतम से विरह का कष्ट भी देखा, तो उनके साथ प्रेम लीला का आनन्द भी लिया। इसके पश्चात् अपने मूल घर परमधाम वापिस आ गये।

देखे दोऊ सुख दुख, तो भी कछुक रहयो संदेह।

सत सरूपें तो फेर, मंडल रचियो एह॥२९॥

यद्यपि हमने प्रियतम के प्रेम तथा माया के दुःख दोनों

का ही अनुभव किया था, फिर भी अभी माया का खेल देखने की कुछ इच्छा शेष थी। इसलिये धाम धनी के सत अंग अक्षर ब्रह्म ने पुनः कालमाया का यह ब्रह्माण्ड बनाया।

ए खेल किया हम वास्ते, हम देखन आइयां एह।

दोरु के मनोरथ पूरनें, ए रच्या तमासा ले॥३०॥

माया का यह खेल हमारे लिये ही बनाया गया है। हम सब सुन्दरसाथ इसमें माया की लीला को देखने के लिये आये हुए हैं। हमारी तथा अक्षर ब्रह्म की इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही धाम धनी ने नाटक जैसा यह खेल रचा है।

भावार्थ— यद्यपि अक्षर ब्रह्म ने ब्रज में प्रेम तथा रास में प्रेमलीला के विलास का अनुभव कर लिया था, किन्तु वे

अभी प्रेम के गुह्यतम रहस्यों (मारिफत) को जानने में असफल रहे थे। उनकी इस इच्छा की पूर्ति इस जागनी ब्रह्माण्ड में हुई है, जिसमें उन्होंने तारतम वाणी के प्रकाश में परमधाम की सम्पूर्ण शोभा, लीला, तथा युगल स्वरूप के हृदय का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

खेल रचे सुपन के, देखाए मिने सुपन।

ऐ देखे हम न्यारे रहे, कोई और न देखे जन॥३१॥

व्रज और जागनी लीला के ब्रह्माण्ड स्वप्न में बनाये गये हैं और हम सुरता द्वारा स्वप्नावस्था में ही देख भी रहे हैं। इसे देखते हुए भी हम इससे अलग हैं क्योंकि हमारे मूल तन तो परमधाम में विद्यमान हैं। संसार का कोई भी जीव हमारी तरह इस खेल को द्रष्टा भाव से नहीं देख पा रहा है।

भावार्थ- परात्म धाम धनी के हृदय रूपी पर्दे (पट) पर इस खेल को देख रही है, इसलिये उस पर इस संसार की विकृति का कोई दुष्प्रभाव नहीं है। इसी प्रकार आत्मा भी जीव के ऊपर विद्यमान होकर द्रष्टा भाव से देख रही है, जबकि जीव अन्तःकरण के द्वारा माया के बन्धनों में फँसा हुआ है, इसलिये वह ब्रह्मसृष्टियों की तरह खेल को द्रष्टा भाव से नहीं देख सकता।

ए खेल सोहागनियों को, देखाया भली भांत।

तारतम बुध प्रकास के, पूरी सबों की खांत॥३२॥

प्रियतम अक्षरातीत ने अपनी अंगनाओं को माया का यह खेल बहुत अच्छी प्रकार से दिखाया है। उन्होंने जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान का प्रकाश करके सबकी इच्छा को पूर्ण कर दिया है।

भावार्थ- तारतम ज्ञान के प्रकाश ने परमधाम के उस सर्वोच्च सत्य (मारिफत) को उजागर कर दिया है, जो अनादि काल से लेकर अब तक प्रकट नहीं हो सका था। इससे उस इश्क रब्द का भी समाधान हो गया, जिसकी चाहत सभी को थी।

खेल देख्या जो हम, सो थिर होसी निरधार।

सारों मिने सिरोमन, होसी अखंड ए संसार॥३३॥

हम सभी ने माया का यह जो खेल देखा है, वह निश्चित रूप से बेहद मण्डल में अखण्ड हो जायेगा। इस प्रकार जागनी लीला का यह ब्रह्माण्ड अन्य सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ रूप में सुशोभित होगा।

भावार्थ- ब्रज की लीला पूर्णतया नींद की थी और रास की लीला भी अर्ध निद्रा एवं अर्ध जाग्रति की थी। इस

जागनी लीला में परमधाम के ज्ञान के अवतरण होने से आत्माओं को उस परम सत्य का बोध हो गया है, जो आज तक नहीं था। ब्रह्मसृष्टियों के जीव सत्स्वरूप की पहली बहिस्त (मुक्ति स्थान) में ब्रह्मात्माओं के स्वरूप का प्रतिबिम्बित रूप लेकर अखण्ड होंगे। वहाँ परमधाम की प्रेममयी लीला का प्रतिभास झलका करेगा। इस दृष्टि से इसे शिरोमणि कहा गया है।

भगवान जी आए इत, जागवे को तत्पर।

हम उठसी भेले सबे, जब जासीं हमारे घर॥३४॥

इस जागनी लीला में स्वयं अक्षर ब्रह्म भी मेरे धाम हृदय में विद्यमान हैं और वे भी इस लीला के समापन के पश्चात् अपनी परात्म में जाग्रत होने के लिये तत्पर हैं। श्यामा जी सहित हम सभी सखियाँ जब परमधाम जायेंगी, तो एक

साथ ही परात्म में जाग्रत होगी। अक्षर ब्रह्म भी अपनी परात्म में साथ ही साथ जाग्रत होंगे।

भावार्थ- इस जागनी लीला में मात्र आत्मा की जागनी होनी है, परात्म की नहीं, क्योंकि वह तो परमधाम के एकत्व (वहदत्त) में है। परात्म में सबकी जागनी एक साथ ही होगी।

प्रकास कहयो मैं रास को, एह सुन्या तुम सार।

अब महामती कहें सो सुनो, दया को विस्तार॥३५॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! इस प्रकरण में मैंने आपको योगमाया में खेली जाने वाली महारास की वास्तविकता बतायी है। आपने रास के सार तत्व को सुना है। अब मैं अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत की अपार दया के विस्तार के सम्बन्ध में बता रही हूँ, उसे

ध्यानपूर्वक सुनिये।

प्रकरण ॥२०॥ चौपाई ॥५७०॥

दया को प्रकरण

स्वलीला अद्वैत परमधाम में दया नहीं है क्योंकि एकत्व (वहदत) में कौन किस पर दया करेगा? इस नश्वर जगत में अक्षरातीत अपनी प्राणस्वरूपा अंगनाओं को माया से निकालने के लिये जो अनेकों प्रकार की प्रेम भरी लीलायें करते हैं, उसे इस नश्वर संसार के शब्दों में "दया" शब्द से सम्बोधित करना पड़ रहा है क्योंकि नाक तक मोहसागर में डूबी आत्मा जब अपने आराध्य को इस संसार में तारणहार के रूप में पाती है, तो बरबस ही न चाहते हुए भी उसके मुख से "दया" शब्द निकल ही जाता है। इस प्रकरण में इसी के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

अब तो मेरे पिया की, दया न समावे इंड।

ए गुन मुझे क्यों विसरे, मोसों हुए सब अखंड।

सोहागनियों पिया दया गुन कैसे कहूँ।।टेक।।१।।

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी !
मेरे प्राणवल्लभ जिस प्रकार अपने हृदय का प्रेम इस
संसार में दया के रूप में बरसा रहे हैं, उसका मैं किस
प्रकार वर्णन करूँ? उनकी दया अनन्त है। इस ब्रह्माण्ड
में इतना भी सामर्थ्य नहीं है कि अपने अन्दर उनकी
सम्पूर्ण दया को सम्भाल सके। प्रियतम ने मेरे द्वारा
समस्त ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति दिलायी है। मैं उनकी
इस अपार दया के गुण को भला कैसे भुला सकती हूँ?

अब गली मैं दया मिने, सागर सरूपी खीर।

दया सागर भर पूरन, एक बूंद नहीं मिने नीर।।२।।

अब मैं अपने प्राणेश्वर की, दूध के समान उज्ज्वल, अनन्त दया रूपी सागर को देखकर गलितगात हो गयी हूँ। इनकी दया का यह सागर इस प्रकार प्रेम, एकत्व, और आनन्द से भरा हुआ है कि इसमें एक बूँद भी माया का विकार रूपी जल नहीं है।

दया मुकुट सिर छत्र चंवर, दया सिंघासन पाट।

दया सबों अंगों पूरन, सब हुआ दया को ठाट॥३॥

प्रियतम ने इस जागनी लीला में मेरे सिर पर अपनी अनुपम दया का मुकुट रख दिया है और दया के ही सिंहासन पर बैठा भी दिया है। मेरे सिर के ऊपर दया का छत्र जगमगा रहा है तथा मेरे दोनों ओर दया के ही चँवर ढुलाये जा रहे हैं। मेरे प्रत्येक अंग में धाम धनी की पूर्ण दया ही दृष्टिगोचर हो रही है। इस प्रकार श्री राज जी की

दया ने मुझे इस जागनी लीला में असीम शोभा दी है।

भावार्थ- अक्षरातीत के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम रूपी दया के सागर की एक लहर श्री महामति जी के धाम हृदय में प्रवेश कर गयी, जिसने उन्हें इस जागनी लीला में अक्षरातीत के सिंहासन पर बैठा दिया, फलतः उनके माथे पर प्रेम का मुकुट झलझलाने लगा। उस दया ने उनके सिर के ऊपर संसार के सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों को स्पष्ट करने की शोभा रूपी छत्र लटका दिया। वेद – कतेब की दोनों धाराओं के अनुयायियों द्वारा अपनी श्रद्धा का चँवर ढुलाया जाने लगा। इस लीला को देखकर सीधे शब्दों में यही कहना पड़ता है कि श्री महामति जी के धाम हृदय में स्वयं श्री राज जी ही विराजमान होकर प्रत्यक्ष रूप में लीला कर रहे हैं, अर्थात् अक्षरातीत की दया ने श्री महामति जी को अपना साक्षात् स्वरूप बना

लिया है।

अब दया गुन मैं तो कहूँ, जो कछू अंतर होए।

अंगीकार करी अंगना, सो देखे साथ सब कोए॥४॥

यदि मेरे और धाम धनी के बीच अब कुछ भी अन्तर होता, तो मैं उनकी दया के गुण का बखान भी करती। मैं उनकी अर्धांगिनी हूँ और उन्होंने मुझे परमधाम के सम्बन्ध से इस मायावी संसार में भी अंगीकार किया तथा मुझे अपने स्वरूप जैसा ही बना दिया। अब सब सुन्दरसाथ मुझे उसी (अक्षरातीत) स्वरूप में देखेगा।

भावार्थ- इस चौपाई को पढ़कर उन सुन्दरसाथ को अपनी इस भूल के सम्बन्ध में आत्म-मन्थन करना चाहिए कि वे किस मानसिकता से ग्रस्त होकर स्वयं को महामति जी के समकक्ष मानते हैं या उन्हें कबीर जी ,

शुकदेव, नानक जी, या ईसा मसीह के समकक्ष ठहराने का प्रयास करते हैं।

पल पल आवे पसरती, न पाइए दया को पार।

दूजा तो सब मैं मापिया, पर होए न दया को निरवार॥५॥

प्रियतम की दया की तो कोई सीमा ही नहीं है। वह पल-पल बढ़ती ही जा रही है। मैंने प्रत्येक वस्तु की माप कर ली है, किन्तु धाम धनी की प्रेम स्वरूपी दया की माप नहीं कर सकी।

एते दिन हम घर मिने, गोप राखी सत जोत।

अब बुध खेंचे तरफ अपनी, तो जाहेर सत होत॥६॥

आज दिन तक हमने परमधाम के ज्ञान को वहाँ ही संसार से छिपाकर रखा था। अब जाग्रत बुद्धि संसार के

सभी लोगों को परमधाम का ज्ञान देकर धनी के चरणों में ला रही है। इस प्रकार अब परमधाम का शाश्वत ज्ञान फैलने लगा है।

भावार्थ- संसार में परमधाम का स्पष्ट ज्ञान किसी भी ग्रन्थ में नहीं है। वेद, उपनिषद, कुरआन आदि में अति संक्षिप्त रूप में सांकेतिक दृष्टि से दिया गया है, जिसे सामान्य लोग समझ नहीं पाते। पुराण संहिता एवं माहेश्वर तन्त्र में अवश्य कुछ विस्तृत रूप में है, किन्तु ये दोनों ग्रन्थ समाज में अधिक प्रचलित नहीं रहे हैं। फलतः जन-सामान्य अधिक लाभ नहीं ले सका है।

सब्द कोई कोई सत उठे, सो भी गए असतमें भिल।

सत असत काहू न सुध, दोऊ रहे हिल मिल॥७॥

कभी-कभी किसी महापुरुष के मुख से निराकार से परे

का भी ज्ञान कह दिया जाता है, किन्तु स्वप्न की बुद्धि के प्रभाव से वे पुनः क्षर में ही भटकने लगते हैं। वस्तुतः इस संसार में किसी को ब्रह्म और माया की वास्तविक पहचान ही नहीं है। संसार के ज्ञानीजन ब्रह्म एवं माया को एक-दूसरे में ओत-प्रोत ही मानते हैं।

भावार्थ- गीता के रचनाकार वेद व्यास जी एवं कठोपनिषद् के रचनाकार कठ ऋषि ने "न तत्र भासयते सूर्यो" तथा "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम् " में प्रकृति मण्डल से परे बेहद धाम का वर्णन किया है। किन्तु पुनः इन्हीं ग्रन्थों में अन्यत्र, क्षर के कण-कण में भी ब्रह्म का स्वरूप निर्देशित कर दिया गया है। बिना जाग्रत बुद्धि के ज्ञान के कोई भी व्यक्ति ब्रह्म के धाम एवं स्वरूप की स्पष्ट विवेचना नहीं कर सकता।

अब दूर करुं असत को, जाहेर करुं सत जोत।

गोप रही थी एते दिन, सो अब होत उद्योत॥८॥

अब मुझे परमधाम के सत्य ज्ञान को संसार में उजागर करके मिथ्या ज्ञान को समाप्त कर देना है। आज दिन तक संसार में जाग्रत बुद्धि नहीं आयी थी। इसके प्रकट होने से तारतम ज्ञान का प्रकाश होने लगा है।

असत भी करना अखंड, करके सत प्रकास।

सनंध सब समझाए के, करुं तिमर सब नास॥९॥

परमधाम के अखण्ड ज्ञान का प्रकाश फैलाकर इस स्वप्नवत् संसार को भी अखण्ड मुक्ति प्रदान करनी ही है। अतः अब मैं माया-ब्रह्म की वास्तविकता दर्शाकर अज्ञानता के अन्धकार को समाप्त कर दूँगी।

संसा सारा भान के, उड़ाऊं असत अंधेर।

निज बुध उठ बैठी हुई, गयो सो उलटो फेर॥१०॥

मैं तारतम ज्ञान के द्वारा सबके संशयों को दूर करके उनके अन्दर विद्यमान अज्ञान रूपी अन्धकार को जड़ (मूल) से नष्ट कर दूँगी। अब मेरे धाम हृदय में प्रियतम की निज बुद्धि भी अपना प्रकाश फैलाने लगी है। इसके अनुपम ज्ञान को आत्मसात् करने वाला निश्चय ही जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जायेगा।

भावार्थ- प्रेम, शान्ति, तथा आनन्द की चाहत प्रत्येक चेतन प्राणी में स्वाभाविक रूप से होती है। इसे पाने के लिये यदि वह परब्रह्म की ओर उन्मुख होता है, तो यह सीधा और वास्तविक मार्ग है, परन्तु यदि वह प्रकृति के नश्वर सुखों में फँसकर प्रेम, शान्ति, और आनन्द की कामना करने लगता है, तो वह तृष्णा का इतना दास हो

जाता है कि जन्म-मरण का चक्र उसका साथ नहीं छोड़ता। यही उलटा फेर है, जो तारतम वाणी के प्रकाश से समाप्त हो सकता है।

अब फेर सब सीधा फिरे, सत आया सबों दृष्ट।

पेहेचान भई प्रकास थें, सुपन की जाहेर सृष्ट॥११॥

तारतम वाणी के प्रकाश में सब सुन्दरसाथ को धाम धनी की पहचान हो गयी है, जिससे वे परमधाम की तरह ही पुनः धनी के प्रेम की सीधी राह पर चल पड़े हैं। यहाँ तक कि स्वप्न की जीव सृष्टि को भी तारतम ज्ञान के द्वारा प्रियतम अक्षरातीत की पहचान होने लगी है।

खेल देख्या कालमाया का, सो कालमाया में भिल।

अब देखो सुख जागनी, होसी निरमल दिल॥१२॥

हे साथ जी! आपने इस मायावी जगत की लीला को जीवों के नश्वर तनों में बैठकर ही देखा है। अब आप जागनी लीला का सुख देखिये। धनी के प्रेम एवं तारतम ज्ञान से निश्चय ही सबका हृदय निर्मल हो जायेगा।

आवेस मुझपे पिया को, तिन भेली करुं सोहागिन।

सब सोहागिन मिल के, सुख लेसी मूल वतन॥१३॥

मेरे अन्दर धाम धनी का आवेश है, जिससे मैं सब सुन्दरसाथ को एकत्रित करूँगी। जब सब सुन्दरसाथ एकत्रित हो जायेंगे, तो वे सामूहिक रूप में परमधाम का सुख लेंगे।

विलास तब विध विध के, होसी हरख अपार।

करसी आनंद विनोद, आवसी सकुंडल सकुमार॥१४॥

उस समय तरह-तरह की आनन्दमयी लीलायें होंगी और सबके हृदय में अपार आनन्द छाया रहेगा। उस लीला में सुन्दरसाथ के समूह में शाकुण्डल एवं शाकुमार भी होंगी और सभी आपस में एक-दूसरे के प्रति हास-परिहास के साथ जागनी लीला के आनन्द में मग्न रहेंगे।

भावार्थ- उपरोक्त घटनाक्रम जागनी लीला के अन्तिम चरण का है, जब सभी आत्मायें जाग्रत होकर प्रियतम के चरणों में आ चुकी होंगी।

आए रहेसी सब सोहागनी, तब लेसी सुख अखंड।

पीछे तो जाहेर होएसी, तब उलटसी ब्रह्मांड॥१५॥

जब श्री प्राणनाथ जी के चरणों में सभी सुन्दरसाथ एकत्रित हो जायेंगे, तो वे परमधाम के अखण्ड सुख का रसपान करेंगे। इसके पश्चात् सखियों सहित इस जागनी

लीला की बात संसार में फैल जायेगी और ब्रह्माण्ड प्रलयग्रस्त होकर अखण्ड हो जायेगा।

हिस्सा देऊं आवेश का, सैन्य को सब पर।

होसी मनोरथ पूरन, मिल हरखे जागसी घर॥१६॥

अपने धाम हृदय में विद्यमान धाम धनी के आवेश को सब सुन्दरसाथ में भाग दूँगी (बाँटूँगी), जिससे सबकी इच्छायें पूर्ण हो जायेंगी और सभी हँसते हुए परमधाम में जाग्रत होंगे।

भावार्थ— आवेश कोई स्थूल लौकिक द्रव्य नहीं है, जिसे बाँटा जा सके। अक्षरातीत का आवेश तीनों ब्रह्माण्डों (हृद, बेहृद, एवं परमधाम) में सबसे सूक्ष्म वस्तु है। क्या आकाश, महत्तत्त्व, या कारण प्रकृति को बाँट-बाँटकर दिया जा सकता है? यदि नहीं, तो उसे स्थूल

पदार्थ की तरह बाँटने का भाव आलंकारिक रूप में लेना चाहिए। जिस प्रकार दो व्यक्तियों के मन मिलने का आशय उनकी मानसिक भावनाओं का मिलन है, न कि प्रत्यक्ष दो मनों का संयोग होना। मन तो इतना सूक्ष्म है कि उन्हें पकड़कर मिलाना या तोड़ना सम्भव ही नहीं हो सकता।

अक्षरातीत के नूरमयी स्वरूप का आवेश जिस आत्मा के धाम हृदय में विराजमान होता है, वह सूक्ष्मतम होते हुए भी अक्षरातीत के तेजोमय स्वरूप की प्रतिकृति, ज्ञान, प्रेम, सौन्दर्य, बल आदि गुणों को भी अपने अन्दर समाहित किये होता है।

आवेश को भावात्मक रूप से दो प्रकार से बाँटा जा सकता है— १— सबके हृदय में चितवनि द्वारा प्रियतम की छवि को बसा देना, जिससे प्रत्येक सुन्दरसाथ

उनकी अनुभूति अपने धाम हृदय के अन्दर कर सके।
 २- अक्षरातीत की निधियों, जैसे- ज्ञान, प्रेम, आनन्द
 आदि की उपलब्धि कराना , जिससे सब सुन्दरसाथ
 जागनी की राह पर चल सकें।

संसार में कोई भी ऐसा मापयन्त्र नहीं है , जिससे
 अक्षरातीत के आवेश का माप किया जा सके कि वह
 कितना है और कैसा है (भार या आकृति की दृष्टि से)?
 अतः यह कहना बहुत ही हास्यास्पद है कि श्री महामति
 जी में अधिक आवेश आया इसलिये वे प्राणनाथ
 कहलाये, तथा कबीर एवं नानक जी में थोड़ा सा आवेश
 आया तो वे सब सन्त कहलाये।

अब साथ न छोड़ूं एकला, साथ मुझे छोड़े क्यों।

कहया मेरा साथ न लोपे, साथ कहे करूं मैं त्यों॥१७॥

मैं सुन्दरसाथ को माया में अकेले नहीं भटकने दूँगी , बल्कि उसे माया से निकालकर धनी के सम्मुख करूँगी। इसी प्रकार, सुन्दरसाथ भी मुझे जागनी कार्य में अकेले नहीं रहने देगा, अपितु हर प्रकार (तन, मन, धन) से सहयोग करेगा। सुन्दरसाथ भी मेरी कही हुई बात का उल्लंघन नहीं करता है और मैं भी वही करती हूँ जो सुन्दरसाथ कहते हैं।

लेस है कालमाया को, बढ़यो साथ में विकार।

सो गालूं सीतल नजरों, दे तारतम को खार॥१८॥

इस मायावी संसार में आने से सुन्दरसाथ में भी तृष्णाजनित विकारों की वृद्धि हो रही है। उन विकारों को मैं अपनी प्रेममयी दृष्टि तथा तारतम ज्ञान के प्रकाश से समाप्त कर दूँगी।

भावार्थ- यद्यपि इस चौपाई के चौथे चरण में "खार" का अर्थ क्षार या रेह (एक प्रकार की मिट्टी जिससे वस्त्रों का मैल धोया जाता है) होता है, किन्तु यहाँ खार का तात्पर्य उस ज्ञानाग्नि से है जो सभी विकारों (मैल) को समाप्त कर देती है।

विकार काढूं विधोगतें, बढ़ाए दया विस्तार।

भानूं भरम तिन भांतसों, ज्यों आल न आवे आकार॥१९॥

मैं सुन्दरसाथ में तारतम वाणी का प्रकाश करूँगी , जिससे उनमें धनी के प्रति अटूट विश्वास उत्पन्न होगा। परिणाम स्वरूप, प्रियतम अक्षरातीत उन पर दया की अत्यधिक वर्षा करेंगे। इस प्रकार मैं सुन्दरसाथ को विकार रहित करने में सफल हो जाऊँगी। मैं उनके सभी संशयों को इस प्रकार से हटा दूँगी कि उनमें धाम धनी

की चितवनि या सेवा के प्रति नाम मात्र भी आलस्य नहीं रहेगा।

सुख देऊं मूल वतन के, कोई रच के भला रंग।

मन वांछे मनोरथ, देऊं सुख सबों अंग॥२०॥

तारतम वाणी के प्रसार से सम्बन्धित आनन्ददायक कार्यक्रमों का आयोजन करके मैं सुन्दरसाथ को परमधाम का सुख दूँगी। सबकी मनचाही इच्छाओं को पूर्ण करके, मैं उनके हृदय में प्रत्येक प्रकार का सुख दूँगी।

मोह बढ़यो लेस माया को, निद्रा मूल विकार।

सुध होए सबों अंगों, कर देऊं तैसो विचार॥२१॥

हे साथ जी! मायावी सुखों के प्रति आसक्ति होने से मोह

रूपी नींद की वृद्धि होती है, जो सभी विकारों का मूल है। मैं तारतम ज्ञान से आपके विचारों को धनी के प्रेम में लगा दूँगी, जिससे आप चितवनि करके सभी अंगों से पवित्र हो जायेंगे।

जोलों न काढ़ूं विकार, तोलों क्यों करके जगाए।

जागे बिना इन रास के, किन निज सुख लिए न जाए॥२२॥

जब तक मैं आपके हृदय में स्थित मायाजन्य विकारों को नहीं निकाल देती, तब तक मैं आपकी आत्मा को कैसे जाग्रत कर पाऊँगी? जब तक अपनी आत्मा को जाग्रत न किया जाये, तब तक कोई भी इस जागनी रास में परमधाम के सुखों का अनुभव नहीं कर सकता है।

भावार्थ— जब तक चितवनि करके युगल स्वरूप की शोभा को अपने धाम में अखण्ड रूप से बसाया नहीं

जाता और अपने हृदय को निर्विकार नहीं बनाया जाता, तब तक स्वयं को जाग्रत मानना भूल है। मात्र एक अथवा छः चौपाइयों को याद करके तारतम वाणी का कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेना ही वास्तविक जागनी नहीं है, अपितु यह तो जागनी की प्राथमिक कक्षा है।

आमले उलटे मोह के, और मोह तो तिमर घोर।

ए घोर रैन टालूं या बिध, ज्यों सब कोई कहे भयो भोर॥२३॥

अज्ञानता का घना अन्धकार ही मोह है। इसमें फँस जाना प्रियतम से विमुख होकर उल्टी राह पर चलना है। मैं तारतम ज्ञान के उजाले से इस अज्ञानमयी रात्रि को इस प्रकार हटा देती हूँ कि प्रत्येक सुन्दरसाथ के मुख से मात्र यही ध्वनि उच्चरित हो (निकले) कि अब तो मेरे जीवन में जागनी के प्रातःकाल का उजाला फैल गया है।

गुन पख अंग इन्द्री उलटे, करत हैं सब जोर।

सो सब टेढ़े टाल के, कर देऊं सीधे दोर॥२४॥

तीनों गुणों (सत्व, रज, तम), पक्षों (बहिर्मुखी तथा अन्तर्मुखी प्रवृत्ति), अंगों (अन्तःकरण), तथा इन्द्रियों का स्वभाव जीव को बलपूर्वक माया में खींचने का होता है। प्रियतम से विमुख कर देने वाली इनकी इस उलटी प्रवृत्ति को मैं समाप्त कर धनी के सच्चे प्रेम में लगा देती हूँ।

भावार्थ- परब्रह्म त्रिगुणातीत हैं। सत्व, रज, और तम बन्धन रूप हैं। सत्व गुण जीव को शाब्दिक ज्ञान एवं स्नेह की मधुर डोरी में बाँधे रखता है, किन्तु रज और तम का त्याग कर सात्विक हुए बिना ज्ञान और प्रेम के मार्ग पर नहीं चला जा सकता है। अतः साधना की प्रारम्भिक अवस्था में सात्विक होना अनिवार्य है। किन्तु

इसे ही सर्वोपरि मानकर प्रेम मार्ग में रुक नहीं जाना चाहिए। रजोगुण लौकिक कर्म में बाँधे रखता है तथा तमोगुण पाप एवं अज्ञान की गर्त में ढकेल देता है।

प्रत्येक जीव की दो प्रवृत्तियाँ होती हैं, जिन्हें पक्ष कहते हैं। ये हैं— बहिर्मुखता तथा अन्तर्मुखता। बाह्य विषयों की ओर भागना बहिर्मुखता है, जबकि विषयों का इन्द्रियों से भोग न करके ब्रह्म का चिन्तन करते रहना अन्तर्मुखता है।

अहंकार मन चित्त बुध, इन किए सब जेर।

अब हारे सब जिताए के, फेरुं सो सुलटे फेर॥२५॥

माया ने जीव के मन, चित्, बुद्धि, तथा अहंकार को अपने अधीन कर लिया था। अब मैं तारतम ज्ञान के प्रकाश में इन हारे हुए अंगों को माया से हटाकर प्रियतम

के प्रेम मार्ग पर चला दूँगी, जिससे इन्हें माया से विजय श्री प्राप्त हो जायेगी।

प्रकृत सबे पिंड की, सीधी करुं सनमुख।

दुख अगनी टाल के, देखाऊं ते अखंड सुख॥२६॥

मैं इस शरीर की सभी प्रकृतियों को संसार से हटाकर धाम धनी के सम्मुख कर दूँगी। इस प्रकार मैं जीव को दुःख रूपी अग्नि से बचाऊँगी और अखण्ड सुख का अनुभव कराऊँगी।

भावार्थ— जीव के साथ जुड़ी हुई २४ प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं— ४ अन्तःकरण, ५ तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ स्थूल भूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी)।

चोर फेर करुं बोलावे, सुख सीतल करुं संसार।

अंग में सबों आनंद, होसी हरख तुमे अपार॥२७॥

प्रियतम का प्रेम और आनन्द ही आत्मा का धन है। इसे अन्तःकरण एवं इन्द्रिय रूपी चोरों ने ले लिया था (चुरा लिया था)। अब मैं इन चोरों को मायावी तृष्णा-सुखों से हटाकर प्रियतम के प्रेम मार्ग पर दौड़ाऊँगी। इस प्रकार मैं इस मार्ग का अवलम्बन लेकर समस्त संसार के प्राणियों के हृदय को बेहद का आनन्द देकर शीतल कर दूँगी। हे साथ जी! सबके हृदय में आनन्द फैल जाने से आपको अपार प्रसन्नता होगी।

कोईक दिन साथ मोह के जल में, लेहेर बिना पछटाने।

कहे महामती प्यारी मोहे वासना, न सहूँ मुख करमाने॥२८॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी!

इस खेल में आने के बाद अब तक आप बिना लहरों वाले इस मोह सागर में डूबते-उतराते रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप आपको दुःखी होना पड़ा है। आप मुझे अत्यन्त प्यारे हैं। मैं किसी भी स्थिति में आपको मायावी दुःखों से उदास मुख की छवि में नहीं देख सकती।

भावार्थ- यह स्वप्नवत् संसार वस्तुतः है ही नहीं, किन्तु इसे सत्य समझने वाले लोग तत्त्व ज्ञान से रहित होने के कारण विषम सुखों की ओर भागते हैं और दुःखी होते हैं। इसे ही बिना लहरों वाले माया के सागर में डूबना कहा जाता है।

प्रकरण ॥२१॥ चौपाई ॥५९८॥

हांसी का प्रकरण

इस प्रकरण में यह बात दर्शायी गयी है कि इस मायावी खेल में किस प्रकार भूल हो रही है और उसके परिणाम स्वरूप किस प्रकार परमधाम में हँसी की लीला होनी है?

मेरे साथ सनमंधी चेतियो, ए हांसी का है ठौर।

पिउ वतन आप भूल के, कहा देखत हो और॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि मेरे परमधाम के सुन्दरसाथ जी! आप सावधान हो जाइए, क्योंकि आप जिस संसार में आये हैं, वहाँ आपसे धनी के प्रति अपने आत्मिक कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में भूल होनी ही है। फलतः परमधाम में जाग्रत होने पर आपको सबके समक्ष हँसी का पात्र बनना पड़ेगा। इस संसार में आने के पश्चात् आप अपने प्रियतम को, परमधाम को, तथा स्वयं

(आत्म-स्वरूप) को भी भुलाकर किस (माया) को देख रहे हैं? निश्चय ही आपने माया को ही अपना सब कुछ मान लिया है।

साथ जी तुमको उपज्या, खेल देखन का ख्याल।

जाको मूल नहीं बांधे तिन, ए हांसी का हवाल॥२॥

हे साथ जी! आपके हृदय में माया का खेल देखने की इच्छा प्रकट हुई। जिस माया का कोई मूल ही नहीं है अर्थात् जो स्वप्नवत् है, आपने स्वयं को उससे गहराई से जोड़ लिया है। आपकी यह स्थिति परमधाम में आपकी हँसी का कारण बनेगी।

भावार्थ- इस जागनी लीला में सुन्दरसाथ से जो भी भूल होगी, उसकी हँसी मात्र परमधाम में ही होगी। क्योंकि वहाँ पर सभी सामने होंगे तथा कोई भी बात

छिपी नहीं रह सकेगी, जबकि इस संसार में ऐसा होना पूर्ण रूप से सम्भव नहीं है।

मांग्या खेल विनोद का, तिन फेरे तुमारे मन।

सो सब तुमको विसरे, जो कहे मूल वचन॥३॥

आपने हँसी के लिये माया का खेल माँगा था, किन्तु इस माया ने आपके मन को धाम धनी से विमुख कर दिया है। आपने परमधाम में प्रियतम से जो बातें कही थीं कि हम किसी भी स्थिति में आपको नहीं भूलेंगी, उन सब बातों को आपने भुला दिया है।

गूँथो जाली दोरी बिना, आप बांधत हो अंग।

अंग बिना तलफत हो, ए ऐसे खेल के रंग॥४॥

यह मायावी खेल इतना विचित्र है कि आप बिना रस्सी

के ही जाल बना रहे हैं तथा अपने हृदय को उससे बाँध रहे हैं। आपके शरीर के वास्तविक अंग तो परमधाम में हैं, किन्तु यहाँ का स्वाज्ञिक तन पाकर आप दुःखों से तड़प रहे हैं।

भावार्थ- पारिवारिक सम्बन्ध ही वे रस्सी हैं जो यथार्थ में होते ही नहीं, किन्तु मोहवश ऐसा लगता है कि हम इनके बिना जी ही नहीं सकते। अपने पूर्व जन्मों के संस्कारों के अनुसार वर्तमान के सभी सम्बन्ध बनते हैं और अपना स्वार्थ पूरा करके टूट जाया करते हैं। यह कैसी विडम्बना है कि जिस परब्रह्म से अनादि काल से अखण्ड सम्बन्ध चला आ रहा है, उसे हम गौण कर देते हैं तथा स्वाज्ञिक सम्बन्धों को वास्तविक एवं सर्वोपरि मान लेते हैं। इसे ही बिना रस्सी के जाल बनाना कहते हैं।

आप बंधाने आप सों, इन कोहेड़े अंधेर।

अमल चढ़या जानों जेहेर का, फिरत वाही में फेर॥५॥

हे साथ जी! ऐसा लगता है जैसे आपके ऊपर माया के विष का इतना प्रभाव पड़ गया है कि आप स्वयं ही जानते हुए भी पारिवारिक सम्बन्धों के इस मिथ्या अन्धकार में फँसते जा रहे हैं और बार-बार उसी में भटक रहे हैं।

अमल चढ़या क्यों जानिए, कोई फिसले कोई गिरे।

कोई मिने जाग के, कर पकर सीढ़ी चढ़े॥६॥

यह कैसे समझा जाये कि सुन्दरसाथ के ऊपर माया का नशा चढ़ा हुआ है? यदि अक्षरातीत के प्रति निष्ठा डगमगाती है तो उसे फिसलना कहते हैं, और यदि धाम धनी को छोड़कर अन्य देवी-देवताओं को अपना

आराध्य बनाकर लौकिक सुखों में डूबा जाता है तो उसे गिर जाना कहते हैं। ऐसा माया के नशे के प्रभाव से होता है। कुछ सुन्दरसाथ ऐसे भी होते हैं, जो तारतम ज्ञान के प्रकाश में जाग्रत हो जाते हैं और अपने विवेक रूपी हाथों से जागनी की सीढ़ी पकड़कर ऊपर चढ़ने का प्रयास करते हैं।

एक गिरे पगथी बिना, वाको दूजी पकरे कर।

सो खाए दोनों गड़थले, ए हांसी है या पर॥७॥

एक सखी बिना सीढ़ी के ही पाँव रख देने के कारण गिर जाती है। उसे गिरा हुआ देखकर दूसरी सखी उठाने के लिये जाती है, किन्तु दोनों ही लड़खड़ा कर गिर जाती हैं। इस स्थिति में दोनों ही हँसी की पात्र बन जाती हैं।

भावार्थ— यह चौपाई उन सुन्दरसाथ पर घटित होती है

जो न तो तारतम वाणी का गम्भीर ज्ञान रखते हैं और न धनी की पूर्ण पहचान रखते हैं, किन्तु अति भावुकता में स्वयं की कल्पना परमहंसों के रूप में करने लगते हैं। माया का कष्ट मिलते ही बालू की दीवार से बना हुआ उनकी आस्था का महल भरभरा कर गिर जाता है। उन्हें सान्त्वना देकर समझाने की भावना से जो अन्य सखी आती है, वह भी कुछ समय के बाद माया के कष्टों से विचलित होकर गिर पड़ती है। इस प्रकार अपनी आस्था एवं विश्वास (ईमान) की कमी से दोनों ही अपनी हँसी कराती हैं।

एक पड़ी जिमी जान के, वाको दूजी उठावन जात।

उलट पड़ी सो उलटी, ए खेल है या भांत॥८॥

यह मायावी खेल इतना विचित्र है कि एक को धरती पर

गिरी हुई जानकर (विश्वास छोड़ दिये जाने पर) दूसरी उसे उठाने अर्थात् अपने ज्ञान द्वारा समझाकर उसे धनी पर विश्वास दिलाने के लिये जाती है, किन्तु वह भी पहली की तरह ही गिर जाती है।

ओठा लेवे जिमी बिना, पांव बिना दोड़ी जाए।

जल बिना भवसागर, यामें गलचुए खाए॥९॥

यह मायावी खेल इस प्रकार का है कि वे बिना धरती के ही उसे आधार बनाये हुए हैं, अर्थात् यह संसार है ही नहीं फिर भी इसमें रह रही हैं। पैर नहीं हैं, फिर भी दौड़ी जा रही हैं। ये पैर भी पञ्चभूतात्मक और स्वप्नवत् हैं, जो मृत्यु के पश्चात् समाप्त हो जाने वाले हैं। वह ऐसे भवसागर में गोते खा रही हैं, जिसमें पानी है ही नहीं।

भावार्थ— संसार स्वप्नवत् है। इसलिये इसे बिना जल

का कहा गया है। गोते खाने का आशय है— दुःखी होना। संसार में जो भी सुख-दुःख है, तत्त्व ज्ञान की दृष्टि से वे यथार्थतः नहीं हैं। चौपाई ९ एवं १० में ब्रह्मसृष्टियों को बिना हाथ-पैर वाला तथा संसार को अस्तित्वहीन कहने का आशय इनकी नश्वरता से है।

देखो अंत्रीख खड़ियां, हाथ बिना हथियार।

नींद बड़ी है जागते, पिंड बिना आकार॥१०॥

हे साथ जी! देखिये कि आप आकाश में खड़े हैं, अर्थात् आप जिस ब्रह्माण्ड में आये हैं, वह आकाश (निराकार) से बना हुआ है। बिना हाथ के ही आप सारा कार्य कर रहे हैं। स्वप्नवत् होने से आपके हाथ हैं नहीं, किन्तु बाह्य रूप से दिखायी पड़ रहे हैं। ज्ञान दृष्टि से जाग्रत हो जाने पर भी हृदय में अभी माया की गहरी नींद बनी हुई

है। आपका यह शरीर भी निराकार से ही बना हुआ है, जो अन्त में (मृत्यु के पश्चात्) पहले जैसा ही हो जायेगा। आपके वास्तविक तन तो परमधाम के मूल मिलावा में ही विद्यमान हैं।

एक नई कोई आए मिले, सो कहावे आप अजान।

बड़ी होए दूजी मिने, समझावत सुजान॥११॥

सुन्दरसाथ में जब कोई नया सुन्दरसाथ आता है, तो वह स्वयं को अल्पज्ञान वाला कहता है, किन्तु तारतम ज्ञान से रहित अन्य लोगों में वह एक बहुत बड़े विद्वान की तरह प्रबोधित करता है।

कोई वचन करड़े कहे, किन खण्डनी न खमाए।

सो कलपे दोऊ कलकले, वाको अमल यों ले जाए॥१२॥

सुन्दरसाथ में कोई दूसरे को सिखापन (शिक्षा) देने के लिये जब कठोर शब्दों का प्रयोग करता है, तो अपनी खण्डनी सुनकर वह सहन नहीं कर पाता है। फलतः दोनों ही रो-रोकर दुःखी होते हैं। इस प्रकार माया का नशा उन दोनों को अपने प्रभाव में ले लेता है।

भावार्थ- खण्डनी के कठोर वचनों से कोई मर्माहत (व्यथित) तो हो सकता है, किन्तु जाग्रत नहीं हो सकता। जाग्रत होने के लिये ज्ञान के ऐसे शब्द होने चाहिए जो उसके हृदय में चोट कर सकें।

इसी प्रकार किसी के कठोर वचनों को सुनकर सहन करना महानता होती है। महाभारत के शान्ति पर्व में लिखा है कि जब कोई व्यक्ति किसी को कठोर शब्दों से सम्बोधित करता है और सुनने वाला निर्विकार भाव से अर्थात् बिना उत्तेजित हुए उसे सहन कर लेता है, तो

उसकी चरण धूलि पाने के लिये देवता भी तरसा करते हैं।

खंडी खांडी रोए रोलाए, दुख देखे दोऊ जन।

जागे पीछे जो देखिए, तो कमी न मांहेँ किन॥१३॥

खण्डनी के कठोर शब्दों को कहने वाला भी रोता है और दुःखी होता है। इसी प्रकार सुनने वाला भी रोता है और दुःखी होता है। किन्तु यदि हम जाग्रत होकर देखें तो दोष किसी का भी नहीं होता। ऐसा माया के प्रभाव के कारण ही होता है।

भावार्थ- आत्मा या जीव का शुद्ध स्वरूप लौकिक सुख-दुःख, मान-अपमान, प्रसन्नता या खिन्नता से अलग है। रजोगुण या तमोगुण के प्रभाव से ही कोई किसी को कठोर शब्दों से सम्बोधित करता है और दूसरा

दुःखी होता है। त्रिगुणातीत अवस्था में इस प्रकार की भूलें नहीं हो सकतीं।

हांसी होसी साथ में, इन खेल के रस रंग।

पूर बिना बहे जात हैं, कोई आड़ी होत अभंग॥१४॥

इस खेल में इस प्रकार की जो आनन्दप्रद लीलायें हो रही हैं, परमधाम में जाग्रत होने पर सब सुन्दरसाथ के समक्ष इनकी स्मृति दिलाकर बहुत हँसी होगी। यद्यपि इस मोह सागर में न तो जल है और न ही लहरें, फिर भी सभी इसकी तृष्णा रूपी लहरों में बहे जा रहे हैं। इनमें कोई-कोई ब्रह्मात्मा ऐसी भी होती हैं, जो प्रियतम से अपने प्रेम में अखण्डता बनाये रखने के लिये माया की लहरों से संघर्ष करती हैं।

हरखे हांसी हेत में, करसी साथ कलोल।

मांगी माया सो देखी नीके, कोई ना हांसी या तोल॥१५॥

परमधाम में जाग्रत होने पर सुन्दरसाथ हँसी की इस लीला को देखकर बहुत अधिक आनन्दित होंगे तथा प्रेम में भरकर आनन्दमयी क्रीड़ा करेंगे। हे साथ जी! आपने धाम धनी से जो माया माँगी थी, उसे अच्छी प्रकार से देख लिया है। इस हँसी की लीला के समान अन्य कोई भी लीला नहीं होगी।

प्रश्न- तारतम वाणी में कथित "और हांसी सब सोहेली, पर ए हांसी सही न जाए" तथा "ए हांसी सत वतन की, कोई मोमिन करावे जिन" के इन कथनों से क्या विरोधाभास की स्थिति नहीं बनती है?

उत्तर- "ब्रह्मसृष्ट कही वेद ने, ब्रह्म जैसी तदोगत" (श्रृंगार ७/३४) की शोभा को धारण करने वाली

ब्रह्मात्माओं के तन से होने वाले अपराध हँसी का कारण बनेंगे, जिससे अक्षरातीत की गरिमा कलंकित होगी, क्योंकि ये अपराध (गुनाह) अमिट होने के कारण अनन्त काल तक परमधाम में हँसी का कारण बने रहेंगे।

यद्यपि आत्माओं से होने वाली भूलों और उसके परिणाम स्वरूप परमधाम में होने वाली हँसी को मात्र परमधाम तक ही सीमित रखा जायेगा। इसका बोध अक्षर ब्रह्म, बेहद मण्डल, या हृद में किसी को भी नहीं होगा। जब एक लौकिक पति भी अपनी पत्नी को सार्वजनिक रूप से नग्न नहीं कर सकता, तो ब्रह्मात्माओं को अपनी प्राणेश्वरी मानने वाले अक्षरातीत दूसरों के सामने अपराधी की मुद्रा में उन्हें कैसे खड़ी करेंगे? वह भी उस अवस्था में, जब उनके जीवों को भी सत्स्वरूप की पहली बहिःत में ब्रह्मसृष्टियों का रूप देकर अपार

शोभा देने वाले हैं। ऐसी अवस्था में इन चौपाइयों का क्या अर्थ रह जायेगा?

आगे हुई न होसी कबहूँ, हमें धनिएं ऐसी सोभा दई।
सब पूजे प्रतिबिम्ब हमारे, सो भी अखण्ड में ऐसी भई॥
किरंतन ८१/३

सबके खुदा तुमको किए, बीच सर भर लाहूत सुभान।
किरंतन २९/१२६

मूल बिना ए बिरिख खड़ा, ताको फल चाहे सब कोए।
फेर फेर लेने दौड़ही, ए हांसी इन बिध होए॥१६॥
संसार रूपी यह वृक्ष बिना मूल का है अर्थात् यह स्वाप्लिक है। इसके फल को पाने की तीव्र इच्छा सभी में रहती है। अतः उसे पाने के लिए सभी लोग दौड़ लगाते

हैं। इस प्रकार की भूल के कारण सभी की हँसी होती है।

भावार्थ- संसार रूपी वृक्ष का मूल न होने का कथन इसलिये किया गया है, क्योंकि जिस मोहतत्व से यह बना है, वह मोहतत्व ही नींद-अज्ञान है। यद्यपि मोहतत्व प्रवाह से अनादि है, किन्तु अपने मूल रूप से अनादि और अखण्ड नहीं है।

ए खेल देख्या छल का, बैकुंठ लो पाताल।

फल फूल पात ना दरखत, काष्ट तुचा मूल ना डाल॥१७॥

वैकुण्ठ से लेकर पाताल तक केवल माया का छल ही छल दिखायी दे रहा है। वस्तुतः यदि विवेक दृष्टि से देखा जाये, तो न तो संसार रूपी कोई अनादि वृक्ष है और न उसकी जड़, तना, छाल, और डालियाँ हैं। यहाँ तक कि उस पर पत्ते, फूल, एवं फल भी नहीं हैं।

प्रश्न- क्या इस प्रकार का कथन आदिशंकराचार्य का नहीं है, जिन्होंने जीव-ब्रह्म की एकता का सिद्धान्त प्रतिपादित कर अपना नवीन वेदान्त मत प्रचारित किया था?

उत्तर- उत्पत्ति, विनाश, एवं परिवर्तनशीलता से युक्त पदार्थ सत्य नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि ब्रह्म को जहाँ सत्य और अखण्ड कहा गया है, वहीं इस संसार को स्वप्नवत् और मिथ्या कहा गया है। शंकराचार्य जी ने स्वाप्निक जीव की अविनाशी ब्रह्म से एकता की, जो उचित नहीं है। इसलिये तारतम्य वाणी के उपरोक्त कथन को शंकराचार्य जी से लिया हुआ कहना बहुत बड़ी भूल है।

खुले ना बंध बिना बांधे, बिध बिध खोले जाए।

ए माया मोहोरे देख के, उरझ रहे सब मांहेँ॥१८॥

मोह-माया के बन्धन बहुत प्रयास करने पर भी किसी से खुल नहीं पाते, जबकि उन्हें किसी ने बाँधा नहीं होता है। माया के जीव उन बन्धनों के विषय में जानते रहने पर भी उनमें उलझे ही रहते हैं।

जागो जगाऊं जुगत सों, छोड़ो नींद विकार।

पेहेचान कराऊं पिउ सों, सुफल करुं अवतार॥१९॥

हे साथ जी! अब मैं धाम धनी की कृपा दृष्टि से आपको युक्तिपूर्वक जगा रही हूँ। आप अज्ञान से उत्पन्न होने वाले विकारों को छोड़कर जाग्रत हो जाइये। मेरी यही चाहत है कि आपको प्रियतम अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की स्पष्ट पहचान करा दूँ और इस संसार में अपना आना

सार्थक कर दूँ।

वतन देखाऊँ पिउ का, और अपनी मूल पेहेचान।

एह उजाला करके, धोखा देऊँ सब भान॥२०॥

मैं तारतम वाणी के प्रकाश में प्रियतम के मूल परमधाम तथा आपके मूल स्वरूप की पहचान कराऊँगी। इस प्रकार सबके हृदय में तारतम ज्ञान का उजाला करके मन में विद्यमान संशयों को समाप्त कर दूँगी।

ए भोम हांसी देख के, आप होत सावचेत।

मूल सुख कहे महामती, तुमको जगाए के देत॥२१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! यह मायावी जगत हँसी की भूमिका है। इसकी पहचान करके आप अपनी आत्मिक जाग्रति के लिये सजग

(सावधान) हो जाइये। मैं आपको जाग्रत करके परमधाम
के अखण्ड सुखों का अनुभव अवश्य कराऊँगी।

प्रकरण ॥२२॥ चौपाई ॥६१९॥

जागनी का प्रकरण

इस प्रकरण में आत्मा की जाग्रति के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला गया है।

अब जाग देखो सुख जागनी, ए सुख सोहागिन जोग।

तीन लीला चौथी घर की, इन चारों को यामें भोग॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! अब आप जाग्रत होकर आत्म-जाग्रति के सुखों का रसपान कीजिए। इस सुख को लेने में ब्रह्मसृष्टियाँ ही सक्षम हैं। यदि आप अपनी आत्मा को जाग्रत कर लेते हैं, तो इसी संसार में व्रज, रास, श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला, एवं परमधाम की लीला का प्रत्यक्ष सुख प्राप्त कर सकते हैं।

भावार्थ- श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में होने वाली

जागनी लीला परमधाम के सुखों की है। इसे तारतम वाणी के इन कथनों से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है—

ए सुख सुपने के, दूजे जागते ज्यों होए।

तीन लीला पेहेली ए चौथी, फरक एता इन दोए॥

कलस हिन्दुस्तानी २३/७५

अर्थात् ब्रज, रास, एवं श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला का सुख स्वप्न के समान है, तथा श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में होने वाली लीला जाग्रत अवस्था की है और परमधाम के सुखों की है। चितवनि के द्वारा सभी लीलाओं का सुख प्राप्त हो सकता है।

कह्या न जाए सुख जागनी, सत ठौर के सनेह।

तो भी कहूं जिमी माफक, नेक प्रकासूं एह॥२॥

आत्म-जाग्रति एवं परमधाम की प्रेममयी लीला के सुख का वर्णन इस मुख से हो पाना सम्भव नहीं है, फिर भी इस संसार की स्थिति के अनुसार थोड़ा सा वर्णन करती हूँ।

अब जगाऊं जुगत सों, उड़ाऊं सब विकार।

रंगे रास रमाए के, सुफल करूँ अवतार॥३॥

हे साथ जी! अब मैं तारतम वाणी के ज्ञान एवं परमधाम के प्रेम (चितवनि) के द्वारा सब सुन्दरसाथ के मानसिक विकारों को दूर करूँगी तथा आपको युक्तिपूर्वक जगाऊँगी। मैं आपको जागनी रास के इस खेल में आनन्दित करके अपना यहाँ आना सार्थक करूँगी।

अब दुख न देऊं फूल पांखड़ी, देखूं सीतल नैन।

उपजाऊं सुख सब अंगों, बोलाऊं मीठे बैन॥४॥

यदि किसी के ऊपर फूलों की पाँखुड़ियाँ फेंकने से भी कष्ट होता है, तो मैं उतना भी कष्ट सुन्दरसाथ को नहीं होने दूँगी। मैं सर्वदा ही प्रेम की शीतल कर देने वाली दृष्टि से देखूँगी। इसके अतिरिक्त मैं आपसे बहुत ही मधुर शब्दों में बोलूँगी तथा आपके हृदय में परमधाम के अखण्ड सुख का अनुभव कराऊँगी।

आगे कलकली कलकलाए, तोहे ना गयो विकार।

कठिन सही तुम खंडनी, वचन खांडा धार॥५॥

पहले मैंने आपको जाग्रत करने के लिये बहुत ही कठोर भाषा का प्रयोग किया। आपने भी तलवार की धार के समान खण्डनी के मेरे तीखे वचनों को सहन किया। आप

उन वचनों से दुःखी होकर रोए भी अवश्य, किन्तु माया के विकारों ने तब भी आपका साथ नहीं छोड़ा।

भावार्थ- श्री जी ने जागनी लीला के प्रारम्भिक चरण में हरजी व्यास, जयराम, हरिवंशराय, वृन्दावन, एवं महावजी भाई को खण्डनी के तीखें वचनों से जाग्रत किया। उन्हीं प्रसंगों की ओर यहाँ संकेत किया गया है।

सो ए वचन मोहे सालहीं, कठिन तुमको जो कहे।

सोहागनियों को निद्रा मिने, मूल घर विसर गए॥६॥

हे साथ जी! आपको जागनी के प्रति सावचेत करने के लिये मैंने कठोर शब्दों का प्रयोग किया है, जिसके कारण मेरा हृदय आज तक व्यथित होता रहा है। इस मायावी जगत में आकर ब्रह्मात्माओं को तो अपने परमधाम की स्मृति ही नहीं रही है।

अब गालूं ताओं दिए बिना, करूं सो रस कंचन।

कस चढ़ाऊं अति रंगे, दोऊ पर करूं धन धन॥७॥

अब मैं कठोर वचन बोले बिना ही आपको प्रियतम के प्रेम में गलितगात कर दूँगी और शुद्ध सोने (कञ्चन) के समान निर्मल करूँगी। आपको परमधाम के अपार आनन्द में डुबोकर दोनों जगह (यहाँ भी और परमधाम में भी) धन्य-धन्य कर दूँगी।

भावार्थ- "कस चढ़ाना" एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है- आवरण चढ़ाना। उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण का आशय है- प्रियतम के अपार आनन्द के आवरण से ढक देना अर्थात् ओत-प्रोत हो जाना। जो इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, वह इस जागनी लीला में भी धन्य-धन्य हो जायेगा तथा परमधाम में भी जाग्रत होने पर सबके सम्मुख धन्य-धन्य होगा।

जानूं साथजी विदेस आए, दुख देखे कई भांत।

जो लों न इत सुख पावहीं, तो लों न मोहे स्वांत॥८॥

हे साथ जी! मैं यह बात अच्छी तरह से जानती हूँ कि आप इस मायावी जगत (विदेश) में आये हुए हैं और आपने अनेक प्रकार के दुखों को देखा है। अब जब तक आपको इस संसार में ही परमधाम के सुख का अनुभव नहीं होगा, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।

नैन चढ़ाए साथ न जागे, यों न जागनी होए।

मूल घर देखाइए, तब क्यों कर रहेवे सोए॥९॥

सुन्दरसाथ को क्रोध में केवल फटकारने मात्र से वे जाग्रत नहीं होंगे और इस शैली (तरीके) से जागनी लीला का विस्तार भी नहीं हो सकता। जब आप सुन्दरसाथ को परमधाम की पहचान करायेंगे, तो वे माया

में कैसे रह सकते हैं?

खंडनी कर खीजिए, जागे नहीं इन भांत।

दीजे आप ओलखाए के, यों साख देवाए साख्यात॥१०॥

यदि आप जागनी के नाम पर सुन्दरसाथ की केवल खण्डनी करके अपना क्रोध दिखाते रहेंगे, तो इस प्रकार से किसी की भी जागनी नहीं होगी। सुन्दरसाथ को जाग्रत करने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें प्रत्यक्ष रूप से धर्मग्रन्थों की साक्षी देकर उनके आत्म-स्वरूप की पहचान दी जाये।

जगाऊं सुख याद देने, करूं आप अपनी बात।

पीछे हम तुम मिलके, जाहेर कीजे विख्यात॥११॥

मैं आपको परमधाम के अखण्ड सुखों की याद दिलाने

के लिये जगा रही हूँ, जिससे परमधाम के अपने सुन्दरसाथ से परमधाम एवं प्रियतम की बातें कर सकूँ। आपके जाग्रत हो जाने के पश्चात् हम सभी को मिलकर अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की शोभा, महिमा, एवं लीला को सर्वत्र ही उजागर करना चाहिए।

आगे आवेश मोपे पिया को, दे अंग लई जगाए।

निसंक निद्रा उड़ाए के, साख्यात लई बैठाए॥१२॥

हृष्ये में (पहले) धाम धनी मेरे धाम हृदय में अपने आवेश स्वरूप से विराजमान हुए और मुझे जाग्रत किया। उन्होंने मेरे अन्दर विद्यमान माया को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया और मुझे साक्षात् अपने चरणों में बैठा लिया।

भावार्थ— वि.सं. १७१२ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के पश्चात् युगल स्वरूप श्री इन्द्रावती जी के

धाम हृदय में गुप्त रूप से विराजमान हो चुके थे, किन्तु उन्हें इसका बोध नहीं था। इसे ही उपरोक्त चौपाई में माया (अज्ञान) कहा गया है। हृदये में विरह में तड़पने के पश्चात्, युगल स्वरूप ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और जागनी का आदेश देकर पुनः उनके धाम हृदय में विराजमान हुए। इसे ही चरणों में बैठाना मानना चाहिए।

अब रह्यो न जाए नेक न्यारे, यों किए जागनी ले।

अहंमेव जाग्या धाम का, हम मिने आया जे॥१३॥

धाम धनी के द्वारा इस प्रकार जाग्रत किये जाने के पश्चात् अब मैं उनसे थोड़ा (पल मात्र) भी अलग नहीं रह सकती। अब मेरे अन्दर परमधाम की "मैं" जाग्रत हो गयी है, अर्थात् यह भावना दृढ़ कर गयी है कि मेरा मूल स्वरूप परात्म है जो धनी के चरणों में मूल मिलावा में

विराजमान है।

भावार्थ- संसार का अहम् अपने सौन्दर्य, बुद्धिमता, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य आदि के भावों से जुड़ा होता है , किन्तु परमधाम का अहम् मात्र परात्म की भावना से जुड़ा होता है कि मैं अक्षरातीत की अर्धांगिनी हूँ और इस छलनी माया में पूर्णतया अलग हूँ।

पेहेले जोगमाया भई रास में, ताको सो अति उजास।

पर साथ जोग होसी जागनी, ताको कह्यो न जाए प्रकास॥१४॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड से पहले योगमाया के ब्रह्माण्ड में महारास की लीला हुई थी, जिसकी महिमा (प्रकाश) बहुत अधिक है। किन्तु तारतम वाणी के प्रकाश में सुन्दरसाथ के एकत्रित होने से जो जागनी लीला होगी, उसकी गरिमा को शब्दों में व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं

है।

अब बिछोहा खिन एक साथ को, सो मैं सहयो न जाए।

अब नेक वाओ इन माया की, जानों जिन आवे ताए॥१५॥

अब मैं यह सहन नहीं कर सकती कि माया के कारण पल भर के लिये भी सुन्दरसाथ का धनी से वियोग बना रहे। मैं यही चाहती हूँ कि अब सुन्दरसाथ को इस माया की जरा भी हवा न लगे, अर्थात् सुन्दरसाथ नाम मात्र के लिये भी मायावी विकारों या बन्धनों में न फँसे।

भावार्थ- जागनी का तात्पर्य ही यह है कि हम चितवनि के द्वारा युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में इस प्रकार बसा लें कि हमें पल-पल उनकी सान्निध्यता का अनुभव होता रहे और मायावी विकार हमें किसी भी प्रकार से अपने बन्धन में न बाँध सकें।

साथजी इन जिमी के, सुख देऊं अति अपार।

हँस हँस हेते हरख में, तुम नाचसी निरधार॥१६॥

हे साथ जी! मैं आपको संसार में होने वाली जागनी लीला के अपार आत्मिक सुखों का इस प्रकार अनुभव कराऊँगी कि आप निश्चित रूप से आनन्द में मग्न होकर नाचने लगेंगे अर्थात् अपार आनन्द का अनुभव करेंगे।

भावार्थ— जागनी लीला में हमें माया के नहीं, अपितु परमधाम के अपार सुखों का अनुभव होगा। विशुद्ध ज्ञान दृष्टि में तो संसार के सुख-दुःख का अस्तित्व ही नहीं रहता। माया का सुख उतना ही मिलेगा, जितनी हमें सामान्यतः आवश्यकता होती है।

प्रीतम मेरे प्राण के, अंगना आतम नूर।

मन कलपे खेल देखते, सो ए दुख करुं सब दूर॥१७॥

अब श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान श्री राज जी कहते हैं— हे साथ जी! आप मेरे प्राणों के प्रियतम हैं और आपकी नूरमयी आत्मा मेरी अंगना है। आपके मन में माया का खेल देखन से जो दुःख हो रहा है, उसे मैं पूर्ण रूप से समाप्त कर दूँगा।

मुख करमाने मन के, सो तुमारे मैं ना सहूँ।

ए दुख सुख को स्वाद देसी, तो भी दुख मैं ना देऊँ॥१८॥

माया का दुःख देखने से आपके मुख पर जो उदासी (मुरझाहट) दिखायी पड़ रही है, उसे मैं सहन नहीं कर सकता। यद्यपि माया का यह दुःख भी आपको संसार से अलग कर परमधाम का सुख दिलायेगा, फिर भी मैं आपको माया का दुःख नहीं लगने दूँगा।

भावार्थ— यद्यपि माया का दुःख मिलने पर संसार से

वैराग्य उत्पन्न होता है तथा हृदय में प्रियतम का विरह पनपने लगता है जो अन्ततोगत्वा प्रेम में परिणित हो जाता है, तथापि धाम धनी को यह भी स्वीकार्य नहीं है कि मेरी आत्माओं को किसी भी प्रकार से कष्ट हो। वे तारतम वाणी के प्रकाश में विवेक से ही विरह-वैराग्य उत्पन्न करने के पक्षधर हैं।

सत सुख में सुख देयसी, इन जिमी के दुख जेह।

तुम हंसोगे हरख में, रस देसी दुखड़ा एह॥१९॥

इस संसार में आपको जो भी दुःख मिल रहे हैं, वे आपका ध्यान संसार से हटाकर मेरे प्रति केन्द्रित कर देंगे। परिणाम स्वरूप, आपको मेरी सानिध्यता प्राप्त होगी। इस प्रकार ये दुःख भी आपको यहाँ पर परमधाम के सुखों का तो अनुभव करायेंगे ही, परमधाम के

अखण्ड सुख में भी और सुख का अनुभव करायेंगे क्योंकि आपने माया में मुझे पा लिया होगा। माया के ये दुःख भी आपको मेरे प्रेम में डुबोकर इतना अधिक आनन्द देंगे कि आप परात्म में जाग्रत होने पर प्रसन्नतापूर्वक हँसेंगे।

हम उपाया सुख कारने, ए जो मांग्या खेल तुम।

दुख दे वतन बोलावहीं, ए इन घर नहीं रसम॥२०॥

हे साथ जी! आपने माया का खेल देखने की इच्छा की थी। उसे पूर्ण करके आपको सुखी करने के लिये ही मैंने माया का यह खेल रूपी ब्रह्माण्ड बनाया है। परमधाम की यह परम्परा नहीं है कि आपको माया में दुःखी करके अपने घर बुलाऊँ।

भावार्थ— इस चौपाई से यह स्पष्ट होता है कि धाम धनी

हमें किसी भी स्थिति में दुःख नहीं दे सकते। यह संसार दुःखमयी अवश्य है, किन्तु हमें दुःख दिखाने के लिये बनाया गया है, स्वयं दुःख भोगने के लिये नहीं।

किन्तु उपरोक्त कथन में यह संशय होता है कि सुन्दरसाथ (ब्रह्मसृष्टि) को भी तो रोग, वियोग, वृद्धावस्था, अथवा धनाभाव के कारण वैसे ही कष्ट होता है, जैसा अन्य लोगों को होता है। कहीं-कहीं तो सांसारिक लोग अधिक सुखी-सम्पन्न दिखायी देते हैं, जबकि सुन्दरसाथ बहुत विपन्न अवस्था वाले और दुःख से ग्रसित दिखायी देते हैं?

इसका समाधान यह है कि शुभ-अशुभ कर्मों के कारण सुख-दुःख का भोक्ता जीव है, जो अपने अन्तःकरण के द्वारा सुख-दुःख का अनुभव करता है तथा इन्द्रियों एवं शरीर के माध्यम से उसे भोगता है। आत्मा मात्र जीव के

ऊपर बैठकर द्रष्टा भाव से देखती रहती है। न तो उसे सुख का अनुभव होता है और न दुःख का। उसे सुख या दुःख का केवल ज्ञान होता है।

यदि यह कहा जाये कि अनुभव भी तो ज्ञान ही होता है, तो इसका उत्तर यह है कि भोक्ता के रूप में अनुभव करना और द्रष्टा के रूप में अनुभव करना अलग-अलग है। उदाहरणार्थ— यदि आग के अँगारे से हमारा हाथ जल जाये, तो पीड़ा का अनुभव केवल हमारे अन्तःकरण को होगा। हमारी इस पीड़ामयी स्थिति को वहाँ उपस्थित मेरा मित्र मात्र ज्ञान दृष्टि से देख सकता है, स्वयं पीड़ित नहीं हो सकता।

पुनः यदि यह कहा जाये कि शाकुण्डल एवं शाकुमार की परात्म को हँसते हुए वर्णित क्यों किया गया है? उन्हें सुख का अनुभव हुआ है, तभी तो यह कथन किया गया

है?

इसका समाधान यह है कि शाकुण्डल एवं शाकुमार की परात्म के मुख पर उस सुख के ज्ञान की झलक का प्रतिबिम्ब पड़ा, जो उनकी आत्मा ने छत्रसाल जी एवं औरंगजेब के जीवों को राजकीय सुख में मग्न होते देखा था।

इस प्रकार यह कथन भी भ्रान्तिपूर्ण है कि तारतम वाणी का ज्ञान हमारी परात्म तक पहुँच रहा है। वस्तुतः तारतम वाणी का अध्ययन या चिन्तन-मनन जीव करता है। उसके इस क्रियाकलाप को आत्मा द्रष्टाभाव से देखती रहती है तथा परमधाम एवं संसार के रहस्य को ग्रहण करती है, किन्तु जिस प्रकार एक चुम्बक मात्र लोहे को ही अपनी ओर खींच सकता है प्लास्टिक के टुकड़ों को नहीं, उसी प्रकार आत्मा भी केवल दिव्य भावों को

ही ग्रहण कर सकती है। जीव के हृदय में उठने वाले काम, क्रोध आदि विकारों से वह अपेक्षा दृष्टि ही रखेगी क्योंकि वह पूर्णतया निर्विकार है। क्या हीरे के टुकड़े को कीचड़ में डाल देने पर कीचड़ उसमें प्रविष्ट हो जायेगा।

जब आत्मा खेल समाप्त होने के पश्चात् अपने मूल तन में जाग्रत होगी, तभी परात्म को तारतम वाणी के सभी रहस्यों का बोध होगा। इसके पहले यह कार्य आत्मा ही कर रही है, परात्म तो पूर्णतया नींद (बेसुधि) में है। जब वह अपने सामने विराजमान धाम धनी को नहीं देख पा रही है, तो तारतम वाणी के ज्ञान को कैसे ग्रहण कर सकती है। यथार्थता यह है कि इस जागनी लीला में सारी भूमिका (ज्ञान, जागनी आदि) आत्मा की है, परात्म की नहीं।

सेहेजल सुख तुमें है सदा, अल्प नहीं असुख।

तुम सुख को स्वाद लेने, खेल मांग्या ए दुख॥२१॥

परमधाम में तो सदा आपको अखण्ड सुख का रस प्राप्त होता रहा है। वहाँ अल्प मात्रा में भी कहीं दुःख नहीं है। आपने तो सुख का स्वाद लेने के लिये यह दुःख का खेल माँगा था।

खेल मांग्या दुख का, तब कह्या हम तुम।

दुख का खेल तुमको, क्यों देखावें हम॥२२॥

हे साथ जी! जब आपने मुझसे दुःख का खेल देखने की इच्छा की थी, मैंने तभी आपको मना किया था कि मैं किस प्रकार से आपको दुःख का खेल दिखाऊँ?

दुख तो क्योंए देऊं नहीं, तो खेल देख्या क्यों जाए।

खंत लगी खरी खेल की, तिनको सो एह उपाए॥२३॥

यह तो ठीक है कि मैं आपको किसी भी प्रकार से दुःख नहीं दे सकता, किन्तु इस अवस्था में आप खेल कैसे देखेंगे? आपमें माया का दुःखमयी खेल देखने की स्पष्ट इच्छा थी, उसका एकमात्र उपाय यही था कि आपको दुःख दिखाया जाये।

पिया हम खेल जान्या घरका, ज्यों खेल करत सदाए।

हम खेल खड़े यों देखसी, ए भी इन अदाए॥२४॥

सुन्दरसाथ कहते हैं कि हे धाम धनी! हमने तो यही समझा था कि माया का दुःखमयी खेल भी परमधाम की लीलाओं की तरह बहुत मनोरंजक होगा और हम खेल का आनन्द अति सरलतापूर्वक (खड़े-खड़े) वैसे ही लेंगे

जैसे परमधाम की लीलाओं का आनन्द लिया करते हैं।

वस्तोगते दुख ना कछू, जो पीछे फेरो दृष्ट।

जो देखो वचन जागके, तो नहीं कछुए कष्ट॥२५॥

श्री राज जी उत्तर देते हैं कि हे साथ जी! यदि आप माया से अपनी दृष्टि हटाकर परमधाम की ओर कर लेते हैं, तो यथार्थता यही है कि संसार में कुछ भी दुःख नहीं है। यदि आप जाग्रत होकर तारतम वाणी के वचनों से विचार करते (देखते) हैं, तो यह विदित होगा कि नश्वर जगत में भी कोई कष्ट नहीं है।

भावार्थ— दुःख की भयंकरता का हमें अनुभव तब होता है, जब हम उसी का चिन्तन करते हैं। यदि हम परमधाम की शोभा एवं लीला के आनन्द में खोये रहते हैं, तो दुःख हमें नगण्य सा प्रतीत होगा। इस तथ्य को इस

दृष्टान्त द्वारा समझा जा सकता है कि एक रूपवती स्त्री अपने श्रृंगार के बिगड़ जाने पर व्यथित होती है, जबकि एक अवधूत महात्मा जानबूझकर अपने मुख एवं सम्पूर्ण शरीर पर राख या मिट्टी लपेट लेता है।

लगोगे जो दुख को, तो दुख तुमको लागसी।

याद करो जो निज सुख, तो दुख तुमथें भागसी॥२६॥

यदि आप इस दुःखमयी संसार के मोह में लिपटे रहेंगे, तो आपको दुःख भोगना पड़ेगा। इसके विपरीत, यदि आप परमधाम के अखण्ड सुखों के ध्यान में डूबे रहेंगे, तो दुःख आपसे सदा दूर ही रहा करेंगे।

फेर देखो जो नजरों, तो रहेसी न्यारे दुख।

करोगे इन खेल रंगे, विनोद बातें मुख॥२७॥

पुनः यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से परमधाम एवं युगल स्वरूप को देखेंगे, तो दुःखों के बन्धन से दूर रहेंगे और इस खेल में आनन्द का अनुभव करेंगे। परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् आप अपने श्रीमुख से बहुत ही विनोदपूर्वक इस खेल की बातें करेंगे।

सागर सुख में झीलते, तहां दुख नहीं प्रवेस।

तो दुख तुम मांगिया, सो देखाया लवलेस॥२८॥

आप परमधाम में सुख के अनन्त सागर में क्रीड़ा करते थे। वहाँ तो दुःख का स्वप्न में भी प्रवेश नहीं हो सकता, इसलिये आपने दुःख देखने की इच्छा की थी। उसे पूर्ण करने के लिये मैंने आपको नाम मात्र ही दुःख दिखाया है।

पौढ़े भेले जागसी भेले, खेल देख्या सबों एक।

बातां करसी जुदी जुदी, बिध बिध की वलसेक॥२९॥

परमधाम में आप खेल देखने के ललये एक साथ बैठे और इस खेल को सभी ने एक साथ ही आकर देखा है। अपनी परात्म में भी सभी एक साथ जाग्रत होंगे। सभी अपनी-अपनी जागनी लीला की अलग-अलग प्रकार की विशेषता बताते हुए बातें करेंगे।

दुख तुमारे मैं न सहूं, सो जानो चित्त चौकस।

ए दुख देसी बोहोत सुख, खेल होसी रंग रस॥३०॥

आप अपने हृदय में यह बात अच्छी तरह से दृढ़ कर लीजिए कि मैं आपको किसी भी स्थिति में दुःखी नहीं देख सकता। आपको इस संसार में जो भी दुःख देखने को मिल रहा है, उनसे विवेक लेकर यदि आपने विरह-

प्रेम का मार्ग अपना लिया , तो यह दुःख आपको परमधाम का अपार सुख देने वाला हो जायेगा और आपको इस खेल में अखण्ड प्रेम तथा आनन्द का अनुभव होगा।

साथ को इन जिमी के, सुख देने को हरख अपार।

रासमें रंग खेल के, भेले जागिए निरधार॥३१॥

हे साथ जी! इस मायावी खेल में भी आपको परमधाम का सुख देने में मुझे अपार प्रसन्नता है। आप निश्चित रूप से इस जागनी लीला में परमधाम का आनन्द प्राप्त कीजिए और एक साथ ही जाग्रत हो जाइए।

अब ल्योरे मेरे साथ जी, इन जिमी ए सुख।

मैं तुमारे न सेहे सकों, जो देखे तुम दुख॥३२॥

मेरे प्रिय सुन्दरसाथ जी! अब आप इस संसार में निजधाम के सुखों का रस लीजिए। आपने अब तक इस मायावी जगत में जो कुछ भी दुःख देखा है, आपका पुनः वैसे ही दुःखी होना मैं सहन नहीं कर सकता।

लेहेर लगे तुमें मोह की, सो आतम मेरी न सहे।

अब खंडनी भी न करूं, जानों दुखाऊं क्यों मुख कहे॥३३॥

श्री महामति जी कहते हैं— मेरी आत्मा को यह सहन नहीं हो सकता कि आपके ऊपर मोह सागर (माया) की लहरों का कोई प्रभाव पड़े। अब मैं अपने मुख से खण्डनी के शब्द कहकर आपको थोड़ा भी दुःखी नहीं होने दूँगा।

भावार्थ— यह प्रकरण संवाद रूप में है। कहीं सुन्दरसाथ की ओर से कहा जा रहा है, तो कहीं श्री महामति जी की ओर से। कहीं—कहीं महामति जी के धाम हृदय में

विराजमान श्री राज जी का आवेश कह रहा है।

अब क्यों देऊं कसनी, मुख करमाने न सहूँ।

तिन कारन सब्द कठन, मेरे प्यारों को मैं क्यों कहूँ॥३४॥

हे साथ जी! आप मुझे बहुत ही प्यारे हैं, इसलिये मैं किसी भी स्थिति में आपके मुख को मुझाया हुआ नहीं देख सकता। अब मैं न तो आपको कष्टसाध्य परीक्षाओं से गुजारूँगा और न ही आपके लिये कभी कठोर शब्दों का प्रयोग करूँगा।

भावार्थ- श्री महामति जी का संकेत दीपबन्दर की उस घटना से है, जब उन्होंने दीपबन्दर में भाई जयराम जी को कुत्ते से उपमा दे दी। "चचोड़त ठौर मुरदार" का कथन इसी सन्दर्भ में है।

अब तारुं तुमें या बिध, ज्यों लगे न लेहेर लगार।

सुखपाल में बैठाए सुखें, घर पोहोंचाऊं निरधार॥३५॥

अब मैं आपको इस भवसागर से इस प्रकार पार उतारूँगा कि आपके ऊपर माया का नाम मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ने पाए। मैं निश्चित रूप से आपको प्रेम रूपी सुखपाल में बैठाकर परमधाम ले चलूँगा।

उपजाए देऊं अंग थें, रस प्रेम के प्रकार।

प्रकास पूरन करके, सब टालूं रोग विकार॥३६॥

मैं आपके हृदय में तारतम वाणी का पूर्ण प्रकाश करके तरह-तरह के अलौकिक प्रेम रस वाले भावों को उत्पन्न करूँगा। इस प्रकार मैं आपके सभी विकारों को नष्ट कर दूँगा।

भावार्थ— प्रियतम के विरह-प्रेम से ही विकारों का

समूल उच्छेदन होता है। शुष्क ज्ञान एवं शुष्क साधनायें पूर्ण निर्विकार नहीं बना सकतीं।

अंग दिए बिना आवेस, नहीं प्रेम उपाए।

आवेस दे करुं जागनी, लेऊं अंग में मिलाए॥३७॥

जब तक मैं आपके हृदय में प्रियतम के ज्ञान का आवेश नहीं दूँगा, तब तक आपके हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं होगा। मैं आपके हृदय में ज्ञान के द्वारा भावावेश देकर आपकी आत्मा को जाग्रत करूँगा तथा आपको अपने हृदय में मिला लूँगा।

भावार्थ— ज्ञान के द्वारा श्रद्धा एवं विश्वास (ईमान) परिपक्व होते हैं। इसके पश्चात् ही वह भावदशा प्राप्त होती है, जिसमें प्रियतम को प्रत्यक्ष पाना जीवन का प्रथम लक्ष्य रह जाता है। उपरोक्त चौपाई में श्री राज जी के

आवेश को टुकड़े-टुकड़े करके बाँटने का प्रसंग नहीं है, अपितु तारतम ज्ञान द्वारा विरह-प्रेम के मार्ग पर चलाकर महाभाव दशा (गहन तल्लीनता) में स्थित करना ही आवेश को बाँटना है। इसके पश्चात् ही आत्म-जाग्रति सम्भव है।

अब भेले तो सब चलिए, जो अंग न काहूँ अटकाए।

तो तुमें होवे जागनी, जो सांचवटी बटाए॥३८॥

हे साथ जी! यदि आपका हृदय माया के बन्धनों में कहीं भी नहीं फँसता है, तो आप सभी को एकसाथ जागनी के मार्ग पर चलना चाहिए। जब आपको परमधाम का यथार्थ बोध हो जायेगा, तभी आपकी आत्मा जाग्रत हो सकती है।

अब दुख आवे तुमको, तहां आड़ा देऊं मेरा अंग।

सुख देऊं भली भांतसों, ज्यों होए न बीच में भंग॥३९॥

यदि जागनी के इस स्वर्णिम मार्ग पर चलने पर आपको कोई कष्ट होता है, तो उसे मैं स्वयं अपने ऊपर ले लूँगा। मैं आपको अच्छी प्रकार से परमधाम के सुखों की रसानुभूति कराऊँगा, जिससे आपकी जागनी यात्रा बीच में ही खण्डित न होने पाये।

ए लीला करूँ इन भातें, तो रास रंग खेलाए।

बिध बिध के सुख विलसिए, विरह जागनी सहयो न जाए॥४०॥

यदि मैं इस प्रकार से जागनी लीला करूँ, तो आपको जागनी रास का आनन्द मिलेगा। अब आप अपनी आत्म-जाग्रति के द्वारा परमधाम के तरह-तरह के सुखों (ज्ञान, प्रेम, एकत्व आदि) का आनन्द लीजिए। जागनी

के मार्ग पर चल देने पर प्रियतम का विरह सहा नहीं जाता है।

जगाए नीके सुख देऊं, रहेस खेलाऊं रंग।

सत सुख क्यों आवहीं, जोलों ना दीजे अंग॥४१॥

हे साथ जी! मैं आपको अच्छी तरह से जाग्रत करके परमधाम के सुखों का रसास्वादन कराऊँगा तथा उसी प्रेममयी लीला के आनन्द में डुबोये रखूँगा। किन्तु जब तक आप अपने प्राणेश्वर के प्रति अपना हृदय समर्पित नहीं करेंगे, तब तक आपको परमधाम के सुखों का स्वाद नहीं मिल सकता।

भावार्थ— महामति जी के ऊपर समर्पित होने या अक्षरातीत के ऊपर समर्पित होने में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं है, क्योंकि इस जागनी ब्रह्माण्ड में धाम धनी

ने उन्हें अपनी सारी शोभा दे रखी है। यह कथन इसी प्रकरण की चौपाई ६५ से ६८ में भी दर्शाया गया है।

अंगना को अंग दीजिए, अंगना लीजे अंग।

पास देऊं पूरा प्रेम का, नेहेचल का जो रंग॥४२॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे धाम धनी! आप हम सभी अंगनाओं को अपना हृदय दीजिए तथा हमारे समर्पण एवं प्रेम भरे हृदय को अपने हृदय में मिला लीजिए। प्रत्युत्तर में श्री राज जी कहते हैं कि मैं अपनी अंगनाओं को उस प्रेम में डुबोऊँगा, जिसमें परमधाम का अखण्ड आनन्द छिपा हुआ है।

असतसों उलटाए के, सतसों कराऊं संग।

परआत्म सों बंध बांधूं, ज्यों होए न कबहूं भंग॥४३॥

अब श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी! मैं आपकी अन्तर्दृष्टि (सुरता) को इस नश्वर जगत से हटाकर अखण्ड परमधाम में ले जाऊँगी। वहाँ विद्यमान आपकी परात्म से आपकी सुरता का ऐसा सम्बन्ध कर दूँगी कि वह कभी भी टूटेगा नहीं।

भावार्थ— जब आत्मा अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर प्रियतम की शोभा को आत्मसात् कर लेती है, तो उस समय दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता। इसे सागर ग्रन्थ के इन कथनों से समझा जा सकता है—

अन्तस्करन आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे ना कछु अन्तराए॥

सागर ११/४१

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम संग लेय के, विलसिए संग खसम॥

सागर ७/४९

पिउ जगाई मुझे एकली, मैं जगाऊं बांधे जुथ।

ए जिमी झूठी दुख की, सो कर देऊं सत सुख॥४४॥

प्रियतम ने हब्शे में मुझ अकेली को जगाया, किन्तु मैं उनके आदेश से बड़े-बड़े समूहों (यूथ के यूथ) को जगाऊँगी। यह सारा ब्रह्माण्ड ही दुःखमय है, इसलिये मैं इसे अखण्ड मुक्ति का सुख दूँगी।

सब साथ करूं आपसा, तो मैं जागी प्रमान।

जगाए सुख देऊं धाम के, मिलाए मूल निसान॥४५॥

मेरी आत्मा का जाग्रत होना तभी सार्थक होगा, जब सब सुन्दरसाथ को अपने समान कर दूँ, अर्थात् जिस प्रकार मेरे धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हैं,

उसी प्रकार सभी के हृदय में युगल स्वरूप की छवि बस जाये। मैं सब सुन्दरसाथ को २५ पक्षों तथा अष्ट प्रहर की लीला की पहचान कराकर जाग्रत करूँगी तथा परमधाम के अखण्ड सुखों में डुबो दूँगी।

आवेस जाको मैं देखे पूरे, जोगमाया की नींद होए।

पर जो सुख दीसे जागनी, हम बिना न जाने कोए॥४६॥

जिन सतगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर मैंने धाम धनी के आवेश स्वरूप की विद्यमानता देखी थी, उनमें योगमाया की निद्रा जैसी अवस्था थी, अर्थात् उनमें ब्रज-रास और धाम की सुधि तो थी किन्तु जागनी की सुधि नहीं थी। किन्तु जागनी से जो सुख प्राप्त होता है, उसे हमारे अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता।

भावार्थ— योगमाया में रास लीला के समय सखियों को

प्रियतम से अपने सम्बन्ध का ज्ञान था, किन्तु परमधाम की सुधि नहीं थी, इसलिये उन्हें कुछ नींद और कुछ जाग्रत की अवस्था वाला कहा गया। इसी प्रकार सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को भी जागनी की सुधि न होने के कारण योगमाया की नींद से उपमा दी गयी है—

सुन्दरबाइएँ देखिया, दिल के दीदो माहें।

ब्रज रास और धाम की, पर जागनी की सुध नाहें॥

सनंध ४१/१६

ब्रह्मसृष्टि हुती ब्रज रास में, प्रेम हुतो लछ बिन।

सो लछ अव्वल को ल्याए रूह अल्ला, पर न था आखिरी इलम पूरन॥

सिनगार १/४७

इसका आशय यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि यहाँ श्री देवचन्द्र जी की गरिमा को कम किया जा रहा है। वस्तुतः श्यामा जी के पहले तन (श्री देवचन्द्र जी) से जागनी

नहीं होनी थी। यह शोभा उनके दूसरे तन (श्री मिहिरराज जी) को थी। सनंध ४१/६६ में इस सम्बन्ध में कहा गया है—

बाई जीएँ घर चलते, जाहेर कहे वचन।

आड़ी खड़ी इन्द्रावती, है इनके हाथ जागन॥

जो जाग बैठे धाम में, ताए आवेस को क्या कहिए।

तारतम तेज प्रकास पूरन, तिनथें सकल बिध सुख लहिए॥४७॥

जो अपनी आत्मा के धाम हृदय में जाग्रत हो जाते हैं, अर्थात् जिनकी आत्मा के हृदय में सम्पूर्ण परमधाम की शोभा बस जाती है, उनके अन्दर धाम धनी के आवेश की विद्यमानता के सम्बन्ध में क्या संशय किया जा सकता है। उनके अन्दर तारतम ज्ञान का पूर्ण प्रकाश होता है। हे साथ जी! आप ऐसे स्वरूप से परमधाम का

सुख हर प्रकार से प्राप्त कीजिए।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई के पहले चरण में धाम में जागने की जो बात कही गयी है, उसका सम्बन्ध आत्मा के धाम हृदय से है, परमधाम से नहीं। परमधाम में एकत्व (वहदत) है, इसलिये वहाँ सबकी जागनी एक-साथ ही होगी। इस चौपाई में मात्र सैद्धान्तिक विवेचना है कि जिसकी आत्मा को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त हो जाती है, उसमें अक्षरातीत का आवेश विराजमान हो जाता है। श्यामा जी के दोनों तनों (श्री देवचन्द्र एवं श्री मिहिरराज) में धाम हृदय की शोभा अवश्य प्राप्त हुई, किन्तु जागनी की लीला दूसरे तन से इसलिये हुई क्योंकि उस तन से तारतम वाणी का अवतरण हुआ। इस सम्बन्ध में इसी प्रकरण की ये चौपाइयाँ देखने योग्य हैं-

पिया ल्याए मुझ कारने, और हुआ न काहू जान।

कलस हिन्दुस्तानी २३/५२

साख्यात सरूप इन्द्रावती, तारतम को अवतार।

कलस हिन्दुस्तानी २३/५६

जोत उद्योत प्रगट पूरन, इन्द्रावती के पास।

कलस हिन्दुस्तानी २३/५७

तारतम का जो तारतम, अंग इन्द्रावती विस्तार।

कलस हिन्दुस्तानी २३/७२

आवेस को नहीं अटकल, पर जागनी अति भारी।

आवेस जागनी तारतमें, जो देखो जाग विचारी॥४८॥

श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में श्री राज जी के आवेश
स्वरूप के विराजमान होने के सम्बन्ध में किसी भी

प्रकार का कोई संशय नहीं है, किन्तु "जागनी" की गरिमा बहुत अधिक है। धाम धनी ने श्यामा जी के उस पहले तन को जागनी की शोभा नहीं दी। हे साथ जी! यदि आप जाग्रत होकर विचारपूर्वक देखें तो यह स्पष्ट होगा कि जागनी के लिये आवेश के साथ तारतम ज्ञान (वाणी) होना आवश्यक है।

भावार्थ— श्री देवचन्द्र जी के तन से तारतम वाणी का अवतरित न होना जागनी की राह में सबसे बड़ी बाधा बन गयी। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान के पश्चात् सुन्दरसाथ तारतम ज्ञान के प्रकाश से दूर हो गया, जिसके परिणाम स्वरूप जाग्रत होने वाले सुन्दरसाथ भी पुनः माया में सो गये।

आड़िका लीला के आकर्षण से सुन्दरसाथ मात्र सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अलौकिक व्यक्तित्व पर केन्द्रित

हो गया था। तारतम वाणी के न होने से मूल स्वरूप श्री राज जी के प्रति निष्ठा, समर्पण, एवं प्रेम में निरन्तरता नहीं रही। ऐसी स्थिति में जागनी की आशा कैसे की जा सकती है। इस घटना से हमें इतनी सीख तो अवश्य लेनी चाहिए कि जागनी का सम्बन्ध तारतम वाणी के सम्यक् प्रचार-प्रसार से सम्बन्धित है। केवल भव्य आश्रमों, स्वर्ण कलशों, एवं सिंहासनों के निर्माण से कुछ लोगों की भीड़ एकत्रित करके जागनी का ढिंढोरा तो पीटा जा सकता है, किन्तु इससे वास्तविक जागनी नहीं हो सकती।

ए पैए बतावे पार के, नहीं तारतम को अटकल।

आवेस जागनी हाथ पिया के, एह हमारा बल॥४९॥

तारतम ज्ञान में किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। वह

निराकार-बेहद से परे परमधाम का सर्वोपरि मार्ग बताता है। अपने आवेश स्वरूप से धाम हृदय में विराजमान होकर जागनी की शोभा देना तो धाम धनी की कृपा एवं इच्छा पर निर्भर है (हाथ में है)। वस्तुतः आत्म-जाग्रति ही हमारी शक्ति है।

तारतम के सुख साथ आगे, बिध बिध पियाने कहे।

पीछे ए सुख इंद्रावती को, दया कर सारे दिए॥५०॥

प्रियतम अक्षरातीत ने श्री देवचन्द्र जी के तन में विराजमान होकर तारतम ज्ञान से मिलने वाले तरह-तरह के आत्मिक सुखों का वर्णन किया। इसके पश्चात् उस तन को छोड़कर वे मेरे धाम हृदय में बैठे और अति कृपा करके मुझे वे सभी सुख प्रदान किये।

धनं पिया धनं तारतम, धनं धनं सखी जो ल्याई।

धनं धनं सखी मैं सोहागनी, जो मो में ए निध आई॥५१॥

प्रियतम श्री राज जी धन्य-धन्य हैं, तारतम ज्ञान धन्य-धन्य है, इस अनुपम ज्ञान को लाने वाली श्यामा जी धन्य-धन्य हैं। मुझ सुहागिन इन्द्रावती को तारतम ज्ञान की निधि एवं जागनी की शोभा मिली, जिससे मैं भी धन्य-धन्य हो गयी हूँ।

पिया ल्याए मुझ कारने, और हुआ न काहूँ जान।

मैं लिया पिया विलसिया, विस्तारिया प्रमान॥५२॥

धाम धनी तारतम वाणी की यह निधि मेरे लिये लेकर आये, किन्तु किसी को भी इस रहस्य का बोध नहीं हुआ कि एकमात्र मेरे तन से ही वाणी का अवतरण क्यों हो रहा है। मैंने हब्शा में अपने प्राणेश्वर को साक्षात् पा लिया

और उनके प्रेम का आनन्द लिया। परिणाम स्वरूप, मेरे तन से तारतम ज्ञान का वाणी के रूप में विस्तार हुआ।

ए बानी सबमें पसरी, पर किया न साथे विचार।

पीछे दया कर दई धनिँ, अंग इंद्रावती विस्तार॥५३॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारविन्द से सुन्दरसाथ ने तारतम ज्ञान की चर्चा तो सुनी, किन्तु किसी ने उनके कथनों पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन नहीं किया। उनकी अन्तर्धान लीला के पश्चात् श्री राज जी ने मेरे ऊपर अपार कृपा (दया) की और मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर तारतम ज्ञान का अनेक ग्रन्थों के रूप में विस्तार किया।

द्रष्टव्य— इस चौपाई के पहले चरण में "वाणी" शब्द का प्रयोग उस तारतम ज्ञान के लिये किया गया है, जो चर्चा

के समय सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुख से प्रकट होता था।

बोहोत धन ल्याए धनी धामथें, बिध बिध के प्रकार।

सो ए सब मैं तोलिया, तारतम सबमें सार॥५४॥

धाम धनी परमधाम से अनेक प्रकार का बहुत सा धन लेकर आये हैं। जब मैंने उसका मूल्याँकन किया, तो तारतम ज्ञान ही सबका सार तत्त्व निकला।

भावार्थ- परमधाम की शोभा, लीला आदि का ज्ञान, एकत्व, आनन्द, प्रेम आदि अनेकों प्रकार के आध्यात्मिक धनों का भण्डार लेकर धाम धनी स्वयं आये हैं, किन्तु बिना तारतम के किसी भी अन्य धन की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये तारतम को सभी धनों का सार कहा गया है।

तारतम का बल कोई न जाने, एक जाने मूल सरूप।

मूल सरूप के चित्त की बातें, तारतम में कई रूप॥५५॥

तारतम ज्ञान की महिमा (शक्ति) को मूल स्वरूप श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता है। अक्षरातीत के हृदय में प्रेम, आनन्द, ज्ञान, सौन्दर्य, एकत्व आदि के जो सागर उमड़ा करते हैं, वे ही तो तारतम वाणी के कथनों में अनेक रूपों में ज्ञान दृष्टि से प्रकट हुए हैं।

साख्यात सरूप इंद्रावती, तारतम को अवतार।

वासना होसी सो बलगसी, इन वचन के विचार॥५६॥

श्री इन्द्रावती जी के अन्दर साक्षात् अक्षरातीत का आवेश स्वरूप विराजमान है, इसलिये इस जागनी लीला में वे तारतम के अवतार के रूप में प्रकट हुई हैं। जो भी

परमधाम की आत्मायें होगी, वह तारतम वाणी के वचनों का विचार करके धनी के चरणों से लिपट जायेंगी।

भावार्थ- श्री महामति जी के धाम हृदय से धनी के आवेश द्वारा तारतम वाणी का प्रकटन हुआ है, इसलिये उन्हें तारतम ज्ञान का अवतार (स्वरूप) कहना उचित ही है।

सरूप साथकी पेहेचान, तारतममें उजास।

जोत उद्धोत प्रगट पूरन, इंद्रावती के पास॥५७॥

तारतम ज्ञान के उजाले में ही मूल स्वरूप श्री राज जी तथा सुन्दरसाथ की पहचान होती है। धाम धनी के द्वारा श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में तारतम ज्ञान का पूर्ण उजाला प्रकट हुआ है।

वासनाओं के पेहेचान, बानी करसी तिन ताल।

निसंक निद्रा उड़ जासी, सुनते ही तत्काल॥५८॥

तारतम वाणी से परमधाम की आत्माओं की तत्क्षण पहचान हो जाती है। जो भी आत्मा इस ब्रह्मवाणी का श्रवण (चिन्तन-मनन) करेगी, निश्चित रूप से उसकी मायाजन्य नींद समाप्त हो जायेगी।

एक लवा सुने जो वासना, सो संग न छोड़े खिन मात्र।

होसी सब अंगों गलित गात्र, प्रगट देखाए प्रेम पात्र॥५९॥

यदि परमधाम की किसी ब्रह्मसृष्टि को श्रीमुखवाणी का एक शब्द भी सुनने के लिए मिल जाये, तो उसे इतना विश्वास आ जायेगा कि वह एक पल के लिये भी मेरा साथ नहीं छोड़ सकती है। उसके अंग-अंग में प्रेम ही प्रेम दृष्टिगोचर होगा। वह इस तथ्य को सिद्ध कर देगी कि

प्रियतम के प्रेम को आत्मसात् करने की उसमें पूर्ण पात्रता है।

ए बानी सुनते जिनको, आवेस न आया अंग।

सो नहीं नेहेचे वासना, ताको करुं जीव भेलो संग॥६०॥

इस ब्रह्मवाणी (तारतम वाणी) को सुनने के पश्चात् भी जिसके हृदय में प्रेम का आवेश नहीं आता, उसे निश्चित रूप से परमधाम की ब्रह्मसृष्टि नहीं कह सकते। उसे मैं जीव सृष्टि के समकक्ष (समान) ही मानता हूँ।

भावार्थ- यदि आत्मा किसी विकारग्रस्त, शुष्क हृदय, एवं बौद्धिक चातुर्य वाले जीव पर विराजमान होती है, तो श्रीमुखवाणी सुनकर भी उसे विश्वास आने में अधिक समय लग सकता है। भैरव सेठ एवं जहान मुहम्मद को जाग्रत करने के लिये श्री जी को विशेष कृपा करनी पड़ी।

उपरोक्त चौपाई में तारतम वाणी की विशेष महिमा को दर्शाने के लिये इस प्रकार का कथन किया गया है।

वासना जीव का बेवरा एता, ज्यों सूरज दृष्टें रात।

जीव का अंग सुपनका, वासना अंग साख्यात॥६१॥

आत्मा एवं जीव में इतना अन्तर है, जितना उगे हुए सूर्य एवं रात्रि में होता है। जीव के अंग स्वाप्निक होते हैं, जबकि आत्मा साक्षात् अक्षरातीत की ही अंगरूपा होती है।

भी बेवरा वासना जीवका, याके जुदे जुदे हैं ठाम।

जीव का घर है नींद में, वासना घर श्री धाम॥६२॥

आत्मा एवं जीव में यह भी अन्तर है कि इनके मूल घर भी अलग-अलग हैं। जीव का घर मोह सागर है, जबकि

आत्मा का मूल घर परमधाम है।

ना होए नया न पुराना, श्री धाम इन प्रकार।

घटे बढे नहीं पत्र एक, सत सदा सर्वदा सार॥६३॥

परमधाम इस प्रकार का है कि वह सर्वदा एकरस रहता है। न तो वह कभी नया हो सकता है और न पुराना। परमधाम में एक पत्ता भी न तो घट सकता है और न बढ़ सकता है। वहाँ प्रत्येक वस्तु का स्वरूप अखण्ड है, जो सदा शाश्वत रहने वाला है।

जो किन जीवे संग किया, ताको करुं ना मेलो भंग।

सो रंगे भेलूं वासना, वासना सत को अंग॥६४॥

श्री राज जी कहते हैं कि जीव जिस आत्मा की संगति करता है, उसका संयोग मैं नहीं तोड़ता हूँ, अर्थात् जिस

जीव पर आत्मा विराजमान होती है और उसी तन के रहते जाग्रत हो जाती है, तो खेल के समाप्त होने तक आत्मा का उस जीव के साथ संयोग सदा ही बना रहता है। मैं उस जीव को भी आत्मा के साथ ही आनन्दित करता हूँ, ऐसी अवस्था में जबकि आत्मा मेरी अंगरूपा है और जीव स्वाप्निक है।

भावार्थ- "जाको मेहेर करे मोमिन, ताए सुपने नहीं होए दोजक" के कथनानुसार, किसी ब्रह्ममुनि की सान्निध्यता में रहने वाले जीवों को भी अखण्ड मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है। जिस जीव पर आत्मा विराजमान होकर खेल देख रही होती है, उस तन को छोड़ने से पूर्व यदि वह जाग्रत हो जाती है, तो प्रलय के पश्चात् जीव को सत्स्वरूप की पहली बहिस्त (मुक्ति स्थान) में ब्रह्मात्माओं का प्रतिबिम्बित रूप मिलता है, जिसे धारण

कर वह परमधाम की प्रेममयी लीला का रसपान करता है।

जिस जीव पर न तो परमधाम की सुरता है और न ईश्वरी सृष्टि की सुरता है, वह भी यदि विरह-प्रेम में डूबकर अंगना भाव से चितवनि का मार्ग अपनाता है, तो वह भी पहली बहिश्त का अधिकारी बनता है। किन्तु शरीयत (कर्मकाण्ड) का मार्ग अपनाने पर उसे मात्र सातवीं (आखिर की तीसरी) बहिश्त प्राप्त होती है। खुलासा ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया है- "जिन लई सांच सो सरीयत, सो पावे भिस्त तीसरी ए।"

तारतम तेज प्रकास पूरन, इंद्रावती के अंग।

ए मेरा दिया मैं देवाए, मैं इंद्रावती के संग॥६५॥

श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में तारतम ज्ञान का पूर्ण

प्रकाश है, जिसे मैंने स्वयं उन्हे प्रदान किया है और उनके द्वारा आप सभी को दिलवा रहा हूँ। यह निश्चित है कि मैं पल-पल उनके साथ हूँ अर्थात् उनके धाम हृदय में विराजमान हूँ।

इंद्रावती के मैं अंगे संगे, इंद्रावती मेरा अंग।

जो अंग सौंपे इंद्रावती को, ताए प्रेमें खेलाऊं रंग॥६६॥

मैं इंद्रावती जी के अंग-संग हूँ अर्थात् उनके हृदय में साक्षात् विराजमान हूँ। वह मेरी अंगरूपा अर्धांगिनी है। जो भी सुन्दरसाथ उनके प्रति अपने हृदय में समर्पण भाव रखेगा, उसे मैं प्रेम के आनन्द में डुबो दूँगा।

बुध तारतम जित भेले, तित पेहेले जानो आवेस।

अग्या दया सब पूरन, अंग इंद्रावती प्रवेस॥६७॥

इन्द्रावती जी के जिस धाम हृदय में जाग्रत बुद्धि तथा तारतम ज्ञान विद्यमान है, उसमें मैं पहले से ही आवेश स्वरूप से विराजमान हूँ। उनके हृदय में, जागनी करने के लिये, मेरी आज्ञा शक्ति (आवेश) एवं मेरी दया ने पूर्ण रूप से प्रवेश किया हुआ है।

सुख देऊं सुख लेऊं, सुख मैं जगाऊं साथ।

इंद्रावती को उपमा, मैं दई मेरे हाथ॥६८॥

मैं ही सुन्दरसाथ को प्रेम का सुख देता हूँ तथा उनसे प्रेम का सुख लेता हूँ। मैं सुन्दरसाथ को, बिना किसी प्रकार का कष्ट दिये, सुखपूर्वक जाग्रत करता हूँ। यह सब कुछ मैं स्वयं श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में रहकर ही करता हूँ और उन्हें सारी शोभा देता हूँ।

मैं दया तुमको करी, जो देखो नैना खोल।

ना खोलो तो भी देखोगे, छाया निकसी ब्रह्मांड फोड़॥६९॥

हे साथ जी! यदि आप अपनी अन्तर्दृष्टि को खोलकर देखें, तो आपको मेरी उस कृपा (दया) की पहचान हो जाएगी जो मैंने आपके प्रति की है। किन्तु यदि आप इस संसार में अपनी आन्तरिक दृष्टि से नहीं भी देख सके, तो जब आपकी आत्मा इस ब्रह्माण्ड को छोड़कर परमधाम में अपनी परात्म में जाग्रत होगी, तब वहाँ पर मेरे द्वारा इस खेल में होने वाली कृपा की वास्तविक पहचान हो जायेगी।

ए खेल देख्या बैठे घर, अग्याऐं सैयों नजर।

जब अंतर आंखां खुली, तब दृष्ट घर की घर॥७०॥

हे साथ जी! आपने इस मायावी खेल को मेरे ही आदेश

से परमधाम (मूल मिलावा) में बैठे-बैठे अपनी आत्मिक (सुरता की) दृष्टि से देखा है। जब आपकी परात्म की दृष्टि खुलेगी, तो आपको अपने घर की प्रत्येक शोभा पूर्ववत् दृष्टिगोचर होने लगेगी।

भावार्थ- "अंतर आंखां खोलसी, ए सुख सोई देखे" (किरंतन ८२/१) के इस कथन में "अंतर" का आशय आत्मा की अन्तर्दृष्टि से है, किन्तु उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण में "अंतर आंखां" का तात्पर्य परात्म की दृष्टि से लिया जायेगा क्योंकि चौथे चरण में घर की दृष्टि का कथन किया गया है।

निज नैना देऊं खोलके, ज्यों आड़ी न आवे मोह सृष्ट।

होसी पेहेचान सत सुख, निज वतन देखो दृष्ट॥७१॥

मैं आपकी आत्मिक दृष्टि को खोल दूँगा, जिससे यह

मायावी ब्रह्माण्ड बाधा रूप में आपकी दृष्टि में न आये।
इससे आपको परमधाम की अनुपम शोभा दिखायी देगी
और आप अपने अखण्ड सुख की भी पहचान कर लेंगे।

तारतम का जो तारतम, अंग इन्द्रावती विस्तार।

पैए देखावे पार के, तिन पार के भी पार॥७२॥

श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय से तारतम के भी
तारतम का विस्तार हुआ है। इसमें निराकार, बेहद, और
अक्षर से भी परे परमधाम का मार्ग दर्शाया है।

भावार्थ- तारतम ज्ञान के द्वारा हृद से परे बेहद एवं
परमधाम का ज्ञान प्राप्त होता है, किन्तु "तारतम के
तारतम" के द्वारा परमधाम के २५ पक्षों की शोभा,
लीला, एकत्व आदि का ज्ञान होता है। खिलवत,
परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार ग्रन्थ "तारतम का तारतम"

है।

ब्रह्मांड दोऊ अखंड किए, तामें लीला हमारी।

तीसरा ब्रह्मांड अखंड करना, ए लीला अति भारी॥७३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि ब्रज एवं रास के दोनों ब्रह्माण्ड अखण्ड हो चुके हैं। इन दोनों में हमारी ही लीला अखण्ड है। अब जागनी के इस तीसरे ब्रह्माण्ड को भी अखण्ड करना है। यह जागनी लीला बहुत ही गरिमामयी है।

तीन लीला माया मिने, हम प्रेमें विलसी जेह।

ए लीला चौथी विलसते, अति अधिक जानी एह॥७४॥

ब्रज, रास, एवं श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला का हमने प्रेमपूर्वक नींद (माया) में आनन्द लिया

है, किन्तु श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप द्वारा होने वाली इस चौथी लीला (जागनी) का आनन्द लेते समय हमने इसकी गरिमा को अत्यधिक जाना है।

एक सुख सुपनके, दूजे जागते ज्यों होए।

तीन लीला पेहेले ए चौथी, फरक एता इन दोए॥७५॥

एक सुख सपने का होता है, जो यथार्थ में नहीं होता है। दूसरे प्रकार का सुख जाग्रत अवस्था का होता है, जो साक्षात् होता है। इस प्रकार पहले की ब्रज, रास, तथा श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीलायें स्वप्न के समान हैं, तथा श्री प्राणनाथ जी के द्वारा होने वाली यह चौथी लीला साक्षात् परमधाम की जाग्रत अवस्था की तरह है।

भावार्थ— ब्रज एवं रास में हमें परमधाम का कुछ भी

ज्ञान नहीं था, इसलिये इन्हें स्वप्न के समान कहा गया है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला में यद्यपि परमधाम के ज्ञान की चर्चा तो हुई, किन्तु आड़िका लीला के आकर्षण में फँस जाने से सुन्दरसाथ चितवनि की गहराइयों में जाकर परमधाम के प्रत्यक्ष दर्शन से वंचित रह गये। इसलिये इस लीला को भी स्वप्न के समान माना गया।

इसके विपरीत श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में होने वाली लीला में खिलवत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार का ज्ञान अवतरित हो जाने से सबको चितवनि के द्वारा परमधाम के प्रत्यक्ष दर्शन का अवसर प्राप्त हो गया है। इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेने पर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हम परमधाम में ही हैं। केवल इसी लीला में हमें यह बोध हुआ है कि हमारी आत्मा का हृदय ही वह धाम है,

जिसमें युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम का वास है।
व्रज, रास, एवं श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली
लीला में हमारी ऐसी स्थिति नहीं थी।

पेहेले दृष्टें हमारे जो आइया, तेते मिने उजास।

हम खेलें तिन उजासमें, और लोक सब को नास॥७६॥

जब पहली बार हम व्रज में आये, तो केवल वहीं पर
ब्रह्मलीला हुई (उजाला रहा) और बेहद में अभी भी
लीला हो रही है, अर्थात् केवल व्रज मण्डल ही अखण्ड
हो सका, शेष सम्पूर्ण जगत् (सौर मण्डल) का प्रलय हो
गया।

अब लोक चौदे तरफ चारों, प्रकास होसी साथ जोग।

जीव सबको जगाए के, टालूं सो निद्रा रोग॥७७॥

अब चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में चारों ओर सुन्दरसाथ के द्वारा तारतम ज्ञान का प्रकाश होगा। मैं तारतम वाणी के प्रकाश में इस ब्रह्माण्ड के सभी जीवों को जाग्रत करूँगी और उनके अज्ञान रूपी निद्रा रोग को समाप्त करूँगी।

भावार्थ- यथार्थतः सभी जीव योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही जाग्रत होंगे। यहाँ स्वप्न की बुद्धि होने से भिन्न-भिन्न मतों में फँसे हुए जीव सत्य की वास्तविक पहचान नहीं कर पायेंगे।

हम जाहेर होए के चलसी, सब भेले निज घर।

वैराट होसी सनमुख, एक रस सचराचर॥७८॥

हम सब सुन्दरसाथ इस संसार में अपनी पहचान के साथ उजागर होंगे और अक्षर ब्रह्म सहित अपने धाम

जायेंगे। चर-अचर सभी प्राणियों सहित यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बेहद मण्डल की त्रिगुणातीत अवस्था से एकरस होकर अखण्ड होगा।

जब हम जाहेर हुए, सुध होसी संसार।

दुनियां सारी दौड़सी, करने को दीदार॥७९॥

जब हम अपनी पहचान के साथ संसार में उजागर (जाहिर) होंगे (प्रकाश में आयेंगे), उस समय संसार के लोगों को हमारे विषय में पता चलेगा। परिणाम स्वरूप, परमधाम के ब्रह्ममुनियों का दर्शन करने के लिये सारा विश्व दौड़ेगा।

भावार्थ— इस मायावी जगत में अक्षरातीत एवं ब्रह्मसृष्टियाँ आंशिक रूप से ही उजागर होंगे। जब योगमाया के ब्रह्माण्ड में सभी अक्षरातीत एवं ब्रह्मात्माओं

के सम्बन्ध में जान जायेंगे, तब पश्चाताप के आँसुओं के साथ उनका दर्शन करेंगे।

योगमाया के ब्रह्माण्ड में संसार के लोगों को ब्रह्मसृष्टियों एवं अक्षरातीत का दर्शन नहीं होगा, अपितु ब्रह्मसृष्टियों के जीवों द्वारा ब्रह्मसृष्टियों की शोभा धारण कर ली जायेगी। श्री मिहिरराज जी एवं श्री देवचन्द्र जी के जीव श्री राज जी एवं श्यामा जी के रूप में दर्शन देंगे। उस समय संसार के सभी जीवों को अपनी भूल का आभास होगा और वे दर्शन पाकर कृतार्थ होंगे। सनंध ग्रन्थ में इस घटनाक्रम का बहुत ही सुन्दर चित्रण है—

ज्यों ज्यों दुलहा देखहीं, त्यों त्यों उपजे दुख।

ऐसे मौले मेहेबूब सों, हाए हाए हुए नहीं सनमुख॥

एता मासूक पुकारिया, पर तो भी न छूटया फंद।

दंत बीच जुबां काटहीं, हाए हाए हुए बड़े अंध॥

बातां सुनियां दूर से, पर लई न जाए के सुध।
सो गुन अंग इन्द्री जलो, हाए हाए जलो सो बुध॥

सनंध २६/८, १०, १४

हम सदा संग पिया के, जो रूहें सोहागिन।
सो अग्यांऐं उठ बैठसी, सब अपने वतन॥८०॥

हम ब्रह्मसृष्टि परमधाम में सर्वदा प्रियतम के साथ ही रहने वाली हैं। इस खेल के समाप्त हो जाने के पश्चात् उनके आदेश से हम परमधाम में अपने मूल तनों में जाग्रत हो जायेंगी।

अव्वल सब सोहागनी, एक ठौर पिया पास।
सबों सुख होसी सोहागनी, रंग रस प्रेम विलास॥८१॥

सबसे पहले ब्रह्मात्मायें मूल मिलावा में अपने प्रियतम के चरणों में पहुँचेंगी (जाग्रत होंगी), जहाँ सभी सखियों को परमधाम के अनन्त प्रेम और आनन्द के रस से भरी हुई लीलाओं का सुख प्राप्त होगा।

जो जोत होसी जागनी, ए नूर बिना हिसाब।

लोक चौदे पसरसी, तब उड़ जासी ए ख्वाब॥८२॥

जब जागनी लीला की ज्योति चौदह लोक में फैल जायेगी, तो यह स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार से इस लीला की गरिमा अपार होगी।

भावार्थ— जिस प्रकार सूर्य के उगे रहने पर भी आधी पृथ्वी, गुफाओं, एवं बन्द कक्षों में अन्धेरा ही रहता है, उसी प्रकार इस पृथ्वी लोक के सभी मनुष्य एवं सूक्ष्म लोकों में भ्रमण करने वाले सभी सिद्ध पुरुष निजानन्द

दर्शन की मान्यताओं को योगमाया में गये बिना पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करेंगे। धाम धनी द्वारा निश्चित समयावधि तक तारतम ज्ञान की ज्योति फैलाने के पश्चात् यह जागनी लीला समाप्त हो जायेगी तथा यह ब्रह्माण्ड बेहद मण्डल में अखण्ड हो जायेगा।

उपरोक्त चौपाई के दूसरे चरण में "नूर" शब्द का तात्पर्य गरिमा (प्रकाश) से है।

ए बानी तो करुं जाहेर, जो करना सबों एक रस।

वस्तु देखाए बिना, वैराट न होवे बस॥८३॥

मुझे इस तारतम वाणी का प्रकाश सर्वत्र फैलाना है क्योंकि संसार के सभी प्राणियों को एकरस करना है, अर्थात् एक अक्षरातीत के प्रति अटूट विश्वास पैदा करना है। सच्चिदानन्द अक्षरातीत की पहचान कराये बिना इस

संसार के लोग सत्य में स्थित नहीं होंगे।

भावार्थ- ब्रह्माण्ड को वश में करने का अर्थ है – संसार के लोगों को उस शाश्वत सत्य का बोध कराना जिससे वे जन्म-मरण के बन्धन से छूट सकें। सत्य को जानकर उसके अनुकूल आचरण करने वाला व्यक्ति सत्य के वशीभूत ही रहता है।

वैराट बस किए बिना, क्यों कर होए अखंड।

हम खेल देख्या इछाए कर, सो भंग ना होए ब्रह्मांड॥८४॥

जब तक इस संसार के लोग एक परब्रह्म के प्रति आस्थावान नहीं होंगे, तब तक वे अखण्ड मुक्ति का अधिकार कैसे पा सकते हैं। हमने इस ब्रह्माण्ड को अपनी इच्छा से देखा है, इसलिये यह अखण्ड अवश्य होगा।

अनेक आगे होएसी, इन बानी को विस्तार।

ए नेक कहया मैं करने, अखंड ए संसार॥८५॥

भविष्य में मेरे धाम हृदय से इस तारतम वाणी का अनेक ग्रन्थों के रूप में अवतरण (विस्तार) होगा। इस संसार की अखण्ड मुक्ति के सम्बन्ध में मैंने यहाँ थोड़ी सी बातें बतायी हैं।

ए बानी कही मैं जाहेर, सो विस्तरसी विवेक।

मैं गुझ कही है साथ को, पर सो है अति विसेक॥८६॥

मैंने इस तारतम वाणी को सबके लिये प्रत्यक्ष रूप से कहा है। यह सभी लोगों की अपनी विवेकशील बुद्धि में विस्तृत (ग्राह्य) होगी। यद्यपि मैंने सुन्दरसाथ से जागनी के सम्बन्ध में कुछ थोड़ी सी गोपनीय बातें ही कही हैं, किन्तु वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

संसार सब के अंग में, मेरी बुध को करुं प्रवेस।

असत सब होसी सत, मेरे नूर के आवेस॥८७॥

इस संसार के सभी लोगों के हृदय में मैं जाग्रत बुद्धि को प्रविष्ट कराऊँगा। मेरे तारतम ज्ञान के प्रकाश में आने से यह नश्वर जगत भी अखण्ड हो जायेगा।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण में कथित "नूर के आवेस" का तात्पर्य तारतम ज्ञान के प्रकाश से है। यहाँ आवेश को मूल स्वरूप श्री राज जी का लीला करने वाला आवेश स्वरूप नहीं मानना चाहिए। वस्तुतः आवेश वह पदार्थ है, जिसमें लक्षित द्रव्य उसके तदोगत (समान) हो जाता है, जैसे— भावावेश, प्रेमावेश, क्रोधावेश, ज्ञानावेश। इसी प्रकार अक्षरातीत का आवेश जिसके भी धाम हृदय में विराजमान होगा, उसे (लीला के समय तक) अपना ही स्वरूप बना लेगा।

बुध मूल अछर की, आई हमारे पास।

जोगमाया को ब्रह्मांड, तिन हिरदे था रास॥८८॥

अक्षर ब्रह्म की मूल जाग्रत बुद्धि मेरे धाम हृदय में आकर विद्यमान हो गयी है। योगमाया के ब्रह्माण्ड में होने वाली रास लीला को इसने अक्षर ब्रह्म के हृदय (सबलिक के महाकारण) में अखण्ड कर लिया था।

ए हुती पिया चरने, दिन एते गोप।

वचन कोई कोई सत उठे, सोए करुं क्यों लोप॥८९॥

आज दिन तक यह जाग्रत बुद्धि मेरे धाम हृदय में विराजमान प्रियतम अक्षरातीत के चरणों में गुप्त रूप से विद्यमान थी। संसार के संशयात्मक ज्ञान के बीच किसी-किसी (पञ्चवासनाओं आदि) का कथन अखण्ड बेहद के सम्बन्ध में भी होता रहा है, उसे मैं क्यों

छिपाऊँ।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनायें अखण्ड धाम का संक्षिप्त वर्णन करती हैं, जिसका विवरण इसी प्रकरण की चौपाई ९३ से ९६ में दिया गया है।

बृज रास में हम रमे, बुध हती रास में रंग।

अब आए जाहेर हुई, इत उदर मेरे संग॥९०॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड से पूर्व हमने ब्रज-रास में लीला की थी। आनन्दमयी रास लीला में अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि भी हमारे साथ थी। अब इस जागनी लीला में यह मेरे धाम हृदय में विराजमान धनी के चरणों में आ गयी है, जिससे संसार में इसका आना उजागर हो गया है।

इंद्रावती पिया संगे, उदर फल उत्पन।

एक निज बुध अवतरी, दूजा नूर तारतम॥९१॥

श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में प्रियतम अक्षरातीत के विराजमान होने से दो वस्तुएँ प्रकट हुईं— निज बुद्धि और नूर तारतम अर्थात् तारतम ज्ञान का प्रकाश (वाणी का अवतरण)।

दोऊ सरूप प्रगटे, लई मिनों मिने बाथ।

एक तारतम दूजी बुध, देखसी सनमुख साथ॥९२॥

मेरे हृदय में प्रकट होने वाले इन दोनों स्वरूपों— तारतम ज्ञान और निज बुद्धि— ने आपस में एक दूसरे का आलिंगन किया, अर्थात् जागनी कार्य के लिये दोनों एक स्वरूप हो गये। अब इस तारतम ज्ञान तथा अक्षर ब्रह्म की निज बुद्धि के संयोग से फैलने वाली जागनी लीला

को सब सुन्दरसाथ देखेंगे।

भावार्थ- ज्ञान के ग्रहण करने या देने में बुद्धि ही साधन है। इस प्रकार जागनी लीला में दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसी को आलंकारिक रूप में आलिंगनबद्ध होना कहा गया है। अक्षर ब्रह्म की निज बुद्धि अलग है, जो जाग्रत तो है किन्तु परमधाम की खिलवत को नहीं जानती थी। अक्षरातीत की निज बुद्धि परमधाम की है, जो श्यामा जी एवं सखियों में है।

अछर केरी वासना, कहे जो पांच रतन।

कागद ल्याया बेहद का, सुकदेव मुनी धन धन॥९३॥

अक्षर ब्रह्म की पाँच सुरतायें हैं, जिन्हें इस ब्रह्माण्ड के पाँच रत्न कहा जाता है। इसमें सर्वप्रथम नाम शुकदेव मुनि का है। महारास के रूप में बेहद का ज्ञान लाने वाले

ये मुनि धन्य-धन्य हैं।

विष्णु मन खेल ले खड़ा, पकड़ के दोऊ पार।

भली भांत भेले विष्णु के, सनकादिक थंभ चार॥९४॥

आदिनारायण (महाविष्णु) के मानसिक संकल्प से उत्पन्न होने वाले भगवान विष्णु इस ब्रह्माण्ड के दोनों छोरों, अर्थात् पाताल से वैकुण्ठ तक, का संचालन कर रहे हैं। उनके साथ ज्ञान के चार स्तम्भ रूपी सनक, सनन्दन, सनातन, तथा सनत्कुमार भी हैं।

भावार्थ- "यामें महाविष्णु मन मन थे त्रैगुन", प्रकास हिन्दुस्तानी (प्रकटवाणी) के इस कथन के अनुसार महाविष्णु अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत के स्वाप्निक स्वरूप सिद्ध होते हैं। आदिनारायण (महाविष्णु) के मानसिक संकल्प से ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिवादि का

प्रकटन हुआ है, इसलिये उपरोक्त चौपाई में विष्णु को मन रूप कहा गया है। पृथ्वी पर सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाली सांकल्पिक सृष्टि में भगवान विष्णु प्रमुख हैं। इसलिये अतिशयोक्ति अलंकार की भाषा में उन्हें ब्रह्माण्ड का नायक या संचालक आदि विशेषणों से सम्बोधित किया गया है। यह वैसे ही है, जैसे सामान्य राजाओं को भी पूर्वकाल में भूपति, पृथ्वीपति, महीधर, भूधर आदि विशेषणात्मक शब्दों से सम्बोधित किया जाता था।

ब्रह्माण्ड के ऊपर आदिनारायण तथा नीचे पाताल में शेषशायी नारायण की मान्यता पौराणिक है और वैदिक मान्यता के विपरीत है। शेष का अर्थ शून्य होता है। शून्य (मोह सागर) में शयन करने वाला ही शेषशायी या आदिनारायण है। सातों समुद्रों के निकटवर्ती भूभाग ही सात पाताल लोक हैं। उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है

कि एक ही आदिनारायण इस अनन्त सृष्टि के संचालक हैं, जिसमें पृथ्वी लोक जैसे करोड़ों लोक हैं। इस पृथ्वी लोक में ही विष्णु भगवान का प्रकटन माना जा सकता है, तभी सुमेरु पर्वत पर लक्ष्मी जी के तप की बात सिद्ध हो सकती है। उनके समकक्ष ब्रह्मा एवं शिव जी का प्रकटन भी पृथ्वी लोक में ही माना गया है। मारिफत सागर ३/५३ के इस कथन से भी महाविष्णु एवं विष्णु में भेद सिद्ध होता है—

एक इनसे बड़े कहे, ऐसे जाएं जाकी नाक में।

तो भी उने सुध ना पड़े, अंदर फिरके मोह निकसें॥

महादेवजीएँ बृज लीला, ग्रहयो अखंड ब्रह्मांड।

अछर चित सदासिव, ए यों कहावे अखंड॥९५॥

अक्षर ब्रह्म के चित्त सबलिक (सदाशिव चेतन) के

कारण में ब्रज लीला अखण्ड रूप से हो रही है। ब्रज के उस अखण्ड ब्रह्माण्ड की लीला को भगवान शिव ने ध्यान द्वारा अपने हृदय में ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार ये भी अखण्ड बेहद का ज्ञान देते हैं।

कबीर साख जो पूरने, ल्याया सो वचन विलास।

प्रगट पांचो ए भए, दूजे सागर आड़ी पाल॥९६॥

अक्षरातीत की पहचान-सम्बन्धी साक्षी देने के लिये कबीर जी ने अखण्ड धाम की बहुत सी बातें कहीं। इस प्रकार बेहद का ज्ञान लेकर पाँचों सुरतायें संसार में प्रकट हुईं। संसार के अन्य जीवों के लिये यह मोह सागर दीवार की तरह बाधक बन गया।

हम बुध नूर प्रकास के, जासी हमारे घर।

बैकुंठ विष्णु जगावसी, बुध देसी सारी खबर॥९७॥

हम सब सुन्दरसाथ जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान का प्रकाश संसार में फैलाकर अपने मूल घर परमधाम चले जायेंगे। जाग्रत बुद्धि वैकुण्ठ में भगवान विष्णु को परमधाम, अक्षरातीत, तथा ब्रह्मसृष्टियों की पहचान देकर जाग्रत करेगी।

खबर देसी भली भांतें, विष्णु जागसी तत्काल।

तब आवसी नींद इन नैनों, प्रलेय होसी पंपाल॥९८॥

जैसे ही जाग्रत बुद्धि भगवान विष्णु को बेहद तथा परमधाम का ज्ञान देगी, वे तुरन्त जाग्रत हो जायेंगे। इसके पश्चात् संसार के सभी जीवों के बाह्य नेत्रों में नींद आ जायेगी और उसी क्षण प्रलय हो जायेगा।

भावार्थ- जब अन्तःचक्षुओं (अन्तर्दृष्टि) में नींद होती है, तो बाहर की आँखें खुली होती हैं और संसार में भटकती रहती हैं। किन्तु जब ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से अन्तःचक्षु खुल जाते हैं, तो बाह्य चक्षु बन्द हो जाते हैं, जिससे संसार का दृश्य समाप्त हो जाता है। विष्णु भगवान को अखण्ड का ज्ञान मिलते ही अन्य सभी को वह ज्ञान प्राप्त हो जायेगा, जिससे सबका ध्यान संसार से हटकर परब्रह्म की ओर केन्द्रित हो जायेगा और प्रलय हो जायेगा।

अछर खेल इछाए कर, छर रच के उड़ात।

वासना पांचों पोंहोंचे इत, ए सत मंडल साख्यात॥१९॥

अक्षर ब्रह्म अपनी इच्छा मात्र से क्रीड़ा में क्षर जगत की रचना करते हैं और पुनः उसका लय कर देते हैं। बेहद

मण्डल अक्षर ब्रह्म की साक्षात् लीला भूमि है , जो अखण्ड है। अक्षर ब्रह्म की पाँचों सुरतायें यहीं पर पहुँची हैं।

पांचो बुध ले वले पीछे, तामें बुध विसेक विचार।

अछर आंखां खोलसी, होसी हरख अपार॥१००॥

अक्षर ब्रह्म की पाँचों सुरतायें जाग्रत बुद्धि का ज्ञान ग्रहण कर पुनः अपने धाम (बेहद मण्डल) पहुँचेंगी। वहाँ वे जाग्रत बुद्धि के द्वारा विशेष रूप से विचार-विमर्श करेंगी। अक्षर ब्रह्म अपनी आँखे खोलेंगे अर्थात् वे अपनी परात्म में जाग्रत हो जायेंगे, तो सबके हृदय में अपार आनन्द पैदा हो जायेगा।

लीला तीनों थिर होएसी, अखंड इन प्रकार।

निमख एक ना विसरसी, रहेसी दिल में सार॥१०१॥

इस प्रकार ब्रज, रास, तथा जागनी की ये तीनों लीलायें अक्षर ब्रह्म के हृदय "बेहद मण्डल" में अखण्ड हो जायेंगी। वे एक क्षण के लिये भी इस लीलाओं को नहीं भूलेंगी तथा इनका सार तत्व भी हमेशा इनके हृदय में बना रहेगा।

उत्तम भी कहूं इनमें, जहां तारतम को विस्तार।

वासना पांचों बुध ले, साख पूरसी संसार॥१०२॥

इन तीनों लीलाओं में जागनी की लीला सर्वोत्तम है, जिसमें तारतम वाणी का फैलाव होने से प्रियतम अक्षरातीत की पूर्ण पहचान हो सकी है। अक्षर ब्रह्म की पाँचों सुरतायें जाग्रत बुद्धि के इस ज्ञान को ग्रहण कर

योगमाया के ब्रह्माण्ड में जायेंगी तथा संसार को इस बात की साक्षी देंगी कि तारतम ज्ञान को लेकर स्वयं परब्रह्म ही इस नश्वर जगत में आये थे।

मेरी संगते ऐसी सुधरी, बुध बड़ी हुई अच्छर।

तारतमें सब सुध परी, लीला अंदर की घर॥१०३॥

मेरी सान्निध्यता (निकटता) पाने से अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि की गरिमा बहुत अधिक बढ़ गयी। तारतम ज्ञान के द्वारा अब जाग्रत बुद्धि को परमधाम में होने वाली अष्ट प्रहर की सम्पूर्ण लीला का भी ज्ञान हो गया है।

मेरे गुन अंग सब खड़ें होसी, अरचासी आकार।

बुध वासना जगावसी, तिन याद होसी संसार॥१०४॥

अन्तःकरण एवं इन्द्रियों से युक्त मेरा यह त्रिगुणात्मक

शरीर भी सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में अखण्ड होगा, जहाँ इसे परब्रह्म का स्वरूप मानकर पूजा जायेगा अर्थात् सर्वोच्च श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जायेगा। जाग्रत बुद्धि अक्षर ब्रह्म की वासनाओं (सुरताओं) को भी जाग्रत करेगी, जिससे उन्हें भी इस संसार में होने वाली जागनी लीला की याद बनी रहेगी।

भावार्थ- श्री महामति जी की आत्मा के द्वारा धारण किया गया श्री मिहिरराज जी का वयोवृद्ध तन अन्तर्धान लीला के समय ७५ वर्ष का था। ऐसा नहीं मानना चाहिये कि यह वयोवृद्ध तन ही अक्षरातीत के रूप में सबका पूज्य बनेगा। वस्तुतः वहाँ सभी किशोर हैं। श्री मिहिरराज जी एवं श्री देवचन्द्र जी के जीव युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के किशोर स्वरूप के समान ही रूप धारण करेंगे। सभी अन्य बहिश्तों वाले भी इन्हीं को अक्षरातीत

का युगल स्वरूप मानेंगे। उपरोक्त चौपाई के प्रथम चरण का यही भाव है।

बुध तारतम लेयके, पसरसी वैराट के अंग।

अछर हिरदे या बिध, अधिक चढ़सी रंग॥१०५॥

तारतम ज्ञान का प्रकाश लेकर जाग्रत बुद्धि इस ब्रह्माण्ड के सभी जीवों के हृदय में विद्यमान हो जायेगी। इस प्रकार अक्षर ब्रह्म के हृदय (बेहद मण्डल) में सभी जीवों के अखण्ड हो जाने से वहाँ के आनन्द में और अधिक वृद्धि हो जायेगी।

प्रकरण ॥२३॥ चौपाई ॥७२४॥

इस प्रकरण में तीन ब्रह्माण्ड एवं श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप के सम्बन्ध में दर्शाया गया है।

निज बुध भेली नूर में, अग्या मिने अंकूर।

दया सागर जोस का, किन रहे न पकरयो पूर॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि मेरे हृदय में निज बुद्धि तारतम ज्ञान में मिल गयी तथा मेरे अन्दर जागनी के लिये धाम धनी का आदेश (हुक्म) भी आ गया, दया के सागर अक्षरातीत का जोश भी संयुक्त हो गया, जिससे अब तारतम वाणी का प्रवाह (अवतरण) इतनी तीव्र गति से हो रहा है कि उसे किसी भी प्रकार से पकड़ा (रोका) नहीं जा सकता।

ए लीला है अति बड़ी, आई या इंड मांहे।

कई हुए कई होएसी, पर किन ब्रह्मांडों नांहे॥२॥

ब्रह्मवाणी के अवतरण तथा ब्रह्मात्माओं की जागनी की यह लीला बहुत अधिक गरिमामयी है। यह केवल इसी ब्रह्माण्ड में हो रही है। इसके पहले असंख्य ब्रह्माण्ड बन चुके हैं और भविष्य में भी बनते रहेंगे, किन्तु किसी भी ब्रह्माण्ड में ऐसी लीला न तो हुई है और न ही कभी होगी।

ए अगम अकथ अलख, सो जाहेर करें हम।

पर नेक नेक प्रकासहीं, जिन सेहे न सको तुम॥३॥

अक्षरातीत और ब्रह्मसृष्टियों की यह लीला मन-वाणी की पहुँच से परे है। इसे न तो शब्दों से कहा जा सकता है और न मानवीय बुद्धि से जाना जा सकता है। फिर भी

धाम धनी के आदेश से मैं इसे संसार में प्रकट कर रही हूँ। किन्तु बहुत थोड़ा-थोड़ा ही उजागर कर रही हूँ, जिससे आप इसे आत्मसात् कर सकें। लीला का अचानक अधिक ज्ञान आपसे सहन नहीं हो सकता।

जो कबूँ कानो ना सुनी, सो सुनते जीव उरझाए।

ताथें डरती मैं कहूँ, जानूँ जिन कोई गोते खाए॥४॥

जिस अनुपम लीला को आज दिन तक इस संसार में किसी ने भी अपने कानों से नहीं सुना, उसे सुनते ही जीव संशय में पड़ जाता है। इसलिये आपसे अधिक कहने में मुझे यह भय रहता है कि कहीं कोई सुन्दरसाथ भी विश्वास न छोड़ बैठे (संशय में न डूब जाये)।

भावार्थ- त्रिगुणातीत प्रेममयी लीला के सम्बन्ध में राजा परीक्षित भी संशय में पड़ गये थे। परमधाम के अनन्य

प्रेम में लौकिक मर्यादाओं के उल्लंघन की कल्पना से जीव में संशय का होना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि उपरोक्त चौपाई में ब्रह्मलीला का थोड़ा-थोड़ा ही वर्णन करने की सीख दी गयी है।

नातो सब जाहेर करूं, नाहीं तुम सों अंतर।

खेंच खेंच तो केहेती हूं, सो तुमारी खातिर॥५॥

अन्यथा मैं एक साथ ही सब कुछ कह देती। आपसे किसी भी तरह का भेद नहीं है। केवल आपको विश्वास दिलाने के लिये ही मैं थोड़ा-थोड़ा बता रही हूँ।

भावार्थ- यद्यपि कलश हिन्दुस्तानी ग्रन्थ में परमधाम की लीला का कोई विस्तृत वर्णन नहीं है, केवल २४/३८ में सांक्षिप्त सा वर्णन है। इससे पूर्व अवतरित होने वाले सनंध ग्रन्थ के प्रकरण ३९ में थोड़ी सी झलक

दी गयी है। कहीं-कहीं कीर्तन ग्रन्थ में भी झलक है। खुलासा ग्रन्थ के अन्तिम प्रकरण (१८) के "रुहें बेनियाज थी" में लीला की भूमिका बाँधी गयी है। खिलवत में लीला रूपी महल की दीवार तैयार हो जाती है। परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार में शोभा और लीला का सागर ही प्रवाहित होने लगता है। कीर्तन एवं खुलासा ग्रन्थ सभी संशयों को समाप्त कर लीला को ग्रहण करने की पात्रता बनाने के लिये हैं।

तुम दुख पाया मुझे सालहीं, अब सुख सब तुम हस्तक।
दिया तुमारा पावहीं, दुनियां चौदे तबक॥६॥

हे साथ जी! इस मायावी जगत में आपको जो भी कष्ट हुआ है, उससे मैं बहुत अधिक व्यथित हूँ। अब मैं आपको परमधाम का सम्पूर्ण सुख दे रही हूँ। चौदह लोक

का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपके ही हाथों से अखण्ड मुक्ति को प्राप्त करेगा।

अजूं केहेती सकुचों, पर बोहोत बड़ी है बात।

सोभा पाई तुम यार्थें बड़ी, जो पिया वतन साख्यात॥७॥

यद्यपि परमधाम की लीला का वर्णन करने में मुझे अभी भी संकोच हो रहा है, किन्तु इसे प्रकट करना बहुत ही महत्वपूर्ण है। आप साक्षात् अक्षरातीत के परमधाम के रहने वाले हैं, इसलिये आपने इस ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति देने की इतनी बड़ी शोभा पाई है।

इंड अखंड भी जाहेर, किए जागनी जोत।

अब सुन्य फोड़ आगे चली, जहां थें इंड पैदा होत॥८॥

इस जागनी लीला में मैंने तारतम ज्ञान के उजाले में ब्रज

लीला के अखण्ड होने का वर्णन किया है। अब मैं निराकार को पार कर उस बेहद मण्डल का वर्णन करने जा रही हूँ, जहाँ से इस नश्वर जगत के ब्रह्माण्ड पैदा हुआ करते हैं।

सोभा इन मंडल की, क्यों कर कहूँ वचन।

सो बुध नूर जाहेर करी, जो कबूँ सुनी न कही किन॥९॥

बेहद मण्डल की अनुपम शोभा का वर्णन मैं इस संसार के शब्दों से किस प्रकार करूँ? जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान ने उस योगमाया की शोभा का वर्णन किया है, जिसके विषय में आज दिन तक न तो किसी ने कहा है और न किसी ने सुना है।

रास बरनन भी ना हुआ, तो अछर बरनन क्यों होए।

कही न जाए हद में, पर तो भी कहूं नेक सोए॥१०॥

आज दिन तक इस संसार में किसी से भी जब महारास का ही वर्णन नहीं हो सका है, तो अक्षर ब्रह्म का वर्णन कैसे हो सकता है? यद्यपि इस संसार में बेहद की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता, फिर भी मैं थोड़ा सा कहती हूँ।

जोगमाया तो माया कही, पर नेक न माया इत।

ख्वाबी दम सत होवहीं, सो अछर की बरकत॥११॥

योगमाया को तो माया (अखण्ड) कह भी देते हैं, किन्तु परमधाम में विद्यमान अक्षर धाम में नाम मात्र भी माया नहीं है। अक्षर ब्रह्म की कृपा से स्वाप्निक जीव भी योगमाया के ब्रह्माण्ड में अखण्ड हो जायेंगे।

भावार्थ- कालमाया स्वाप्निक एवं नश्वर है, जबकि योगमाया अनादि और अखण्ड है। परमधाम स्वलीला अद्वैत है। अक्षरधाम इसी के अन्तर्गत आता है, इसलिये अक्षरधाम या परमधाम में किसी भी स्थिति में माया शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

तार्थे कालमाया जोगमाया, दोऊ पल में कई उपजत।

नास करे कई पल में, या चित्त थिर थापत॥१२॥

अक्षर ब्रह्म अपने एक पल में कालमाया तथा योगमाया के अनेक ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति कर सकते हैं। वे एक ही पल में कालमाया के अनेक ब्रह्माण्डों का प्रलय भी करते हैं या जाग्रत अवस्था में उसे अपने चित्त में लेकर अखण्ड भी कर सकते हैं।

इस प्रसंग में जिस योगमाया का वर्णन है, वह केवल

ब्रह्म की अनादि शक्ति आनन्द योगमाया है, जिसके द्वारा नित्य वृन्दावन की रचना हुई। "आनन्दकारी जोगमाया, अविनाशी उत्पन्न" (कलस हिन्दुस्तानी २०/१०) का कथन इसी सन्दर्भ में है। अव्याकृत से लेकर सत्स्वरूप तक का मण्डल अनादि है। इसकी उत्पत्ति या लय नहीं हो सकता। कालमाया का ब्रह्माण्ड अक्षर ब्रह्म के चित्त की जाग्रत अवस्था में ही अखण्ड हो सकता है, जबकि योगमाया के ब्रह्माण्ड में बनी हुई कोई भी वस्तु प्रलय को प्राप्त नहीं हो सकती।

तहां एक पलक न होवहीं, इत कई कल्प वितीत।

कई इंड उपजे होए फना, ऐसे पल में इन रीत॥१३॥

अक्षरधाम में अक्षर ब्रह्म का एक पल भी नहीं बीता होता है, जबकि इस कालमाया में कई कल्प बीत गये होते हैं।

इस प्रकार अक्षर ब्रह्म के एक पल में अनेक ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं तथा लय हो जाते हैं।

जागते ब्रह्मांड उपजे, पाव पल में अनेक।

सो देखे सब इत थें, बिध बिध के विवेक॥१४॥

अक्षर ब्रह्म की जाग्रत अवस्था में उनके आदेश मात्र से चौथाई पल में अनेक ब्रह्माण्ड उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार जागनी लीला में हमने तारतम ज्ञान के उजाले में ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति के अनेक रहस्यों को विवेकपूर्वक देखा है।

भावार्थ— "कोट ब्रह्माण्ड नजरों में आवें, खिन में देख के पल में उड़ावें।" परिक्रमा के इस कथन से स्पष्ट है कि मूल अक्षर ब्रह्म अपनी जाग्रत अवस्था में ही ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति का आदेश देते हैं, नींद या स्वप्नावस्था में नहीं।

जहाँ कहीं भी नींद में स्वप्न देखने का वर्णन है , वह अक्षर के मन स्वरूप अव्याकृत (महाकारण में स्थित सुमंगला पुरुष) के लिये है। अक्षर धाम में नींद का प्रवेश नहीं हो सकता। सुमंगला शक्ति के द्वारा जिस मोह सागर की उत्पत्ति होती है, उसी मोह सागर में अव्याकृत की दृष्टि संकल्प रूप से जाती है, इसे ही नींद में स्वप्न देखना कहते हैं। इसी प्रकार परमधाम में भी नींद या मोह का प्रवेश नहीं है, किन्तु सखियाँ अपनी सुरता द्वारा खेल को देख रही हैं।

ए लीला है अति बड़ी, दृष्टे उपजे ब्रह्मांड।

ए खेल खेले नित नए, याकी इच्छा है अखंड॥१५॥

अक्षर ब्रह्म की यह लीला बहुत ही गरिमामयी है। उनकी दृष्टि मात्र से पल भर में अनेक ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती

रहती है। ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति और लय करने की उनकी इच्छा अखण्ड है और वे नित्य ही इस प्रकार की क्रीड़ा करते रहते हैं।

ए मंडल है सदा, जाए कहिए अछर।

जाहेर इत थें देखिए, मिने बाहेर थें अंतर॥१६॥

परमधाम में स्थित अक्षरधाम कहा जाने वाला यह मण्डल सदा ही अखण्ड है। हे साथ जी! आप तारतम ज्ञान के उजाले में यहीं बैठे-बैठे प्रत्यक्ष देखिये कि बाह्य और आन्तरिक रूप से किस प्रकार ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है।

भावार्थ- मोह सागर में आदिनारायण का प्रकट होना तथा सृष्टि बनना बाह्य रूप से है। अक्षर ब्रह्म के आदेश से सुमंगला शक्ति के द्वारा मोह सागर की उत्पत्ति करना

और उसमें अव्याकृत (महाकारण स्वरूप) का संकल्प मात्र से प्रवेश करके स्वयं को आदिनारायण के रूप में देखना आन्तरिक रूप से है।

उतपन देखी इंड की, न अंतर रत्ती रेख।

सत वासना असत जीव, सब विध कही विवेक॥१७॥

मैंने इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की प्रक्रिया देखी है, जिसमें शून्य-निराकार से असंख्य लोक बन जाते हैं। इस सम्बन्ध में आपसे रत्ती भर भी छिपाकर कुछ भी नहीं रखा है। धाम धनी ने तारतम वाणी के द्वारा यही दर्शाया है कि आत्मा सत्य है, जबकि जीव स्वाप्निक है।

मोह उपज्यो इतथें, जो सुन्य निराकार।

पल मीच ब्रह्मांड किया, कारज कारन सार॥१८॥

अक्षर ब्रह्म के द्वारा सृष्टि रचना का आदेश होने पर उनके मन स्वरूप अव्याकृत (महाकारण में स्थित सुमंगला शक्ति) के द्वारा मोहतत्व की उत्पत्ति होती है, जिसे शून्य या निराकार कहते हैं। ब्रह्मसृष्टियों के मन में माया का खेल देखने की जो इच्छा थी, उसे पूर्ण करने के लिये श्री राज जी के आदेश से पलक झपकते ही अक्षर ब्रह्म ने इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कर दी।

मोह अग्यान भरमना, कर्म काल और सुंन।

ए नाम सारे नींद के, निराकार निरगुन॥१९॥

मोह, अज्ञान, भ्रम, कर्म, काल, शून्य, निराकार, और निर्गुण— ये सभी शब्द नींद के ही पर्यायवाची हैं।

भावार्थ— सृष्टि में सर्वप्रथम प्रकृति का सूक्ष्मतम स्वरूप मोहतत्व उत्पन्न हुआ। शून्य, निराकार, और निर्गुण

इसके स्वरूप को दर्शाते हैं। अज्ञान, काल, एवं भ्रम इसके गुणों को दर्शाते हैं तथा कर्म क्रिया को दर्शाता है। यद्यपि दार्शनिक दृष्टि से कर्म को मोहतत्व नहीं कह सकते, क्योंकि मोह (अज्ञान) के कारण ही तृष्णा उत्पन्न होती है, जिसके वशीभूत होकर जीव कर्म करता है। इस मोहमयी ब्रह्माण्ड में आत्म-दर्शन से रहित कोई भी मनुष्य कर्म (लौकिक) से रहित नहीं हो सकता। इस प्रकार भावात्मक रूप से मोहमयी ब्रह्माण्ड को कर्ममयी मानकर एक समान तो सिद्ध कर सकते हैं, किन्तु तात्त्विक दृष्टि से नहीं।

मन पोहोंचे इतलो, बुध तुरिया वचन।

उनमान आगे केहेके, फेर पड़े मांहे सुन॥२०॥

मन, बुद्धि, चित्त, तथा वाणी (शब्द) की पहुँच मोहतत्व

(निराकार) तक ही होती है। संसार के ज्ञानीजन अनुमान से ब्रह्म के स्वरूप का निर्धारण करते हैं और विवश होकर प्रकृति (मोहतत्व) के निराकार स्वरूप को ही ब्रह्म का स्वरूप मान लेते हैं।

भावार्थ— सम्प्रज्ञात समाधि की तुरीयावस्था में चित्त के संस्कार बने रहते हैं, इसलिये यहाँ तुरीय अवस्था को चित्त भी कह दिया गया है।

जो जीव होसी सुपन के, सो क्यों उलंघे सुन।

वासना सुन्य उलंघ के, जाए पोहोंचें अछर वतन॥२१॥

जो स्वप्न के जीव होते हैं, वे भला शून्य-निराकार को कैसे पार कर सकते हैं। एकमात्र परमधाम की आत्मायें ही निराकार को पार करके अक्षर धाम से भी परे परमधाम में पहुँचती हैं।

ए सबे तुम समझियो, वासना जीव विगत।

झूठा जीव नींद न उलंघे, नींद उलंघे वासना सत॥२२॥

हे साथ जी! परमधाम की आत्मा और जीव की वास्तविकता को इस प्रकार से समझिए। मिथ्या (स्वाप्निक) जीव निराकार (नींद) को पार नहीं कर पाता। एकमात्र अखण्ड आत्मा ही निराकार को पार करके निजधाम पहुँचती है।

सुपने नगरी देखिए, तिन सब में एक रस।

आपै होवे सब में, पांचो तत्व दसो दिस॥२३॥

यदि आप इस स्वप्नमयी नगर रूपी ब्रह्माण्ड को देखिये, तो दसों दिशाओं में रहने वाले पाँच तत्व के सभी प्राणियों में अनिवार्य रूप से अपने समान ही चेतना का अनुभव होता है। इस दृष्टि से सभी समान होते हैं।

तिनमें भी दोए भांत है, एक वासना दूजे जीव।

संसा न राखूं किनका, मैं सब जाहेर कीव।।२४।।

इन शरीरों में भी दो प्रकार की चेतना है – एक आत्मा तथा दूसरा जीव। इस सम्बन्ध में मैं किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहने देना चाहती और सब कुछ स्पष्ट कर देना चाहती हूँ।

देखो सुपनमें कई लड़ मरें, सबे आपे पर ना दुखात।

जब देखें मारते आपको, तब उठे अंग धुजात।।२५।।

देखिये! जब कोई स्वप्न में दूसरों को लड़कर मरते हुए देखता है, तो उसे कुछ भी दुःख नहीं होता। किन्तु जब वही व्यक्ति स्वप्न में ऐसा देखता है कि कोई उसे मार रहा है, तो वह चौंककर उठ जाता है।

भावार्थ- इस दृष्टान्त में स्वप्न का द्रष्टा आत्मा है तथा

जो स्वप्न में मात्र प्रतीत होते हैं, वे स्वप्निक जीव होते हैं।

वासना उत्पन्न अंग थे, जीव नींद की उत्पत्ति।

कोई ना छोड़े घर अपना, या बिध सत असत॥२६॥

आत्मा का प्रकटन परात्म से हुआ है, जबकि जीव की उत्पत्ति नींद (मोह सागर) से हुई है। कोई भी अपने मूल घर को नहीं छोड़ता, अर्थात् आत्मा परमधाम जाती है तथा जीव निराकार में लीन होता है। इस प्रकार आत्मा सत्य है तथा जीव मिथ्या है।

ब्रह्मांड चौदे तबक, सब सत का सुपन।

इन दृष्टांतें समझियो, विचारो वासना मन॥२७॥

इस प्रकार चौदह लोकों का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अक्षर

ब्रह्म के मन का स्वप्न है। आप इस दृष्टान्त से अपने मन में आत्मा एवं जीव के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार कीजिए।

सुपन सत सरूप को, तुम कहोगे क्यों कर होए।

ए बिध सब जाहेर करूं, ज्यों रहे न धोखा कोए॥२८॥

आप यह बात कह सकते हैं कि अक्षर ब्रह्म तो अक्षरातीत के सत्य स्वरूप हैं, भला उन्हें मिथ्या स्वप्न कैसे आ सकता है? इस सम्बन्ध में मैं वास्तविक सत्य को उजागर करती हूँ, जिससे किसी के मन में कोई भी संशय न रह जाये।

एक तीर खेंच के छोड़िए, तिन बेधाए कई पात।

सो पात सब एक चोटें, पाव पल में बेधात॥२९॥

जब किसी वृक्ष के ऊपर कोई तीर छोड़ा जाता है, तो वह कई पत्तों को छेद डालता है, और ये सभी पत्ते चौथाई पल में ही तीर के द्वारा छेद दिये जाते हैं।

पर पेहेले पात एक बेध के, तो दूजा बेधाए।

यामें सुपन कई उपजें, बेर एती भी कही न जाए॥३०॥

किन्तु पहले एक पत्ते को छेदकर दूसरे पत्ते को छेदने में जितना समय लगता है, उससे भी कम समय में अक्षर ब्रह्म के कई स्वप्न पूरे हो जाते हैं। इतना भी समय नहीं लगता है।

तो बेर एक की कहा कहूं, इत हुआ कहां सुपन।

पर सत ठौर का असत में, दृष्टांत नहीं कोई अन॥३१॥

जब इतने कम समय में कई स्वप्न पूरे हो जाते हैं, तो

एक स्वप्न के समय के माप को मैं कैसे व्यक्त करूँ ?
 वस्तुतः यह तो स्वप्न हुआ ही नहीं, किन्तु अक्षरधाम में
 विराजमान अक्षर ब्रह्म के द्वारा सृष्टि रचना के संकल्प को
 इस नश्वर जगत में स्वप्न कहने के अतिरिक्त और कोई
 दृष्टान्त ही दिखायी नहीं देता।

इत भेले रूह नूर बुध, और अग्या दया प्रकास।

पूरों आस अछर की, मेरा सुख देखाए साख्यात॥३२॥

मेरी आत्मा के धाम हृदय में श्यामा जी, तारतम ज्ञान,
 जाग्रत बुद्धि, आदेश शक्ति (हुक्म) के रूप में धनी का
 आवेश स्वरूप तथा उनकी प्रेम भरी कृपा (दया) का
 प्रकाश विद्यमान है। मैं अपने अन्दर विद्यमान अक्षर ब्रह्म
 को परमधाम के प्रेममयी सुखों के रहस्य का अनुभव
 कराऊँगी तथा उनकी इच्छा को पूर्ण करूँगी।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म ने महारास में प्रेम लीला का अनुभव तो कर लिया था, किन्तु उसके परमसत्य (मारिफत) को नहीं जान सके थे। अब तारतम का तारतम (खिलवत, परिक्रमा, सागर, श्रृंगार) के अवतरण से उनकी वह इच्छा भी पूर्ण हो गयी है।

इत भी उजाला अखंड, पर किरना न इत पकराए।

ए नूर सब एक होए चल्या, आगूं अछरातीत समाए॥३३॥

मेरे धाम हृदय में प्रियतम ने परमधाम के ज्ञान का प्रकाश कर दिया है, जिसकी किरणों को आत्मसात् करने का सामर्थ्य इस संसार के लोगों में नहीं है। तारतम वाणी के विभिन्न ग्रन्थों के रूप में विद्यमान तारतम ज्ञान का यह प्रकाश जागनी लीला की समाप्ति के पश्चात् परमधाम चला जायेगा।

ए नूर आगे थें आइया, अछर ठौर के पार।

ए सब जाहेर कर चल्या, आया निज दरबार॥३४॥

तारतम ज्ञान का यह उजाला अक्षरधाम से भी परे परमधाम से आया है। यह परमधाम की सम्पूर्ण शोभा तथा लीला को उजागर कर पुनः परमधाम चला जायेगा।

वतन देखाया इत थें, सो केते कहूं प्रकार।

नूर अखंड ऐसा हुआ, जाको वार न काहूं पार॥३५॥

तारतम ज्ञान ने हमें यही बैठे-बैठे परमधाम के सुखों (शोभा, लीला आदि) का इस प्रकार अनुभव कराया कि मैं उसका कहाँ तक वर्णन करूँ। मेरे धाम हृदय में प्रियतम ने तारतम ज्ञान का ऐसा प्रकाश कर दिया है कि उसकी कोई सीमा ही निर्धारित नहीं की जा सकती।

किए विलास अंकुर थें, घर के अनेक प्रकार।

पिया सुंदरबाई अंग में, आए कियो विस्तार॥३६॥

परमधाम का मूल अँकुर होने के कारण हमने निजधाम के अनेक प्रकार के सुखों का आनन्द लिया। स्वयं श्री राज जी और श्यामा जी ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर तारतम ज्ञान का अनेक ग्रन्थों के रूप में विस्तार किया।

ए बीज वचन दो एक, पिया बोए कियो प्रकास।

अंकुर ऐसा उठिया, सब किए हाँस विलास॥३७॥

धाम धनी ने श्री देवचन्द्र जी के तन से तारतम ज्ञान के एक-दो वचनों को बीज रूप में मेरे हृदय में बोकर अखण्ड ज्ञान का प्रकाश फैलाया। उन बीजों से तारतम वाणी का ऐसा अँकुर फूटा कि सबने परमधाम के सुखों

का भरपूर आनन्द लिया।

सूर ससि कई कोट कहूं, नूर तेज जोत प्रकास।

ए सब्द सारे मोहलों, और मोह को तो है नास॥३८॥

परमधाम के नूरमयी तेज की ज्योति और उसका प्रकाश ऐसा है कि यदि मैं करोड़ों सूर्य और करोड़ों चन्द्रमा से उसकी उपमा दूँ, तो भी मेरे ये शब्द उस निराकार तक का ही वर्णन कर सकते हैं, जबकि निराकार (मोहतत्व) का तो महाप्रलय में नाश हो जाता है।

अब इन जुबां मैं क्यों कहूं, निज वतन विस्तार।

सब्द ना कोई पोहोंचहीं, मोह मिने हुआ आकार॥३९॥

अब मैं इस जिह्वा से परमधाम के विस्तार का वर्णन कैसे

करूँ। इस नश्वर जगत का कोई भी शब्द परमधाम में नहीं जा सकता। मेरा यह तन भी मोहतत्व का है, जिससे वास्तविक वर्णन नहीं हो सकता।

मोह सो जो ना कछू, इनसे असंग बेहद।

सत को असत ना पोहोंचहीं, या बिध ना लगे सब्द॥४०॥

मोहतत्व वह है, जिसका महाप्रलय में कुछ भी अस्तित्व नहीं रहता। बेहद मण्डल इससे परे है। इस प्रकार अखण्ड धाम में यहाँ की शब्दों की गति नहीं हो सकती।

बेहद को सब्द न पोहोंचहीं, तो क्यों पोहोंचे दरबार।

लुगा न पोहोंच्या रास लों, इन पार के भी पार॥४१॥

जब इस नश्वर जगत के शब्द योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही नहीं जा पाते, तो वे परमधाम का वर्णन कैसे कर सकते

हैं। जब इस संसार के ज्ञानीजन महारास के सम्बन्ध में एक अक्षर भी नहीं कह सके, तो उसके परे स्थित अक्षरधाम और परमधाम का वर्णन कैसे कर सकते हैं।

कोट हिस्से एक लुगे के, हिसाब किया मिहीं कर।

एक हिस्सा न पोहोंच्या रास लों, ए मैं देख्या फेर फेर॥४२॥

मैंने एक अक्षर के करोड़ भाग किए और उसके एक भाग की सूक्ष्मता का विचार किया। मैंने बार-बार यही अनुभव किया कि एक अक्षर का करोड़वाँ भाग भी महारास के मण्डल में नहीं जा सकता।

भावार्थ— शब्दातीत धाम में शब्द की गति नहीं हो सकती। इसी को दर्शाने के लिये एक अक्षर के करोड़वें भाग का दृष्टान्त यहाँ दिया गया है।

मैं अंगे रंगे अंगना संगे, करुं आप अपनी बात।

अब बोलते सरमाऊं, तार्थें कही न जाए निध साख्यात॥४३॥

मैं परमधाम से आयी धनी की अंगरूपा आत्माओं के साथ अपनी आनन्दमयी लीला की बातें करूँगी। इसे इस स्वापनिक जगत में कहने में लज्जा (झिझक) भी लग रही है कि मैं शब्दातीत निधि को किस प्रकार व्यक्त करूँ। इसलिये मैं प्रत्यक्षतः यथार्थ रूप से नहीं कह पा रही हूँ।

वतन बातें केहेवे को, मैं देखती नहीं कोई काहूँ।

देखां तो जो होए दूसरा, नहीं गांउं नांउं न ठांउं॥४४॥

परमधाम की बातें बताने के लिये ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त मैं अन्य किसी को भी, कहीं भी, योग्य नहीं पाती। जीव सृष्टि सपने की है, इसलिये ब्रह्मसृष्टि एवं ईश्वरी सृष्टि के समकक्ष उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है।

वस्तुतः इस स्वाप्निक जीव सृष्टि का न तो कोई अखण्ड निवास है और न अखण्ड मूल घर।

भावार्थ- स्वप्न में उत्पन्न होने वाली वस्तु का अस्तित्व मिथ्या होता है। पृथ्वी लोक एवं वैकुण्ठ-निराकार सभी स्वाप्निक और मिथ्या हैं। इसलिये उपरोक्त चौपाई में यह बात कही गयी है कि जीव सृष्टि के निवास पृथ्वी लोक तथा उसके धाम वैकुण्ठ-निराकार भी स्वाप्निक होने से अस्तित्वविहीन हैं।

जहां नहीं तहां है कहे, ए दोऊ मोह के वचन।

तार्थें विस्तार अन्दर, बाहेर होत हूं मुंन॥४५॥

श्री राज जी कहते हैं कि जो निराकार रूप परब्रह्म का स्वरूप नहीं है, उसी निराकार को इस संसार के जीव परब्रह्म मानते हैं। इस प्रकार, साकार तथा निराकार,

दोनों को परब्रह्म का स्वरूप मानना अज्ञानता है। इसलिये मैंने श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान होकर सुन्दरसाथ के लिये इस तारतम ज्ञान का विस्तार किया है, किन्तु संसार के मायावी जीवों के लिये मैं बाह्य रूप से मौन हूँ।

एता भी मैं तो कहया, जो साथ को भरम का घैन।

वचन दो एक केहेके, टालूं सो दुतिया चैन॥४६॥

सुन्दरसाथ को संशय का गहरा रोग लगा हुआ है, इसलिये मुझे इतनी बातें कहनी पड़ी हैं। मैंने इस कलश ग्रन्थ में परमधाम की एक-दो (थोड़ी सी) बातें कहकर दुविधा की स्थिति को हटाया है।

साथ के सुख कारने, इंद्रावती को मैं कहया।

ताथें मुख इंद्रावती के, कलस सबन का भया॥४७॥

सब सुन्दरसाथ को सुख देने के लिये ही मैंने श्री इंद्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान होकर यह कलश ग्रन्थ अवतरित किया है। यह ग्रन्थ रास, प्रकाश, एवं षट्क्रतु के ऊपर कलश के समान शोभायमान हो रहा है।

प्रकरण ॥२४॥ चौपाई ॥७७१॥

प्रकरण तथा चौपाइयों का सम्पूर्ण संकलन

प्रकरण १७२, चौपाई ४६६९

॥ कलस हिन्दुस्तानी – तौरेत ॥

॥ सम्पूर्ण ॥